प्रीत और इच्छा

whether you are [redacted]
then come with me
I will [redacted] — you
in partap park. I am
wealthy person. If you
wish to love me then
meet me near partap
park at 10 A.M.

[illegible]

Lahore

H. H. for the time
Gold [illegible]

[illegible]

रूस को एक पूर्ण युग के अनुभव के बाद अंतरराष्ट्रीय समाजवाद के आदर्श को क्यों ताक पर रख देना पड़ा ? युग-युगों से संचित मानव का सारा भौतिक ज्ञान-विज्ञान क्यों 'फासिज्म' के पोषक एक से अधिक शक्तिशाली राष्ट्रों में सामूहिक मरण-लीला की अकथनीय विराट योजना के रूप में संघटित हो उठा ? और इस बात की क्या गारन्टी है कि २५-३० वर्ष बाद इस महाघाती युद्ध से भी सैकड़ों, बल्कि हजारों, गुना अधिक विध्वंसक और प्रलयंकर युद्ध बीसवीं आ। ी के समाप्त होने के पहले ही सारे संसार को महाश्मशान में परिणत जाती कर डालेगा ? क्योंकि तब तक निश्चय ही, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के क्रम से, आधुनिक विज्ञान, जो कि सबसे बड़ा विनाश-शास्त्र है, नाश के ऐसे-ऐसे मृत्युवाहक अस्त्रों का आविष्कार कर लेगा जिनकी तुलना में आज के घोर विनाशक अस्त्र भी अत्यन्त तुच्छ लगेंगे। यदि आप यह समझें कि तब तक आप मार्क्सियन प्रगतिवाद का प्रचार सारे विश्व में करके संसार को स्वर्ग बना डालेंगे, तो आप घोर भ्रम में पड़े हुए हैं। १९१४-१८ के युद्ध में भी कुछ अबोध आशावादी इसी प्रकार की कल्पना किया करते थे। आपको जान लेना चाहिये कि २५-३० वर्ष बाद एक और महानाशक महायुद्ध अनिवार्य है—यदि भौतिक विज्ञानवाद की प्रगति इसी रूप में रही और अंतर्विज्ञानवाद की खिल्ली लोग इसी रूप में उड़ाते रहे जिस रूप में हमारे यहाँ के मार्क्सियन प्रगतिवादी उड़ाया करते हैं।

मैं मानता हूँ कि द्वन्द्वात्मक भौतिक विज्ञानवाद के तत्त्वों से आप विश्वशांति और विश्वसमता के सिद्धांतों को गणित के प्रश्नों की तरह निश्चित प्रमाणों सहित सिद्ध कर सकते हैं। पर याद रखिए कि मानव-जीवन गणित नहीं है। मानव की अंतश्चेतना के अगाध अतल में हिटलर की तरह एकच्छत्र शक्ति प्राप्त करने की जो दुर्दान्त और घातक लालसा आदिकाल से डेरा जमाये हुए है, जो लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, हिंसा क्रूरता और घोर स्वार्थ-परायणता आदि की असंख्य पशु-प्रवृत्तियाँ

इतने युगों के विवर्तन के बाद भी आज तक सुदृढ़ और सुनिश्चित रूप से स्थिर हैं, उनका इलाज क्या आपके 'डायलेक्टिल मेटीरियलिज्म' से उद्भृत बाह्य-जीवन-संबंधी प्रगति कर सकेगी ?

विश्व में तब तक अपेक्षाकृत (पूरी नहीं) शांति की स्थापना असंभव है जब तक मानव-समाज अंतर्जीवन को उतना ही (बल्कि अधिक) महत्त्व नहीं देता कि जितना कि बाह्य-जीवन को। क्योंकि इस बात के निश्चित प्रमाण जीवन की गहराई में दृष्टि डालनेवाले मनोवैज्ञानिक को मिलते हैं कि सामूहिक सभ्य मानव के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन के युग-युग में परिवर्तित पुनरावर्तित होने वाले रूप उसकी सामूहिक अज्ञात चेतना में निहित प्रवृत्तियों के रहस्यमय परिचालन से बनते और बिगड़ते हैं। इसलिये मानवता के लिये सबसे कल्याणकर उपाय यह है कि वह अपनी उस अज्ञात चेतना के गहरे, और अधिक गहरे, स्तरों में प्रवेश करके उसके भीतर जड़ जमानेवाली आदिकालीन पशु-प्रवृत्तियों की छान-बीन और विश्लेषण करे, और उस पातालपुरी की नारकीय अंध-कारा में बद्ध उन संस्कारों की यथार्थता स्वीकार करके ऐसी तरकीब निकालने का प्रयत्न करे जिससे ग़लत रास्ते से होकर उन बद्ध प्रवृत्तियों का विध्वंसक विस्फोट न हो। बल्कि उचित मार्गों से उनका नियमित प्रस्फुटन हो। न तो उन सामूहिक प्रवृत्तियों को दबाने से काम चलेगा, न उन्हें अस्वीकार करने से और न अज्ञात रूप से उनका आकस्मिक विस्फोट होने देने से।

इस विचित्र और स्थान-काल से मेल न खानेवाली भूमिका द्वारा मैंने साहित्य-सर्जना को केवल बाह्य-संघर्षमय जीवन के चित्रण का माध्यम माननेवाले नवीन आलोचकों को अपने साहित्य तथा जीवन-संबंधी दृष्टिकोण से परिचित कराने का भोंड़ा प्रयास किया है। मेरा यह ध्रुव, निश्चित विश्वास है कि व्यक्तियों के अन्तर्जीवन के स्वरूप ही सामूहिक बाह्य-जीवन के रूपकों के रूपों में—विश्वव्यापी राष्ट्रीय तथा

अंतरराष्ट्रीय, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के प्रतीक बनकर—प्रकट होते रहते हैं। यह तथ्य इस समय हमारे तरुण आलोचकों को घोर अविश्वसनीय तथा उपहासास्पद प्रतीत हो सकता है। पर मैं निश्चित विश्वास के साथ यह कहना चाहता हूँ कि भावी संसार—युद्धोत्तर-कालीन संसार—को यह महान सत्य स्वीकार करना ही होगा, यदि वह फिर एक बार उस दूसरे कल्पांतक महायुद्ध को नहीं बुलाना चाहता जिसका उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ।

अतएव मेरे वर्तमान उपन्यास में जिन असाधारण चरित्रों के अंतर-जीवन—बल्कि अंतरतर और अंतरतम जीवन—के (आत्मघाती अथवा आत्म-उद्बोधनकारी, दोनों प्रकार के) द्वन्द्वचक्रों का वैश्लेषिक चित्रण किया गया है, उनके संबंध में आप चाहे और कुछ सोचें, उन्हें केवल-मात्र पारिवारिक जीवन की व्यक्तिगत समस्या मानकर उनकी अवहेलना न करें, यह आप लोगों से मेरा अनुरोध है। मेरे उपन्यास में बहुत-से कलात्मक दोष हैं, और उन दोषों के लिये मेरी निन्दा करने का पूरा अधिकार आपको है। पर यदि आप इस बात के लिये मुझे दोषी ठहरावें कि मैंने केवल व्यक्तिगत तथा पारिवारिक समस्याओं को अपनाकर प्रगति के पथ की उपेक्षा की है, तो मैं यह दोष स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ। आप यह निश्चित रूप से समझे रहें कि 'व्यक्तिगत जीवन की समस्याएँ' ही संसार के महान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक चक्रों के बीज-रूप—बल्कि मूलगत प्रतीक और आधारभूत सिद्धांत—हैं। जब तक आप इन 'व्यक्तिगत समस्याओं' के भीतर निहित रूपकों में विश्व के विराट बाह्य-जीवन-चक्र की समस्याओं को देखने की दृष्टि नहीं रखेंगे तब तक आप न तो यथार्थ प्रगति के रूप से परिचित हो सकते हैं, न साहित्य-कला के मूल प्राणों का विकास आपके आगे भासित हो सकता है।

मनुष्य की सामूहिक अज्ञात चेतना आदि काल से लेकर आज तक समस्त मानवीय कलाओं का मूल उत्स रही है। फिर भी आज की

कला ने हज़ारों वर्षों के बाद एक निश्चित प्रगति की ओर पग बढ़ाया है। आज तक की कला अज्ञात चेतना के रहस्यमय लोक से उत्थित होती थी, संदेह नहीं; पर कलाकारों को साधारणतः इस बात का पता नहीं रहता था कि वे अपने सचेत मन पर उतरनेवाले कलात्मक तत्त्वों को कहाँ से प्राप्त कर रहे हैं और किस उद्देश्य से वे तत्त्व उन्हें बेबस ढकेले लिये जा रहे हैं। केवल अपनी अंध-प्रज्ञा ('इन्टवीशन') की नौका पर चढ़कर वे अंध-विश्वास के साथ अपनी ज्ञात तथा अज्ञात चेतना के बीच के महा-सागर में उसे मुक्त भाव से छोड़ दिया करते थे। पर आज का कलाकार जानता है कि मानव की सामूहिक अज्ञात चेतना के किन तत्त्वों को लेकर वह किस विशेष उद्देश्य से अपनी कला का निर्माण कर रहा है। वह उन तत्त्वों का पूर्ण विश्लेषण करके उनकी सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधि से परिचित और उनके संबंध में पूर्ण जागरूक रहता है। और यही कारण है कि वह अंतर्जीवन-लोक की गहन प्रवृत्तियों का निश्चित स्वरूप हमें बताकर, बाह्य-जीवन-चक्र से उनकी सुसंगति का मार्ग हमारे लिये निर्देशित कर देता है। कला की कल्याणमयी प्रगति का इससे अधिक स्वस्थ और उन्नत आदर्शमूलक लक्ष्य दूसरा नहीं हो सकता। स्मरण रहे कि 'आज के कलाकार' से मेरा आशय यह नहीं है कि संसार में आज जितने भी कलाकार हैं वे इसी पथ को अपनाये हुए हैं। अज्ञात चेतना को असंख्य उलझनों में उलझे हुए कलाकारों की संख्या संसार में अभी काफी से ज़्यादा है। पर यदि युग के कुछ गिने-चुने प्रतिनिधि अग्रणी कलाकार भी इस पथ की ओर अग्रसर हुए हों, तो यह भावी पथ-प्रदर्शन के लिये यथेष्ट है।

मैं फिर एक बार कहना चाहता हूँ—भावी युग को निश्चय ही यह मानना पड़ेगा कि बाह्य और अंतःस्थित, सभी प्रकार के जीवन-चक्रों की मूल परिचालिका शक्ति है विश्व-मानव की सामूहिक अज्ञात चेतना। बाहरी जीवन की प्रगति (जिसमें मार्क्सियन सिद्धांतों के अनुसार होने-

वाली प्रगति भी शामिल है) अपने-आप में महत्त्वपूर्ण है, यह मैं मानता हूँ। केवल मानता ही नहीं हूँ, बल्कि 'अंडरलाइन' करके यह बात कहना चाहता हूँ। पर अन्तर्जीवन की प्रगति के साथ सामंजस्य स्थापित हुए बिना यह बाह्य प्रगति शून्य में स्थापित किये गये हवाई क़िलों की तरह ही निष्फल सिद्ध होगी—जैसा कि आज तक होती आई है। अंतर्जीवन और अज्ञात चेतना से संबंधित रचनाओं की उपेक्षा करने से काम न चलेगा।

अज्ञात चेतना का मनोविज्ञान अभी तक शैशव अवस्था से आगे नहीं बढ़ पाया है। यूरोप के मनोवैज्ञानिकों ने इस ओर क़दम बढ़ाया है, पर अभी तक वे प्रारंभिक सीढ़ी भी तय नहीं कर पाए हैं। मेरे मन में यह दृढ़ विश्वास है कि यह सब विज्ञानों का मूलगत विज्ञान भारतीत क्षेत्र में ही चरम उन्नति प्राप्त कर सकेगा। अन्तश्चेतना की रहस्यमयता की ओर भारतीय दार्शनिकों का झुकाव उपनिषदों के युग से लेकर आज तक बराबर जारी रहा है। उपनिषदों के युग में हमने उस अगाध रहस्यमयता का महान आभास पाया है। अब उसी रहस्योन्मुखता की प्रवृत्ति को नया रूप देकर अन्तर्दृष्टि और विवेक के पूर्ण समन्वय से हम भारतीयों को इस तथ्य के अनुसंधान में जुट जाना होगा कि अज्ञात चेतना के पाताल-लोक में स्थित अतल नरक के विश्लेषण द्वारा बाह्य-जीवन-तत्वों के साथ उन नारकीय (किंतु मूल) जीवन-तत्त्वों का समुचित संबंध स्थापित करके मानव-जगत् में किन उपायों से आपेक्षिक स्वर्ग की स्थापना की जा सकती है। इस ओर का कोई भी प्रयास, चाहे वह कैसा ही क्षीणतम और असंख्य दोषों से पूर्ण क्यों न हो, उपेक्षणीय नहीं होना चाहिये—स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। यही आप लोगों से मेरा विनम्र निवेदन है।

इलाचन्द्र

मन को इस बात की कोई सूचना नहीं मिली थी । मेहमान महोदय जब क्रोधवश अकेले टहलने के लिये निकल गए, तो मैंने अपने अनजान ही में टेबिल के नीचे देखा । वहाँ जब वह नोट पाया तो मेरी प्रसन्नता की सीमा न रही । मैंने मन में यह निश्चय करके वह नोट चुपके से उठा कर अपनी जेब में रख लिया कि जब आज रात में या कल सुबह मेहमान महाशय का मिजाज़ ठिकाने आ जायगा तो उन्हें उस नोट की सूचना दे दूँगा, और यह कह दूँगा कि उसे मैंने खर्च कर डाला है, तनख्वाह मिलने पर वापस कर दूँगा । मैं वापस अवश्य कर दूँगा (हालाँकि कब वापस करूँगा यह अभी अनिश्चित है), पर जिस मनोवृत्ति से मैंने उस नोट को अपने पास रख लिया उसे चोरी के सिवा और क्या कहा जा सकता है ?"

पारसनाथ एकाग्रचित्त से प्रोफ़ेसर साहब की बातें सुन रहा था । उसके मुख के भाव से ऐसा मालूम होता था जैसे उसे उन सब बातों पर विश्वास ही न हो रहा हो । उसने कहा—"आपने एक बहुत ही विचित्र बात सुनाई है । मैं तो कुछ समझ ही नहीं पा रहा हूँ ।"

"तुम समझ ही कैसे सकते हो जबकि तुम्हें उन परिस्थितियों का कोई अनुभव नहीं है, जिनसे होकर मैं कई वर्षों से गुज़र रहा हूँ ।"

पारसनाथ अपनी अन्तिम घूँट समाप्त करते हुए बोला—"आप डेढ़ सौ रुपया प्रतिमास पाते हैं, और मेरे पास रोज़ी का कोई साधन नहीं है—अर्थात् जो कुछ है भी वह नहीं के बराबर है । ऐसी हालत में भी यदि आप यह कहना चाहें कि मुझे उन परिस्थितियों का कोई अनुभव नहीं है जिनसे होकर आप गुजर रहे हैं, तो निश्चय ही आपकी परिस्थितियाँ अस्वाभाविक होंगी ।"

वर्माजी ने इस बीच एक सिगरेट जलाकर कसकर धुँआ निकालना शुरू कर दिया था । सिगरेट की राख को टेबिल पर झाड़ते हुए

उन्होंने कहा—"तुम्हारा अनुमान बिलकुल ठीक है। मेरी परिस्थितियाँ सचमुच अस्वाभाविक हैं, और उस सारी अस्वाभाविकता के मूल में है मेरी भोली-भाली, पति-परायणा, निर्दोष पत्नी। वह प्रायः प्रतिवर्ष एक बच्चे को जन्म देती रहती है, जिसके फलस्वरूप उसका स्वास्थ्य—जो कि पहले से ही क्षीण था—दिन पर दिन गिरता चला जाता है। पर आश्चर्य की बात यह है कि इतने पर भी वह मरती नहीं, और इस वर्ष फिर वह एक नये बच्चे को जन्म देने की तैयारी पर है। अपने कालेज के दिनों में मैं बड़ा रोमांसवादी था और दिन-दहाड़े अपने संबंध में विचित्र-विचित्र वैवाहिक रोमांसों के स्वप्न देखा करता था। उन स्वप्नों के बीच स्वभावतः किसी बच्चे के जन्म लेने की कोई कल्पना मेरे मन में उत्पन्न नहीं हो पाती थी। तब मुझे क्या पता था कि मेरा विवाह अत्यन्त अनरोमांटिक ढंग से होगा। पर रोमांस-रहित विवाह होने पर भी जब मैंने अपनी पत्नी को देखा, तो मैं उसका रूप-रंग और शील-स्वभाव देखकर प्रसन्न हो गया। तब वह हिन्दी मिडिल पास कर चुकी थी और उसके स्वभाव की सहज शालीनता मुझे अत्यन्त प्रिय लगी। एक वर्ष तक उसको लेकर मैं राग-रंग में मस्त रहा। दूसरे वर्ष जब उसने अपने पहले बच्चे को जन्म दिया, तो मेरी स्वाभाविक उमंगों का मूल स्रोत ही जैसे बन्द हो गया। उसके बाद प्रायः प्रतिवर्ष एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा—इस हिसाब से संतान-वृद्धि होती चली गई। धीरे-धीरे मैंने अपने बाह्य जीवन को उस विचित्र अस्वाभाविक परिस्थिति के अनुकूल बनाने की चेष्टा की, पर मेरा भीतरी जीवन तिल-तिल करके मरता चला गया। इस आशा में कि मेरे उस मृतप्राय जीवन में क्षणिक प्राणों का संचार हो जाय, मैंने इस 'अमृत-रस' को (यह कहते हुए वर्माजी ने टेबिल पर रखी हुई बोतल की ओर उँगली उठाई) अपनाना शुरू कर दिया। पर ओस की बूँदों से कहीं प्यास बुझ सकती है। इस समय मेरे बारह

बच्चों में से नौ जीवित हैं, जिनमें से पाँच बच्चों के पढ़ाने-लिखाने के खर्च में आधी से ज्यादा तनख्वाह चली जाती है । इसके अलावा भोजन-वस्त्र, बच्चों के लिये दूध, मेहमानदारी आदि में जो खर्च बैठता है, उसका ठीक-ठीक हिसाब रख सकना मेरे लिये असम्भव है । मेरी पत्नी का स्वास्थ्य दुर्गति की चरम सीमा को पहुँच जाने पर भी वह स्वयं अपने हाथ से खाना बनाने को बाध्य है—उसके लिये एक महा-राजिन रखना मेरे लिये असम्भव सिद्ध हो रहा है । बच्चे बीमार होते रहते हैं—अभी कुछ ही दिन पहले एक बच्चा इस क़दर बीमार पड़ा कि उसकी मृत्यु निश्चित समझ ली गई थी—तो भी मैं एक डाक्टर को बुलाने में असमर्थ रहा । घर में भोजन-वस्त्र की कमी हमेशा बनी रहती है, पर मैं सब-कुछ देखकर भी अनदेखा और सब-कुछ सुनकर भी अनसुनी कर देता हूँ । बच्चों का पेट काटकर भी बोतल में अपने को डुबाए रहता हूँ । आग़ाओं और दूसरे सूदखोरों से क़र्ज़ लेते-लेते मैं इस हद तक 'डिस्परेट' हो गया हूँ कि कहीं किसी भी ज़रिये से कितनी ही बड़ी दर पर क़र्ज़ क्यों न मिले, मैं आँख मूँदकर स्वीकार कर लेता हूँ, और जब स्वल्पकाल के लिये उस क़र्ज़ के रुपयों से मेरी जेब गर्म रहती है, तो उस समय के लिये मैं अपने को राजा समझता हूँ और मेरे उल्लास और उमंग की सीमा नहीं रहती ।" यह कहकर वर्माजी न जाने क्या सोचकर एक बार ठठाकर हँस पड़े ।

पर पारसनाथ ने जब उनका क़िस्सा सुना, तो उसके भावुक हृदय में ऐसा लोमहर्षक आतंक छा गया कि उसके मुँह से सान्त्वना के रूप में एक शब्द भी न निकला । वह केवल भ्रांत दृष्टि से वर्माजी की ओर देखता रह गया

वर्माजी कहते चले गए—"लोग कहते हैं कि मज़दूरों और किसानों की दशा अत्यन्त शोचनीय है । मेरा यह विश्वास है कि हम मध्यवित्तों

की स्थिति जैसी दयनीय है वैसी और किसी वर्ग की नहीं। हम लोग सैकड़ों प्रकार की लौकिकताओं और सामाजिक नियमाचारों के बन्धनों से इस बुरी तरह जकड़े रहते हैं कि उनसे छुटकारा पाना असम्भव हो जाता है। अव्वल में बेकारी मध्यवित्तों के सिरों पर सवार रहती है, और जो लोग उस डाकिनी के ग्रास से किसी क़दर बच पाते हैं वे अपनी कमाई का अधिकांश भाग व्यर्थ की लौकिकता में ख़र्च करने के लिये बाध्य होते हैं, और उन लौकिक आचार-विचारों की रक्षा के कारण परिवार के भोजन-वस्त्र आदि की प्रधान समस्याएँ गौण हो उठती हैं। मेरी पत्नी का स्वास्थ्य इतना ख़राब है कि किसी भी समय उसका हार्ट फ़ेल कर सकता है। पर मेरे लिये उसकी मृत्यु का प्रश्न भी गौण हो उठा है और समस्या ने प्रधान रूप धारण कर लिया है कि यदि आज ही अकस्मात् उसकी मृत्यु हो जाय तो उसके मृतक संस्कार के लिये रुपया कहाँ से आवेगा। तिस पर चूँकि मध्यवित्त लोग पढ़े-लिखे होते हैं इसलिये उनकी अनुभूतिशीलता बहुत बढ़ जाने से वे सब समय गहन मानसिक चिन्ताओं से पीड़ित रहते हैं। किसानों और मजूरों में एक तो बेकारी कम पाई जाती है, तिस पर उन्हें सामाजिकता का शिकार उस हद तक नहीं बनना पड़ता जिस हद तक हम लोगों को, और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे शिक्षित न होने से उतने अनुभूतिशील नहीं होते जितने कि मध्यश्रेणी के लोग।"

वर्माजी की इस बात के उत्तर में एक साँवरे रंग का खद्दरधारी व्यक्ति, जिसकी उम्र प्रायः तीस वर्ष की होगी और जो 'साम्यवादी' नामक एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन करता था; बोल उठा—"किसानों और मजूरों को अनुभूतिशील होने का उतना ही अधिकार है जितना आप लोगों को। वे शिक्षित नहीं हैं, अनुभूतिशील नहीं हैं, इसमें उनका कोई दोष नहीं है। इसके लिये दोषी हैं आप लोग, दोषी हैं आप लोगों के पूँजीपति पिट्ठू।"

'साम्यवादी' संपादक की बात सुनकर वर्माजी की मद-भरी आँखों में क्रोध का एक क्षीण आभास झलक उठा; पर तत्काल वह भाव व्यंग में परिणित हो गया। उन्होंने संपादक महाशय को लक्ष्य करके कहा—"आप ठीक कहते हैं। हम मध्यवित्त श्रेणी के लोग आपके किसानों और मजूरों की उन्नति के क्रम में निश्चय ही बाधक-स्वरूप हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि इस सम्बन्ध में हम लोग अपने पूँजीपति पिट्ठुओं से भी अधिक दोषी हैं, और व्यक्तिगत रूप से शायद मैं सबसे अधिक दोषी सिद्ध होऊँगा, क्योंकि प्रति वर्ष एक बच्चे को जन्म देकर मैं किसानों और मजूरों का ग्रास छीननेवालों के साथ हाथ बटा रहा हूँ।" यह कहकर वह न जाने क्या सोचकर ठहाका मारकर हँस पड़े।

पारसनाथ बीच में किसी गंभीर चिंता में मग्न हो पड़ा था। प्रोफ़ेसर साहब का अट्टहास सुनकर उसे चैतन्य हुआ। उसने प्रोफ़ेसर साहब की ओर देखते हुए कहा—"आज आपने अपने जीवन के इतिहास का जो अधूरा अध्याय सुनाया उसने मेरे हृदय में एक विचित्र अशांति उत्पन्न कर दी है, एक निराले भय की भावना जैसे मेरी छाती पर चढ़ बैठी है। मैं सोच रहा हूँ कि वर्तमान युग में बुद्धिजीवी मनुष्य वास्तव में कितना दयनीय हो उठा है! मुझे ऐसा लगता है कि हम सब मध्य-श्रेणी के बुद्धिजीवी व्यक्ति वर्तमान संसार के लिये निपट निरर्थक और अनावश्यक सिद्ध हो रहे हैं। हम सब परोपजीवी--पैरेज़ाइट्स—हैं, और युग-विवर्तनकारी प्रगतिशील समाज के पोषक तत्त्वों का निरर्थक शोषण करते चले जाते हैं। वर्तमान विश्वव्यापी क्रांति के बाद जब संसार का नव-निर्माण होगा तो हम लोग और किसी भी रूप में अपनी उपयोगिता का प्रमाण नाम को भी न दे सकेंगे—यह निश्चित है। आपने अभी जो बात व्यंग के रूप में कही है उसे मैं 'सीरियसली' लेता हूँ। वास्तव में प्रतिवर्ष एक बच्चा पैदा करने का कोई अधिकार

आपको नहीं है। यह आपकी पत्नी के प्रति अन्याय है, आपके बच्चों के प्रति अन्याय है, समाज के प्रति अन्याय है और संसार के प्रति अन्याय है। आप स्वयं एक 'सुपरफ्लुअस'—अनावश्यक—प्राणी हैं, तिस पर अपने बच्चों के रूप में ग्यारह 'सुपरफ्लुअस' प्राणियों को और जन्म देकर आपने समाज को व्यर्थ के लिये भारग्रस्त कर दिया है। आपने सबसे पहली और सबसे भयंकर भूल यह की कि अपने को विवाह के बंधन में बाँध लिया। मध्यवित्त श्रेणी के लोगों को चाहिये कि वे कभी भूल कर भी…"

इतने में उसी 'पार्टी' का चौथा व्यक्ति, जो एक स्वस्थ और मस्त युवक था और किसी एक प्रसिद्ध इन्श्योरेंस कंपनी का एजेंट था, बीच ही में बात काटकर बोल उठा—"आप लोग इन सब बेतुकी बातों को खतम भी करेंगे या नहीं ? हम लोग यहाँ राग-रंग मनाने आये हैं या समाजशास्त्र पर व्याख्यान सुनने !" यह कहकर उसने पाँचवें व्यक्ति से, जो एक कवि था, कहा—"केसरजी अपना कोई गीत सुनाइए !"

'केसर' जी ने गला साफ करके तुरन्त कुछ गुनगुनाना शुरू कर दिया और कुछ ही क्षण बाद वह अत्यंत ऊँचे स्वर में अपनी रची एक कविता गाकर सुनाने लगे।

दूसरा परिच्छेद

कविजी अपनी कविता सुना ही रहे थे कि अकस्मात् होटल के एक नौकर के साथ एक नौजवान लड़की ने कमरे में प्रवेश किया। उसकी उम्र उन्नीस-बीस वर्ष के आस-पास मालूम होती थी। उसका रंग गेहुँआ था। वह एक मटमैले रंग की 'प्लेन' साड़ी पहने थी। सिर

आधा खुला हुआ था और बाल बड़ी सादगी से सँवारे हुए थे। उसकी आँखों की अभिव्यंजना में एक सहज सतर्कता का भाव वर्तमान रहने पर भी उस भाव के ऊपर भय, संकोच, करुणा और कौतूहल की एक मिश्रित छाया आश्चर्यजनक रूप से भासित हो रही थी। उसका लंबा क़द कुछ दुबलापन लिए था। ऐसा मालूम होता था जैसे उसके लम्बे-लम्बे और कुछ-कुछ पिचके हुए से गाल उसकी नुकीली ठुड्डी से मिले हुए नहीं हैं, बल्कि उसके पतले से ओठों के इर्द-गिर्द दो छोटे-छोटे से गड़े गालों और ठुड्डी के बीच में व्यवधान उत्पन्न किये हुए हैं।

उस लड़की के प्रवेश करते ही सब लोग अत्यन्त उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। कविजी ने कविता सुनाना बंद कर दिया और वह पुलकित भाव से नवागता की ओर एकटक देखते रह गए। पारसनाथ भी उसकी ओर एकटक देख रहा था, पर उसकी आँखों में पुलक की अपेक्षा कौतूहल का भाव अधिक था। यदि सच पूछा जाय तो वह उस लड़की के आगमन से भीतर ही भीतर कुछ खीझ-सा उठा था। सारी मंडली में केवल एक व्यक्ति ऐसा था जिसके मुख पर सहज प्रसन्नता के चिह्न स्पष्ट व्यक्त हो उठे थे। वह व्यक्ति था इन्श्योरेंस कंपनी का एजेंट। उसी ने सबसे पहले नवागता का स्वागत किया। वह खड़ा हो गया और बड़े उत्साह के साथ बोला—"आइए बाईजी, पधारिए। इस कुर्सी पर विराजिए।"

लड़की के मुख पर घबराहट के चिह्न स्पष्ट व्यक्त हो रहे थे। वह काँपते हुए पगों से धीरे धीरे आगे बढ़ रही थी। ऐसा जान पड़ता था जैसे गिर पड़ेगी। इंश्योरेंस कम्पनी के एजेंट ने बेझिझक उसका हाथ पकड़ लिया और निर्दिष्ट कुर्सी पर बैठने के लिये हाथ से संकेत करते हुए कहा—"आप तो बहुत तकल्लुफ़ कर रही हैं।"

लड़की के मुख पर घबराहट का भाव बढ़ता चला जाता था। उसने एक हलके झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया और धीरे से निर्दिष्ट स्थान पर प्रायः दुबककर बैठ गई। इन्श्योरेंस कंपनी का एजेंट उसकी बग़ल वाली कुर्सी पर बैठ गया। बाद में मालूम हुआ कि उसी की 'गुप्त आज्ञा' का पालन करते हुए नौकर ने 'बाईजी' को उसकी ख़िदमत में हाज़िर किया था। उसने बैठते ही 'बाईजी' के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—"आप तो कुछ बोलती ही नहीं! हम लोगों से आप इस क़दर नाराज़ क्यों हैं?"

लड़की ने उसका हाथ धीरे से हटाते हुए कहा—"नहीं, नहीं, ऐसा न कीजिए।" उसकी घबराहट इस हद तक पहुँच चुकी थी कि उसके चेहरे से मालूम होता था जैसे वह रो देगी। पर उसके मुख के इस भाव से उपस्थित मंडली के दो रसिकजनों का उत्साह भंग होने के बजाय और अधिक भड़क उठा। कविजी प्रारंभ में कुछ सकुचाए हुए से थे, पर अब वह भी उत्साहित हो उठे। उन्होंने कहा—"इस युग में लाज करनेवाली स्त्री घोर प्रतिक्रियावादी समझी जाती है, बाईजी! आप हम लोगों को अपने यौवन की मादकता से क्यों वंचित करना चाहती हैं! यह कंजूसी आपको नहीं सुहाती।" यह कहकर उन्होंने अपना दाहिना हाथ युवती के बाँए कन्धे पर रखा और बाँए हाथ से उसके सिर के बाल सहलाने लगे। वह एक ओर इन्श्योरेंस कंपनी के एजेंट से और दूसरी ओर कविजी से मुक्ति पाने के लिये, अत्यन्त प्रबलता से छटपटाने लगी, और प्रायः रोने के से शब्द में केवल—"नहीं! नहीं!" के सिवा और कोई बात उसके मुँह से नहीं निकल पाती थी। पर दोनों रसिक मित्रों का उत्साह तनिक भी ठंडा नहीं पड़ रहा था और वह ठौर-कुठौर हाथ फेरते हुए उसे परेशान करने में एक विचित्र सुख का अनुभव कर रहे थे। साम्यवादी युवक एक व्यंगपूर्ण दृष्टि से यह सब दृश्य चुपचाप बैठा देख रहा था। वर्माजी स्तब्ध और चकित थे। पर पारस-

नाथ की मानसिक दशा अत्यंत शोचनीय हो उठी थी। उसके साथियों का साहस इस सीमा को पहुँच सकता है, इस बात की कल्पना इस घटना के पहले उसके मन में कभी उत्पन्न नहीं हुई थी। सारा दृश्य उसे अत्यंत वीभत्स लग रहा था और उसे मार्मिक आघात पहुँच रहा था। कुछ देर तक वह सन्न बैठा रहा। उसके बाद वह अचानक उठ खड़ा हुआ और क्रोध से काँपता हुआ पूरी ताक़त से चिल्लाकर बोला—"Stop this nonsense !" और यह कहकर वह आगे बढ़ा और एक-एक धक्के से अपने दोनों साथियों को अलग हटाकर लड़की को लक्ष्य करके बोला—"अगर आप चाहें, तो यहाँ से जा सकती हैं, आपको कोई नहीं रोकेगा।" दोनों रसिक-बन्धु विरोध के रूप में कुछ कहना ही चाहते थे कि पारसनाथ ने लाल आँखें दिखाकर उन्हें फिर एक बार ज़ोरों से डपटा। लड़की एक बार अत्यंत व्याकुल दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखकर धीरे से—प्रायः अनिच्छा से—अपनी कुर्सी पर से उठी, इसके बाद उसने फिर एक बार उसी विकल वेदना-भरी दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखा, और फिर कंपित और शंकित पगों से दरवाज़े की ओर बढ़ी। पारसनाथ क्षण भर के लिये अपने स्थान पर अनिश्चित अवस्था में खड़ा रहा, और लड़की की ओर देखता रहा। उसके बाद सहसा लपककर लड़की के पास गया और अपने कोट की भीतरी जेब से काले रंग के चमड़े का एक बटुआ निकालकर उसने उसमें से पाँच रुपये का एक नोट निकाला और लड़की की ओर उसे बढ़ाते हुए बोला—"यहाँ आने पर आपको जो कष्ट हुआ उसका पूरा हर्ज़ाना तो मैं नहीं दे सकता, फिर भी....यह लीजिए!"

लड़की ने सहमी और सकुचाई हुई दृष्टि से एक बार पारसनाथ की ओर देखा। क्षणभर के लिये वह द्विविधा में खड़ी रही और फिर काँपते हुए हाथों से उसने नोट ले लिया। इसके बाद तेज़ क़दम रखती हुई वह दरवाज़े से बाहर निकल गई।

जब पारसनाथ लौटकर अपने स्थान पर बैठा तो इन्श्योरेंस कंपनी के एजेंट ने कहा—"वाह यार, तुमने यह अच्छा मज़ाक किया ! अरे, जब उसे रुपया देना ही था, तो एक-आध घंटा पास बिठाकर रंग-रस की बातें कर ली होतीं। नाहक पाँच रुपये का ख़ून किया ! तुम भी परले सिरे के...हो !"

कविजी बोले—"सारा 'मूड' किरकिरा हो गया !"

वर्माजी ने कहा—"अच्छा ही हुआ जो लड़की चली गई। हम लोग 'ड्रिंक' इसलिये करते हैं कि इस बहाने एक जगह इकट्ठा होकर जी खोलकर आपस में सुख-दुःख की बातें करें या इधर-उधर की गप्पें उड़ावें। जब तक वह लड़की हम लोगों के बीच रहती तब तक मैं एक शब्द भी मुँह से न निकाल पाता, और इससे बढ़कर सज़ा मेरे लिये और कोई हो नहीं सकती।"

कविजी प्रायः एक आह भरते हुए बोले—"आप लोग सब घोर अरसिक हैं !"

इन्श्योरेन्स कम्पनी के एजेंट ने कविजी की बात की ताईद की, और वह खीझ-भरी दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखने लगा।

पर पारसनाथ के मुख पर उससे भी अधिक खीझ का भाव वर्तमान था—खीझ ही नहीं, घृणा भी उसमें स्पष्ट परिस्फुट थी। एक बार तीखी दृष्टि से इंश्योरेन्स कंपनी के एजेन्ट की ओर देखकर उसने आँखें फेर लीं, और अपने गिलास में बची हुई अंतिम घूँट को समाप्त करके उसने 'ब्वाय' को पुकारा। 'ब्वाय' तत्काल हाज़िर हुआ। पारसनाथ ने उससे 'बिल' लाने को कहा। जब 'ब्वाय' बिल लाया तो वह अपने हिस्से का रुपया चुकाकर उठ खड़ा हुआ और यह कहकर कि उसकी तबीयत ठीक नहीं है, उसने सबसे क्षमा माँगी और वहाँ से चल दिया। वर्माजी उसे रोकने की बहुत चेष्टा करते रहे, पर वह नहीं रुका।

———

तीसरा परिच्छेद

बाहर निकलकर पारसनाथ ने घर वापस चलने के इरादे से एक ताँगा पकड़ा। पैसे की तंगी के कारण वह अक्सर एक्के पर ही आता-जाता था, पर आज वह कुछ दूसरे ही 'मूड' में था, और खासकर इस समय वह एक अच्छी-सी सवारी चाहता था जिस पर बैठकर वह अपने मन के भीतर उठने वाली तरह-तरह की चिंताओं पर एकांत भाव से विचार कर सके। रह-रहकर उस विचित्र लड़की का चित्र उसकी मानसिक आँखों के आगे फड़फड़ा रहा था। जिस प्रकार की लड़कियाँ होटलों में व्यवसाय किया करती हैं उनमें से कइयों से वह घनिष्ट रूप से परिचित था—उनमें से कितनों से उसका घनिष्ट संबंध रहा, यह प्रश्न दूसरा है। पर इस प्रकार की जितनी भी लड़कियों को वह जानता था उन सब की मूलगत प्रकृति उसे एक ही तरह की लगी—उन सब के हाव-भाव, रंग-ढंग और बात-व्यवहार से उसे एक ही साँचे में ढले हुए से मालूम होते थे। पर आज जिस लड़की को 'ब्वाय' लाया था, उसकी रहस्यमता ने उसे प्रथम क्षण से ही विस्मय में डाल दिया था, और वह विस्मय प्रतिपल बढ़ता चला जाता था। वह लड़की कहाँ से आई, क्या समझकर उन लोगों के बीच में आकर बैठ गई, और जब से आई, तो प्रथम क्षण से ही असहनीय बेचैनी से क्यों छटपटाने लगी! उसकी आँखों से जो एक मार्मिक विकलता व्यक्त हो रही थी वह ऐसी सच्ची और अकृत्रिम थी कि कोई भी अनुभूतशील व्यक्ति उसके प्रति उदासीन नहीं रह सकता था। उसके उस व्याकुल भाव ने प्रारंभ में पारसनाथ के मन में यह धारणा उत्पन्न कर दी थी कि होटलवाले किसी भले घर की लड़की को कहीं से बरबस भगाकर लाए हैं और उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध पेशा करने के लिये बाध्य कर रहे हैं। इस कल्पना से उसका खून खौलने लगा था। अपने साथियों को डाँट

बताकर उस लड़की को उनके पञ्जों से छुड़ाने के संबंध में जो फुर्ती उसने दिखाई थी उसका यही कारण था—नहीं तो इस तरह की फुर्ती उसके स्वभाव के प्रतिकूल थी, और अक्सर ऐसे अवसरों पर वह चुप लगा जाया करता था, और अपने साथियों की सभी ज्यादतियों का एक प्रकार से मौन समर्थक-सा बना बैठा रहता था। पर जब उसने अपनी जेब से पाँच रुपये का नोट निकालकर 'हर्जाने' के बतौर लड़की को दिया और केवल क्षण-भर की झिझक के बाद लड़की ने उसे स्वीकार कर लिया, तो पारसनाथ को बिजली का-सा धक्का लगा। फिर भी इस बात से उसकी शंका का समाधान तनिक भी नहीं हुआ और उसका कौतूहल घटने के बजाय और अधिक भड़क उठा। ताँगा हिचकोले खाता हुआ तेज रफ़ार से चला जा रहा था। अपने को गिरने से बचाने के उद्देश्य से पारसनाथ पूरी ताकत से पीतल का डंडा पकड़े हुए था। स्प्रिंग का गद्दा पुराना हो चला था। उसका स्प्रिंग भी भीतर से दो-तीन स्थानों पर टूट गया था और पारसनाथ के शरीर में बुरी तरह से गड़ रहा था। गद्दे के ऊबड़-खाबड़ होने और घोड़े की चाल तेज होने के सबब पारसनाथ अपनी सीट पर ठीक तरह जम नहीं पाता था। बार-बार वह गद्दे पर से खिसक जाता था और फिर-फिर उसे सँभल कर बैठना पड़ता था। इस क्रिया से उसकी एकांत चिंतना में बाधा पहुँचने के अलावा शारीरिक कष्ट भी कुछ कम नहीं हो रहा था। पर यह सब होने पर भी उसने ताँगावाले से यह नहीं कहा कि ताँगे को धीरे-से चलावे। बार-बार उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न होती थी कि ताँगेवाले को टूटे हुए स्प्रिंग का बेडौल गद्दा रखने और एकदम घिसे हुए टायरों वाला ताँगा चलाने के लिये खूब जोरों की डाँट बतावे, पर हर बार बात उसके ओठों तक आकर रुक जाती थी। वह मन-ही-मन सैकड़ों गालियाँ ताँगेवाले को दे रहा था, पर निपट आलस्य और अवसादवश एक

शब्द भी मुँह से नहीं निकल पाता था। हर तीसरे क़दम पर ताँगा भयंकर रूप से हिचकोले खाता था और पारसनाथ अपनी सीट से बिछलकर उचक उठता था, और हर बार वह ताँगेवाले को मन-ही-मन गाली देकर मन मारकर रह जाता था।

पीतल के डंडे को कसकर पकड़े हुए वह शरीर की उस डाँवा-डोल स्थिति में भी अपनी मानसिक चिंताधारा को बरबस एकाग्र करने के असंभव प्रयास में लगा हुआ था। वह सोच रहा था—"यदि वह लड़की बलपूर्वक भगाकर लाई है, और पेशे से उसे आंतरिक चिढ़ है, तो उसने मेरे दिये हुए पाँच रुपये स्वीकार क्यों कर लिए? और जब मैंने उन दो दुष्टों की ज्यादतियों से उसे मुक्त करने के उद्देश्य से उससे कहा कि यदि वह चाहे तो उठकर जा सकती है, उसे कोई नहीं रोकेगा, तो वह अनिच्छा से क्यों उठी? बड़ी निराली, बड़ी ही रहस्यमयी लड़की मालूम होती है!" इतने में ताँगे ने बड़ा ज़बर्दस्त हिचोकला खाया और पारसनाथ फिर एक बार अपनी जगह से बिछलकर उचक उठा और 'धत्तेरे की!" कहकर मन-ही-मन ताँगेवाले को बड़ी विचित्र गाली देने लगा। ताँगा एक सुनसान सड़क से होकर जा रहा था। कृष्णपक्ष की रात थी। जिस सड़क से होकर ताँगा जा रहा था वहाँ की बिजली की लाइन किसी कारण से फेल हो गई थी, जिसके फलस्वरूप सड़क में अँधेरा हो गया था।

"निश्चय ही वह लड़की पेशेवर है,"—वह सोचता चला गया—"और साधारण पेशेवर नहीं, बल्कि बहुत घुटी हुई है। अपने मुख पर घबराहट का भाव व्यक्त करके ग्राहकों पर अपने स्वभाव की रहस्य-मयता द्वारा गहरा प्रभाव डालने की कला में वह प्रवीण हो चुकी है। वह जान गई है कि ग्राहकों के चोंचलों के प्रति आत्मसमर्पण न करके और अपने स्वभाव का यथार्थ परिचय न देकर ग्राहकों को उत्सुकता

के चक्कर में डाले रहना अधिक से अधिक पैसा कमाने का अच्छा तरीक़ा है !" पारसनाथ को अपने पाँच रुपयों के लिये बड़ा अफ़सोस होने लगा। नशे के क्षणिक प्रभाव से भावुकता के फेर में पड़कर उसने अपनी वर्तमान तंगी की हालत में व्यर्थ में पाँच रुपये का खून कर दिया—यह सोच-सोचकर वह जी मसोसने लगा। वास्तव में पाँच रुपया ख़र्च होने की पीड़ा ताँगे पर सवार होने के समय से ही कभी ज्ञात में और कभी अज्ञात में उसे निष्ठुर रूप से सता रही थी। उसे इंश्योरेंस कंपनी के एजेण्ट पर बड़ा क्रोध आ रहा था, जिसने 'राग-रंग मनाने' के उद्देश्य से उस लड़की को बुलाकर एक विचित्र और अरुचिकर स्थिति उत्पन्न कर दी।

सच बात यह थी कि जिन व्यक्तियों के साथ आज पारसनाथ ने पान और भोजन किया था उनमें से किसी से भी उसने कभी हार्दिक योग का अनुभव नहीं किया। उन लोगों के साथ वह अनेक बार नशा-पानी कर चुका था, पर कभी एक दिन के लिये भी उस नशे के फलस्वरूप उसके मन में किसी प्रकार की सुखद तरंग नहीं उठी। वह कई बार मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर चुका था कि उन लोगों की मंडली में भविष्य में शरीक नहीं होगा। पर उसकी वह प्रतिज्ञा कभी पूरी नहीं हो पाई। उसे केवल उस रहस्यमयी लड़की के कारण व्यर्थ में पाँच रुपया नष्ट होने का ही दुःख नहीं हो रहा था, बल्कि अपने 'मित्रों' के साथ खाने-पीने में जो रुपया ख़र्च हुआ था, उसके लिये भी काफ़ी अफ़सोस हो रहा था। पर सबसे अधिक ग्लानि उसके मन में इस बात से उत्पन्न हो रही थी कि इतना रुपया (जो उसकी उस समय की आर्थिक अवस्था को देखते हुए काफ़ी बड़ी रक़म थी) ख़र्च होने पर भी उसे एक पैसे के मूल्य का भी सुख प्राप्त न हो सका। यद्यपि उसने अपने किसी भी साथी की अपेक्षा कम शराब नहीं पी थी, तथापि होटल से बाहर निकलते ही उसका सारा नशा काफ़ूर हो गया था। उसका

यह अनुभव नया नहीं था, पर मज़े की बात यह थी कि इस समय अपने साथियों को कोसने पर भी वह जानता था कि यदि कल फिर उससे प्रस्ताव किया जाय तो वह तत्काल 'पार्टी' में शरीक होने के लिये राजी हो जायगा। केवल इसी एक बात को लेकर उन लोगों से उसका हेल-मेल था, वर्ना वह उन सब को अतिशय घृणा की दृष्टि से देखता था। इस समय भी वह सोच रहा था—"वे सब अत्यंत घृणित जीव हैं। इस बात से वे स्वयं भी परिचित हैं और इसी कारण बाहर से घनिष्ठ मित्र बने रहने पर भी भीतर-ही-भीतर एक दूसरे से घृणा करते हैं। एक असहाय और विवश वेश्या को पाँच आदमियों के सामने ज़लील किये बिना उनका 'मूड' नहीं जमने पाता। लुच्चे कहीं के! और उस मूर्ख कवि को देखा? अपने को युग का प्रवर्त्तक समझता है! बड़ा आया कहीं का प्रवर्तक! नम्बरी लफङ्गा है।" वास्तव में एक रोज़ ताव में आकर उक्त कवि कह बैठा था कि "मैं क्रांति का अग्रणी हूँ—इस समय हिन्दी-जनता मेरी कविताओं का आदर नहीं करती, पर सौ वर्ष बाद मेरी चीज़ों का वह आदर होगा कि मेरे सब आलोचक बंदरों की सी शकल बनाकर रह जावेंगे—मैं उसी दिन की प्रतीक्षा में हूँ।" जब उसके ध्यान में यह बात लाई गई कि सौ वर्ष बाद न उसके वर्तमान आलोचक जीवित रहेंगे न वह, तो वह बोला—"इसी बात का तो अफ़सोस है! फिर भी मेरी आत्मा को तो संतोष होगा।" इस पर जब प्रचलित मंडली के एक सज्जन ने कहा—"आप रूढ़िवा विरोधी होने पर भी क्या आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास कर तो कविजी तत्काल सँभल गए और बोले—"हाँ, हाँ, आप हैं। मैं भूल ही गया था। दर असल आत्मा और परमात करना प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति का परिचय देना विश्वास करने की पुरानी आदत पड़ी हुई है न, गई! क्षमा कीजियेगा!"

यह कथोपकथन पारसनाथ के सामने हुआ था। उसकी याद आने पर वह मन-ही-मन हँसने की चेष्टा करने पर भी अपने को न रोक सका और प्रकट रूप से ठहाका मार कर हँस पड़ा। उस निर्जन और प्रायांधकार सड़क में उसे अकस्मात् अकारण अट्टहास करते देखकर ताँगेवाला चौंक उठा। उसने पीछे को मुड़कर आश्चर्य से पारसनाथ की ओर देखा। वह उसके आकस्मिक अट्टहास का कारण पूछने जा रहा था, तब तक पारसनाथ ने अपनी मुद्रा पहले से भी अधिक गंभीर—बल्कि भयावनी—बना ली थी, इसलिये ताँगेवाला सहमकर रह गया, और उसे कुछ पूछने का साहस न हुआ।

चौथा परिच्छेद

मकान के पास पहुँचने पर पारसनाथ ने एक चौराहे पर ताँगे को खड़ा करवाया और किराया चुकाकर एक गली के भीतर चला गया। इस गली के बाद वह बाँई ओर एक दूसरी गली की ओर मुड़ा, जो पहलीवाली गली से तंग थी और कुछ दूर जाने के बाद दाहिनी ओर को मुड़कर एक तीसरी गली में घुसा, जो पिछली दोनों गलियों की अपेक्षा अधिक तंग और अँधेरी थी। उसके बाद एक चौथी गली ...थी। यह चौथी गली जैसी ही तंग और अँधेरी थी वैसी ही गंदी भी ...नी गली के एक छोटे से मकान में पारसनाथ रहता था। गली ...ोर दो नालियाँ मोरियों के अविरत झरना-प्रवाह से प्रति-...ज' होकर निरंतर कलकल शब्द से बहती रहती थीं। ...ारसनाथ उस मकान में आया था तो उस गली ...रूमाल से अपनी नाक ढक लेता था। पर बाद ...आदत पड़ गई, और मोरियों से उड़नेवाली

गंध और ह्विस्की की गंध में कोई अंतर उसके लिये न रह गया। बल्कि यह कहना अत्युक्ति में शुमार न होगा कि उस विशेष गंध ने उसकी नाक के दो छिद्रों से होकर भीतर प्रवेश करके धीरे-धीरे उसके साथ इस हद तक हेलमेल बढ़ा लिया कि वह उसके जीवन का एक आवश्यक उपकरण बन गई। यदि संयोग से कोई दिन ऐसा बीतता जब वह दिन-भर मकान से बाहर रहता, तो उस गली की मोरियों का धाराप्रवाह और नालियों की सड़ायँध उसके मन में विछुड़न की-सी एक विचित्र बेचैनी उत्पन्न करने लगती, और वह जल्दी से जल्दी मकान पर पहुँचने के लिये व्याकुल हो उठता।

गली की गंध से भी अधिक मोह उसे अपने मकान की गंध के प्रति हो गया था। मकान के दरवाजे का ताला खोलते ही भीतर जाने के लिये एक गलीनुमा रास्ता मिलता था, जिसकी दाहिनी बगल में गुसलखाना और बाँई बग़ल में युगों से संचित सील से तर एक कमरा था जो 'बैठक का कमरा' कहलाता था। ज्योंही पारसनाथ ने दरवाजा खोला त्योंही प्रतिदिन की तरह गुसलखाना और सील से तर फ़र्श की परिचित गंध ने उसका स्वागत किया। दरवाज़ा भीतर से बंद करके एक दियासलाई जलाकर उसकी रोशनी के सहारे वह भीतर गया। भीतर एक दस फोट चोड़ा और सवा सात फ़ोट लंबा 'सहन' मिलता था जिसकी प्रायः एक चौथाई जगह पानी के नल से लगे हुए हौज़ ने घेर ली थी। 'सहन' से होकर ऊपर को सीढ़ियाँ जाती थीं और उन सीढ़ियों को पार करने के बाद एक बरामदा मिलता था। उस बरामदे से लगे हुए एक कमरे में पारसनाथ रहता था। और उसी कमरे में उसका 'स्टूडियो' भी था। उस कमरे की दक्खिन की ओर की दीवार से सटा हुआ एक दुमंज़िला कच्चा मकान था, जिसमें पासियों के दो-तीन कुनबे रहते थे। उत्तर की ओर 'सहन' की दीवार से सटा हुआ एक और कच्चा मकान था जिसमें मुसलमान

कसाइयों के तीन या चार परिवार रहते थे। सामने—पच्छिम की ओर, गली की दूसरी बगल में—दो-चार छोटे-छोटे पक्के मकान थे, जिनमें हिन्दू तमोली और मुसलमान बीड़ीवाले रहते थे। उत्तर की ओर बारियों और कुर्मियों की झोंपड़ियाँ थीं।

पर अपनी गली की उस हरिजन बस्ती के बीच में उसे घर की-सी सुरक्षित अवस्था की अनुभूति होती। वहाँ उसके पड़ोसियों का दैनिक जीवन उसके अपने आंतरिक जीवन से बहुत मेल खाता हुआ-सा मालूम होता। दूर देश में भटका हुआ पंछी जिस प्रकार अपने स्वजातीय पक्षियों के बीच में आकर चैन की साँस लेता है—पारसनाथ भी उस गली में 'अपनों' के बीच में एक नीड़—बल्कि बिल—का [illegible]धान करके परम संतुष्ट था।

पारसनाथ ने बत्ती नहीं जलाई, यद्यपि चारों ओर कृष्णपक्ष की रात का घना अँधेरा छाया था। पूर्व अभ्यास की सहायता से उसने कपड़ों को उतार कर उन्हें ठीक स्थान पर टाँग दिया और जूते उतारकर चुपचाप पलंग पर लेट गया। उसके लेटते ही दक्खिन की तरफ की दीवार से सटे हुए मकान से सहसा विकट चीत्कार और कोलाहल मचता हुआ सुनाई दिया, और उसके बाद 'पटापट—पटापट—पटापट !' का शब्द और साथ ही वीभत्स, अश्लील और अश्राव्य गालियों की बौछार माजरा क्या है, यह जानने में पारसनाथ को तनिक भी देर न लगी, क्योंकि वह रोज इस तरह की बातें सुनने का आदी हो गया था। एक पासी ताड़ी पीकर आया था और आते ही अपनी पत्नी के मुँह से एक कटु व्यंग की बात सुनकर वह उचक उठा और एक लाठी से उसे तड़ातड़ पीटना शुरू कर दिया। पासिन भयंकर शब्द से रोने-चिल्लाने लगी और साथ ही अपने पति को माँ-बहन की गालियाँ देने लगी। इस पर उसका पति उन्हीं गालियों पर डबल कालिमामय रंग चढ़ा-

कर उनसे ताबड़तोड़ मशीनगन की तरह फायर पर फायर करता चला गया। और बीच-बीच में लाठी-चार्ज चलता जा रहा था। गालियों का अंश बहुत-कुछ काट-छाँट देने के बाद उसकी बात इस रूप में पारसनाथ के कानों में आई—"रंडी! हरामज़ादी! मैं उस आदमी को अच्छी तरह जानता हूँ जो तेरा यार है, जिससे फँस कर तू मुझे कुत्ते से भी बदतर समझने लगी है। तुझे खिलाऊँ पिलाऊँ मैं, और गिरस्ती का सुख उठावे दूसरा! मैं आज ख़ास तौर से इसी लिये ताड़ी पीकर आया हूँ कि अपने दिल की बातें साफ़-साफ़ कह सकूँ—और—और मैं तेरा ख़ून करूँगा, और तेरे उस यार का भी!" यह कहकर उसने फिर तड़ातड़ पीटना शुरू किया, और उसकी स्त्री इस क़दर दहाड़ने लगी कि पास ही एक पीपल के पेड़ पर बसेरा लेने वाले बगलों के बच्चे सोते हुए जग पड़े और मारे घबराहट के किकयाने लगे। इतने में उसी मकान के नीचे के कमरों में रहनेवाले पासी और पासिनों ने वहाँ आकर एक वावैला-सा मचा दिया। कोई उस स्त्री का पक्ष लेने लगा और कोई उसके शराबी पति का।

पासियों का झगड़ा अभी शांत नहीं होने पाया था कि पूर्व की तरफ़ मुसलमान क़साइयों के यहाँ से ठीक उसी तरह की चिल्लाहट का बगूला-सा उठा। आश्चर्य की बात यह थी कि वहाँ भी एक मर्द अपनी स्त्री को पीटने लगा था और गाली के लिये ठीक उसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग कर रहा था जो उसके पड़ोसी पासी के मुँह से निकल रहे थे—जैसे दोनों ने एक ही स्कूल में पढ़कर एक ही शब्दकोष का अध्ययन किया हो।

पारसनाथ को अपने पड़ोसियों का वह तूफ़ानी कोलाहल तनिक भी अप्रिय और कर्णकटु नहीं मालूम हो रहा था। उसे उन सब

बातों में बड़ा रस मिल रहा था। उसके मुहल्ले में प्रायः प्रतिदिन इस तरह के झगड़े-फ़साद होते रहते थे और वह उनका आदी हो गया था। दिन-रात चारों ओर के उस विकृत कोलाहल और सड़ी हुई गंध के बीच अपने कमरे में बैठा या लेटा हुआ वह ऐसे आराम का अनुभव करता जैसे सैकड़ों कुलबुलाते और फुफकारते हुए साँपों के बीच में पड़ा-पड़ा लहराता हुआ एक अच्छा खासा नाग। शिक्षित, सभ्य और संपन्न व्यक्तियों के बीच में हमेशा एक ऐसी बेचैनी का अनुभव उसे होता था जिसका ठीक वर्णन करने में वह असमर्थ था उन लोगों की मंडली में उसे ऐसा लगता जैसे वह एक विजातीय वातावरण के बीच में आ पड़ा हो, जहाँ वह किसी हालत में भी सुरक्षित नहीं है। भीतर ही भीतर उन लोगों से शंकित और घबराया हुआ-सा रहता, यद्यपि बाहर से ऐसा भाव जताता जैसे वह किसी से नहीं डरता और किसी व्यक्ति से किसी भी विषय में उसका स्थान नीचा नहीं है।

पाँचवाँ परिच्छेद

लेटे-लेटे पारसनाथ ने फिर एक बार उस लड़की का ध्यान किया जिसे आज वह होटल में पाँच रुपया दे आया था। वह सोचने लगा—"क्या यह संभव है कि उस लड़की के मन पर मेरे उच्चाशय से प्रेरित व्यवहार का प्रभाव पड़ा होगा! उसने मेरे उस व्यवहार को किस रूप में ग्रहण किया होगा? क्या उसके मन में यह धारणा न जमी होगी कि जिस मण्डली के बीच में वह बैठी थी उसमें केवल एक ही व्यक्ति ऐसा था जो स्त्रियों की इज़्ज़त करना जानता है! मैंने जो उसे बिना किसी स्वार्थ-सिद्धि के पाँच रुपये दिए, मेरी उस उदारशीलता के प्रति

क्या वह उदासीन रह सकती है ?" सोचते-सोचते वह अपनी विचार-धारा का मज़ाक स्वयं उड़ाने लगा—"स्त्रियों की इज़्ज़त' की बात मैंने खूब सोची ! स्त्री और उसकी इज़्ज़त ! आज तक कितनी स्त्रियों की इज़्ज़त मैंने की है ! और करूँ भी क्यों ? इस जाति में ऐसा कोई गुण है भी जिसका आदर किया जा सके ! मेरा ध्रुव विश्वास है कि संसार में केवल वे ही स्त्रियाँ 'सती-साध्वी' होने का ढोंग रच सकती हैं जिन्हें या तो समाज के कड़े बन्धनों ने स्वेच्छाचरण का मौक़ा नहीं दिया है या जिन्हें प्रार्थित पुरुष प्राप्त नहीं हो पाए हैं। मैं अभी यदि किसी 'साध्वी' स्त्री के पीछे पड़ जाऊँ तो देखूँ कि वह अपने सतीत्व को किस हद तक क़ायम रख सकती है !" वह मन-ही-मन याद करने लगा कि किन-किन 'उच्च श्रेणी' की स्त्रियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का मौक़ा उसे मिला था, जिनसे किसी कारण से वह कतराता रहा। इसके बाद जिन-जिन 'निम्न श्रेणी' की स्त्रियों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर चुका था, उनके चित्रों को अपना मानसिक 'अलबम' खोलकर उलटने लगा। उनमें से एक का चित्र आग की लपट की तरह जलते हुए रंग से आलोकित हुआ और उसकी भीतरी आँखों के आगे झलझलाने लगा। जब वह दार्जिलिंग में था तो वहाँ की एक पहाड़ी लड़की से उसका परिचय हो गया था, और वह परिचय धीरे-धीरे घनिष्ठता में परिणत हो गया। पहाड़ी खूबानी की तरह, आग से पिघलते हुए सोने का-सा उसका रंग था और खूबानी की तरह उसका गोल मुख स्वास्थ्य और सरसता से भरपूर था। उसके सिर के घने काले और चिकने बाल, सुडौल भौंहें, न बहुत छोटी, न बहुत बड़ी आँखों की घनी और लम्बी बरौनियाँ, न बहुत चिपटी और न बहुत तीखी नाक, लंबे-पतले, रंगे हुए-से ओठ, सब मिलकर उसके प्रसन्न मुख को एक अनोखा आकर्षण प्रदान करते थे। पारसनाथ के पिता कालिम्पांग में ऊन का व्यवसाय करते थे। उनसे

झगड़कर वह दार्जिलिङ्ग चला गया था और वहाँ एक नेपाली हाई स्कूल में लड़कों को पढ़ाने का काम उसे मिल गया था। एक दिन कानिवल में उस पहाड़ी लड़की से उसका प्रथम परिचय हुआ। जुए के एक 'स्टाल' पर अंटा-गुड़गुड़ का खेल चल रहा था। वह लड़की वहाँ पर खड़ी थी और उस खेल में पूरी दिलचस्पी ले रही थी। पारसनाथ जानता था कि दार्जिलिंग में भले घरों की लड़कियाँ भी इस तरह के खेलों में दाँव लगाना अच्छा विनोद समझती हैं; इसलिये उस लड़की को खेलते देखकर उसे कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। वह कभी आठ आना और कभी एक रुपया दाँव पर लगा रही थी। कभी जीतती थी और कभी हारती थी; पर जिस समय से पारसनाथ ने उसमें दिलचस्पी लेनी शुरू की, तब से अधिकतर उसकी हार ही होती चली जा रही थी। एक बार वह एक-एक करके लगातार पाँच रुपये हार गई। हार के कारण उसका गौरवर्ण मुख तमतमा उठा था, जिससे उसका आकर्षण पारसनाथ को दुगना बढ़ा हुआ मालूम होता था। इसके बाद एक घटना घटी। लड़की ने 'ताज' पर एक रुपया रखा। जब अंटा-गुड़गुड़ का टेबिल पर उलटाया हुआ डिब्बा ऊपर उठाया गया, तो सब ने आश्चर्य से देखा कि तीनों गोटियों के ऊपर ताज के चिह्न हैं। इस हिसाब से दाँव का तिगुना रुपया मिलेगा, इस आशा से लड़की का मुख प्रसन्नता से चमक उठा। पर उसके दुःख और आश्चर्य की सीमा न रही जब उसके रुपये पर एक दूसरे व्यक्ति ने, जिसकी शक्ल गुण्डे की-सी थी, अधिकार जमाना चाहा। उस व्यक्ति ने कहा कि वह रुपया उसने दाँव पर रखा है। लड़की ने पूरी ताकत से गुण्डे की अनधिकार चेष्टा का विरोध किया, पर गुंडा बड़ा शोर और ऊधम मचाने लगा। लड़की रोनी-सी सूरत बनाकर दुःख, ग्लानि और लज्जा के कारण चुप हो गई। इतने में पारसनाथ उस गुण्डे के पास गया और उसने सब दर्शकों के सामने उससे यह प्रस्ताव किया कि वह उस रुपये पर लड़की

का अधिकार स्वीकार कर ले, क्योंकि वास्तव में वह रुपया उसी का है, और इस स्वीकृति के बदले में वह उसे चार के बजाय पाँच रुपये अपनी गाँठ से देगा। गुंडा पहले थोड़ा-सा बड़बड़ाया, पर बाद में लोभवश उसने पारसनाथ की बात मान ली। स्टालवाले ने दाँव के एक रुपये के साथ तीन रुपये और मिलाकर चारों रुपये लड़की को दे दिए। इधर पारसनाथ ने गुंडे को पाँच रुपये देकर उससे चुपचाप वहाँ से चल देने को कहा। गुंडा बिना किसी आपत्ति के चला गया। इसके बाद पारसनाथ ने लड़की की ओर देखा। वह लड़की भी उसी की ओर देख रही थी। उसके सुन्दर मुख पर विस्मय और कौतूहल से मिश्रित कृतज्ञता का भाव झलक रहा था। पारसनाथ अपने उद्देश्य की सफलता देख कर मन-ही मन प्रसन्नता से पुलकित हो उठा। वह दाँव लगाती जाती थी, और बीच-बीच में अपनी सुन्दर कुतूहली आँखों से ससंकोच पारसनाथ की ओर देखती थी। प्रायः बीस मिनट बाद वह लड़की अपने साथ की दो और लड़कियों के साथ वहाँ से चली गई। जाते समय उसने एक पूर्ण उत्सुकता-भरी दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखा। पारसनाथ का रोआँ-रोआँ विकल हो उठा। वह भी उसके पीछे-पीछे चक्कर लगाने लगा—एक शोहदे की तरह नहीं, बल्कि बड़ी शालीनता के साथ, सहज-स्वाभाविक ढंग से। लड़की जिस किसी भी स्टाल में जाती वह भी उलटे रास्ते से होकर वहाँ पहुँच जाता, और काफी दूर हटकर खड़ा रहता—जैसे वह इत्तफ़ाक़ से वहाँ आ पहुँचा हो।

इसके बाद उसने इस बात का पता लगाना शुरू किया कि वह लड़की कहाँ रहती है और क्या करती है। अपने एक नेपाली मित्र से उसे मालूम हुआ कि वह छोटी-छोटी लड़कियों के एक स्थानीय म्युनिसिपल स्कूल में मास्टरनी है। यह भी मालूम हुआ कि उसकी माँ उसे दूध-पीती अवस्था में ही छोड़कर चल बसी थी, और उसके पिता उसकी

माँ की मत्यु से भी पहले घर से लापता हो गए थे, और अभी तक उनका पता नहीं लग सका। एक रोमन कैथोलिक पादरी ने एक देशी ईसाई परिवार में उस लड़की के पालन-पोषण का प्रबंध कर दिया और उसका नाम रेबेका रखा। बाहर के लोगों ने उसका नाम 'कांची' रखा, क्योंकि जिस परिवार में वह पली थी वहाँ की सब लड़कियों से वह छोटी थी। उसके हाई स्कूल पास करने के एक साल बाद बूढ़े पादरी की मृत्यु हो गई। पादरी की मृत्यु के बाद पूर्वोक्त ईसाई परिवार के लिये वह भार-स्वरूप हो गई, क्योंकि पादरी प्रतिमास नियमित रूप से लड़की के पोषण का जो खर्चा दिया करता था, वह अब बंद हो गया। लड़की अब काफी समझदार हो चली थी। वह स्वयं अपने 'पोषकों' से मुक्ति पाने की चेष्टा में थी। म्युनिसिपल स्कूल में नौकरी लगते ही वह अलग रहने लगी। पारसनाथ ने देखा कि ऐसी हालत में लड़की से हेलमेल बढ़ाने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिये। उसके उसी नेपाली मित्र ने रेबेका से उसका व्यक्तिगत परिचय करा दिया। इसके बाद बड़ी तेजी से दोनों में घनिष्ठता बढ़ती चली गई। वास्तव में वह लड़की प्रारंभ से ही उस पर रीझ गई थी। क्यों रीझ गई, इसका कारण भी पारसनाथ से छिपा नहीं रहा। पारसनाथ अवश्य देखने में सुंदर था, पर यह बात उससे छिपी न रही कि उसकी सुंदरता के कारण रेबेका उसके प्रति आकर्षित नहीं हुई है, और यह भी कोई विशेष कारण नहीं था कि अंटा-गुड़-गुड़ के खेल में उसने अपने पाँच रुपयों पर पानी फेरकर लड़की का पक्ष-समर्थन किया। यह प्रारंभिक चुग्गा अवश्य था, पर इससे अधिक नहीं। जिस बात ने लड़की को सबसे अधिक प्रभावित किया वह थी पारसनाथ की मंद-मधुर और सहृदय मुसकान, उसके मुख के भाव की शिष्ट, शालीन और समवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति। अपने स्वभाव का विश्लेषण करते-करते इतने वर्षों के अनुभव के बाद पारसनाथ भली भांति समझ

गया था कि उसके मुख की यह अभिव्यक्ति यद्यपि एक बाहरी मुखड़ा है, तथापि वह मुखड़ा ऐसा अकृत्रिम जान पड़ता है कि कोई भी उसे देखकर धोखे में आ सकता है। उसके उस मुखड़े के नीचे उसका जो असली व्यक्तित्व सैकड़ों काले साँपों की तरह संयुक्त कुंडली-चक्र रचे हुए है, वह प्रारम्भ में छिपा ही रह जाता है।

कुछ भी हो, वह लड़की सौ जानों से उसपर मर मिटी। घनिष्ठता बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक बढ़ी कि दोनों के बीच शारिरिक प्रेम-संबंध स्थापित हो गया। पारसनाथ कभी उसे रेवेका कहकर पुकारता, कभी 'काञ्ची' कहता और कभी 'कांचनी'। पारसनाथ ने उसका एक तैल-चित्र अंकित किया। जब चित्र पूरा तैयार हो गया तो काञ्ची को वह इतना पसंद आया कि वह बहुत देर तक उसे देखती रह गई। उस चित्र के कारण पारसनाथ पर उसकी श्रद्धा चौगुनी बढ़ गई। वह उसे एक असाधारण प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति समझने लगी। पारसनाथ कभी उसे सैर के लिये बर्च-हिल के पास किसी एकांत स्थान में ले जाता, कभी महाकाल के मन्दिर के पास एक बेंच पर बैठकर दोनों सूर्यास्त के समय सामने हिमालय के विस्तार का दृश्य देखते। कभी छुट्टी के दिन टाइगर-हिल से सूर्योदय की अनुपम छटा देखने पहुँच जाते। पारसनाथ हिम-पर्वतों और उनकी चोटियों के ऊपर, अथवा नीचे के बादलों पर अस्तगामी अथवा नवोदत सूर्य की रंग-बिरंगी छटा के प्रस्फुटन पर बड़ी बारीकी से ग़ौर करता कि कहाँ पर कौन रंग गहरा है, कौन हलका और कौन मिश्रित। अपने मानसिक पट पर उस दृश्य को अंकित करके वह अपने चित्र में उसे अविकल उतारने में बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर लेता।

कुछ महीनों तक रेवेका के साथ उसका रोमांस बिना किसी विघ्न-बाधा के झरने के मुक्तप्रवाह की तरह चलता रहा। दोनों में से

किसी ने उस 'रोमांस' के फलस्वरूप अपने भीतर की यथार्थ प्रतिक्रिया का परिचय बहुत दिनों तक दूसरे को न दिया। इसका एक कारण शायद यह था कि दोनों नवयौवन की उमंग में बहे चले जा रहे थे और उनका ऊपरी मन उस बहे चले जाने को ही सबसे महत्त्वपूर्ण बात समझ रहा था। पर कुछ महीनों बाद काञ्ची के अंतर्मन के मंथन की प्रतिक्रिया उसके सचेत मन पर भी होने लगी। वह प्रारंभ से ही पारसनाथ को आत्म-समर्पण करके उस पर पूर्ण विश्वास किये बैठी थी। उसके मन में यह निश्चित विश्वास जमा हुआ था कि पारसनाथ से उसका जो संबंध स्थापित हुआ है वह आजीवन स्थायी रहेगा—इसमें किसी भी कारण से अन्यथा हो सकता है, इस बात की कल्पना ही उसके मन में कभी नहीं उठी। पारसनाथ का जैसा व्यवहार उसके प्रति था उसकी सहृदयता और सचाई के संबंध में संदेह का लेश भी कभी उसके भीतर उत्पन्न नहीं हुआ। पर कुछ महीनों के अनुभव से उसकी सामाजिक दृष्टि सजग हो उठी, और एक दिन जब दोनों संध्या के समय 'बर्च-हिल' के एक एकांत बेञ्च पर बैठे हुए थे, तो अकस्मात् वह पारसनाथ से प्रश्न कर बैठी कि विवाह के लिये उसने कौन महीना निश्चित किया है और विवाह किसी आर्य-मंदिर में होगा या गिर्जे में। अन्यमनस्क पारसनाथ के ऊपर अकस्मात् जैसे बिजली कड़क उठी। इतने दिनों तक कभी एक क्षण के लिये भी विवाह की कोई कल्पना ही उसके मन में उदित नहीं हुई थी।

वह कुछ देर तक चकित दृष्टि से काञ्ची की ओर देखता रह गया, और फिर बोला—"विवाह! कैसा—किसके विवाह की बात तुम कर रही हो!"

काञ्ची ने शांत भाव से कहा—"हम दोनों का और किसका! मेरा यह ख्याल है कि हिन्दू मत से ही विवाह ठीक रहेगा, और मैं जल्दी ही किसी आर्य-संस्था द्वारा अपनी शुद्धि कराना चाहती हूँ।

मैंने सुना है कि मेरे माँ-बाप हिन्दू थे, और मेरे जन्मगत संस्कार भी हिंदुओं के-से हैं।"

पर पारसनाथ को जैसे किसी ने एक ऊँचे चट्टान की चोटी पर से उठाकर नीचे खड्ड पर पटक दिया हो। उसके सँभलने में काफ़ी देर लगी। जब कुछ स्थिर हुआ, तो अपना यथार्थ मनोभाव यथेष्ट सफलता से छिपाकर वह बोला—"ठीक है। मेरी भी यही राय है, किसी विश्वसनीय और मान्य संस्था द्वारा शुद्धि करानी होगी। मैं जल्दी ही इस संबंध में पूछताछ करूँगा।"

इसके प्रायः एक सप्ताह बाद एक दिन पारसनाथ अपना बोरिया-बँधना उठाकर चम्पत हो गया, और फिर कभी दार्जिलिंग नहीं गया।

छठा परिच्छेद

प्रारंभ में व अपने जीवन के इस प्रथम 'रोमांस' की याद करके मन-ही-मन खू हँसा करता और सोचता—"अच्छा बेवकूफ़ मुझे बनाना चाहत थी वह छोकरी! खूब बचा भैया, खूब बचा! नहीं तो उसके ज में प्रायः फँस ही चुका था। कैसी भोली बनी रहती थी! शुद्धि कराके हिन्दू मत से विवाह करने चली थी! किस क़दर बनने ल थी! न जाने मुझसे पहले कितनों से संबंध स्थापित कर चुकी है। ये पहाड़ी छोकरियाँ अपनी चारित्रिक लीला से स्वयं शैतान भी धोखे में डाल सकती हैं।" पर उसे उस समय पता नहीं था कि उ 'पहाड़ी छोकरी' के संसर्ग से उसके मन के मर्मस्थान पर प बहुत छोटी सी फुंसी निकल आई है, जो छोटी होने पर भी बाद ब त विषैली सिद्ध होने लगी, और धीरे-धीरे उसका आकार भी ा। कई दिनों तक उस स्थान पर समय-समय पर ऐसी! मुझे

उठा करती थी कि असह्य पीड़ा से वह कराह उठता था। उसने अनेक मानसिक उपचार किए, पर मर्म की वह फुंसी जिसने प्रायः एक फोड़े का रूप धारण कर लिया था, किसी प्रकार भी अच्छी नहीं हुई। धीरे-धीरे वह फोड़ा नासूर में परिणत हो गया और वह उसके जीवन का एक अंग बन गया। उससे उठनेवाले दर्द और निरन्तर बहनेवाले मवाद से वह अभ्यस्त हो गया। और वह मवाद भी ऐसा विषैला था कि जिन-जिन व्यक्तियों के घनिष्ठ संपर्क में पारसनाथ आता था उनके भीतरी स्तर पर उस घाव का चेप लगते ही वे भी उस मानसिक राजरोग से आक्रांत हो जाते।

लेटे-लेटे पारसनाथ सोचने लगा कि वह काञ्ची के अकपट प्रेम और सर्वस्व समर्पण का तिरस्कार करके क्यों उससे कतराकर भाग निकला ? यदि उससे विवाह कर लिया होता तो उसमें हानि ही क्या थी ? वह नौकरी करके कुछ कमा ही रहा था और स्वयं काञ्ची को भी स्कूल से कुछ-न-कुछ मिलता ही था। इसलिये आर्थिक समस्या उसके सामने निश्चय ही नहीं थी। तब कौन-सी रुकावट थी ? सामाजिक ! फूः ! सामाजिक रुकावट ! समाज से उसका क्या सम्बन्ध, जब कि वह अपनी 'व्यभिचारिणी' माता और 'धूर्त और लंपट' पिता से हमेशा के लिये नाता तोड़कर घर से बाहर निकल पड़ा था ! तब क्यों उसने काञ्ची के समान सहृदय और स्नेहशीला लड़की से विवाह करके स्थायी बंधन में बंधने से अस्वीकार कर दिया ! यदि उससे विवाह कर लिया होता तो आज इस गली-रूरी नरक का कीड़ा बनने की नौबत न आती; खाने और पीने की जो अव्यवस्था बरसों से उसके पीछे लगी हुई है वह न रहने पाती, और उसके वर्तमान उच्छृंखल और अस्तव्यस्त जीवन की जो अनिश्चित गतिविधि उसे परेशान किये हुए है वह संभवतः एक सुन्दर, शुभकर शृंखला में बंधकर सहज सुखमय शांति का रूप धारण कर लेती। इतनी मूर्खता, ऐसी भयंकर भूल उससे क्यों हुई !

संभव हुई ! "हाँ ठीक है ! (—उसने मन-ही मन कहा—) व्यभिचारिणी माता और क्रूर और कपटी 'पिता' ने जो सबक़ मुझे सिखाना है उसका असर कहाँ जावेगा ? मैं क्यों किसी स्त्री से स्थायी संबंध जोड़ूँ जब मेरी माँ ने (जो कान्नो से कुछ कम सहृदय और स्नेहशील नहीं जान पड़ती थी) अपने आचरण से मेरे 'पिता' के मन पर यह विश्वास जमा दिया है कि सतीत्व या सदाचार नाम की कोई चीज़ किसी भी स्त्री में नहीं पाई जा सकती !" अपने 'पिता' बाबू बैजनाथ की वह मर्मघाती बात फिर एक बार उसके अन्तर्मन के स्मृति-पटल को चीरकर ऊपर उठ आई, जो प्रतिदिन प्रतिपल उसके अवचेतन मन को कुरेदती रहती थी। उन्होंने एक दिन एकांत में पारसनाथ से कहा था—"तुझे मालूम है, छोकरा, कि तू अपने बाप का—यानी अपनी माँ के पति का—बेटा नहीं है ! तेरा बाप मैं नहीं, बल्कि शिवशंकर वैद्य है। उस चमार को तूने भी अक्सर अपनी माँ के पास आते-जाते देखा होगा । तेरी सूरत आधी उस चमार से मिलती है और आधी अपनी माँ से। तेरी उस कुलटा माँ के कारण ही मुझे गाँव की जमींदारी छोड़कर यहाँ इतनी दूर—कालिम्पांग में—आना पड़ा है। मैं जानता हूँ कि तू मुझे शराब कबाब और भूटानी स्त्रियों के बीच में देखकर मुझसे घृणा करता है—तेरी आँखों से तेरे मन के इस भाव का पता मुझे स्पष्ट चल जाता है। पर तुझे जानना चाहिये कि मेरी यह दुर्दशा किसने की है ! ज़मींदारी छोड़ने से रुपये-पैसे का कोई घाटा मुझे नहीं रहा—ऊन का जो कारोबार मैंने खोला है उससे बिना किसी परिश्रम के तीन-चार लाख रुपया सालाना मुझे मिल जाता है—पर मेरे भीतर की जो जलन है, जो आग में लाल की हुई सैकड़ों सुइयों से सब समय मेरे मन को छेदती रहती है, वह प्रतिमास एक करोड़ रुपया मिलने पर भी कैसे शांत हो सकती है ! यदि शराब न होती और ये भूटानियाँ न होतीं, तो मैं पागल हो गया होता। इसलिये मैं .खूब शराब पीऊँगा, खूब मज़े उड़ाऊँगा ! मुझे

तेरा डर नहीं है ! और देख, अब से कभी अपनी आँखों को इस तरह चढ़ाकर और नाक-भौंह सिकोड़कर मेरी ओर न देखना—खबरदार ! इस तरह देखना हो, तो मेरे सामने न आना; वर्ना वह देख; वह जो दुनाली बंदूक टँगी हुई है, उससे तेरा काम तमाम कर दूँगा ! जा, भग यहाँ से !"

पारसनाथ ने जब यह बात सुनी तो सन्न रह गया। उसका सिर भिन्नाने लगा और सारा मकान लट्टू की तरह कल्पनातीत तेज़ी से घूमता हुआ मालूम होने लगा। उसके 'पिता' की एक-एक बात आधे-आधे वाक्यों में बिखर गई और वे सब अर्द्ध वाक्य उसके मस्तिष्क के चारों ओर नन्हें-नन्हें-से भूत-प्रेतों की तरह उछल-कूद मचाते हुए उसको मुँह चिढ़ाने लगे।

उस घटना के बाद से पारसनाथ के भीतरी जीवन में भयंकर परिवर्तन आ गया। उसे ऐसा मालूम होने लगा कि जीवन के प्रभात में जो एक रहस्यपूर्ण प्रकाशमय, निर्मल आकाश, एक अज्ञात किन्तु मनोहर स्वप्न की छवि लेकर उसकी आँखों के आगे उतरा था, उस पर किसी ने अपने दानवी हाथ से केवल एक ही बार ब्रश फेरकर एक छोर से दूसरी छोर तक गाढ़ कालिमामय कोलतार पोत दिया है। उस कोलतार की पुताई अब मृत्यु-पर्यन्त नहीं मिटने की—यह ध्रुव विश्वास उसके मन में जम गया। जिस मर्मघाती व्यंग, भयंकर घृणा और कुटिल प्रतिहिंसा की मुद्रा से वह भूकंप और अग्नि-विस्फोट पैदा करनेवाली बात उसके 'पिता' ने उससे कही थी वह आधी रात की एक विकराल भौतिक छाया के रूप में उसके मस्तिष्क के भीतर प्रवेश कर गई, और तब से सैकड़ों तरीकों से झाड़-फूँक करने पर भी वह छाया उसके भीतर से हटी नहीं, बल्कि अधिकतर दृढ़ता से अपना आसन जमाती चली आई थी। कालिंपांग में पारसनाथ ने लामा लोगों

के मंदिरों की दीवारों पर भड़कीले रंगों से रँगे हुए जो विचित्र और भयावनी मूर्तियों के चित्र अंकित देखे थे, अपने 'पिता' की क्रोध, घृणा और विकृत व्यंग की सर्पाकार रेखाओं से बिगड़ी हुई शक्ल उसे उन्हीं दानवी मूर्तियों से मेल खाती हुई मालूम होने लगी। इसके पहले भी वह कई बार कालिम्पांग आकर अपने 'पिता' के साथ रह चुका था, पर कभी एक दिन के लिये भी उस 'तिब्बती दानव' ने (जैसा कि मन-ही-मन वह बाद में अपने उस नामधारी 'पिता' को संबोधित करने लगा था) स्नेह का आभास भी उसके प्रति प्रकट नहीं किया, और कभी सीधे मुँह बात नहीं की। उस शख्स का अनोखा, गंदा, अर्द्धभोटिया वेष, सैकड़ों झुर्रियों से युक्त पालिश-रहित 'जूते' के चमड़े का-सा चेहरा और उस चेहरे पर पुता हुआ एकांत आत्मप्रेम, निपट घृणा और चरम हिंसा के भावों से मिश्रित अमिट रंग—ये सब बातें मिलकर उसे एक विचित्र, वीभत्स, रहस्यमय और भयानक रूप प्रदान करती थीं। वह जानता था कि उसके 'पिता' की आयु का अड़तालीसवाँ साल भी अभी पूरा नहीं हुआ है, किंतु उसी आयु में उनके चेहरे पर बुढ़ापे का पूरा प्रकोप छा गया था। वह काफ़ी शिक्षित थे और युनि-वर्सिटी की शिक्षा पाए हुए थे। पर कुछ वर्षों से एक विचित्र परिवर्तन उनके जीवन में आ गया था। पारसनाथ से वह परोक्ष में बातें करते थे—किसी तीसरे व्यक्ति के माध्यम से—और 'छोकरा' के सिवा और कोई शब्द कभी उसके लिये व्यवहार में नहीं लाते थे। प्रत्यक्ष रूप से केवल एक बार उन्होंने पारसनाथ से बातें की थीं—और वही अंतिम बार भी था—जब उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह जता दिया कि पारसनाथ उनका बेटा नहीं है। इस चरम घटना के पहले पारसनाथ अपने 'पिता' की उपस्थिति में आतंकित रहने पर भी अपनी स्थिति को जब
असाधारण और अस्वाभाविक नहीं समझता था। उसके पिता की लों ने
की फैक्टरी में काम करने वाले भोटिया स्त्री-पुरुष और घर के क-चौथाई

चाकर भी उसके साथ बड़े स्नेह और सम्मान से पेश आते थे। उन लोगों के बीच में रहकर उनसे भूटानी दुनिया की अद्भुत और रहस्य-मयी कहानियाँ सुनकर, बौद्ध 'गुम्फाओं' (मंदिरों) के लामा-पुरोहितों से लामा-पुराण की रोमांचकारी गाथाएँ सुनकर और उन मंदिरों की दीवारों पर अंकित भौतिक मूर्ति-चित्रों की कला पर अपनी बाल-बुद्धि के अनुसार बड़ी बारीकी से विचार करने की चेष्टा में तन्मय रहकर कालिम्पांग में उसके दिन बेमालूम कट जाते थे।

अंतिम बार जब वह कालिम्पांग गया था, तब वह अज्ञान बालक नहीं रह गया था। तब वह कलकत्ता विश्वविद्यालय में एम॰ ए॰ की परीक्षा देकर छुट्टियों में वहाँ गया था। परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास होने की सूचना भी उसे वहीं मिल गई थी। इसके बाद जब एक दिन उसने संकोच त्याग कर अपने जीवन के कार्यक्रम के संबंध में अपने 'पिता' से कोई निश्चित बात तय करने का साहस किया, और यह सूचित करते हुए कि वह यूरोप जाकर चित्रकला सीखना चाहता है व्यय की बात चलाई, तो उसी सिलसिले में उसके 'पिता' ने उसके जन्म का इतिहास सुना दिया और इस बहाने अपने भीतर बहुत दिनों से दबा हुआ सड़ा, गंदा और बदबूदार मवाद बाहर निकाल कर उसके छींटों से पारसनाथ को तर कर दिया। प्राथमिक स्तब्ध अवस्था के बाद पारसनाथ के भीतर जैसे जन्म-जन्मान्तर से संचित क्रोध और हिंसा की उन्मत्त तरंगें पागल गति से उमड़ती हुई, शेषनाग के सहस्र फनों की तरह फुफकार मचाती हुई, उसकी नाक के दो छिद्रों से होकर विषैली-साँसें छोड़ने लगीं। उस रात वह प्रायः एक बजे तक पलंग पर बंधनग्रस्त पागल भेड़िये की तरह छटपटाता हुआ करवटें बदलता रहा। रह-रहकर कालकूट से भी ज्यादा तीव्र और उग्र विषयुक्त हाइड्रोजन से उसकी छाती बैलून की भाँति आसन्न फटती थी—चरम विस्फोट के लिये। प्रायः एक बजे के समय

वह उठा। उसे मालूम था कि मकान के एक कमरे में 'तिब्बती दानव' ने तरह-तरह के भोटिया, नेपाली और तिब्बती हथियार दीवारों पर सजाकर लटका रखे हैं। वह कमरा मकान के बीच में था और हमेशा खुला रहता था। वह चुपके से उठकर उसी कमरे में गया। नौकर-चाकर सब गहरी नींद में मग्न थे। एक दियासलाई जलाकर उसने एक विशेष स्थान पर टँगी हुई एक नेपाली 'खुकरी' उतारी। इसके बाद म्यान-सहित उसे पकड़कर चुपके-चुपके, निःशब्द किंतु धीर और स्थिर पगों से 'तिब्बती दानव' के कमरे की ओर बढ़ा। कमरा खुला हुआ था, पर एक छोटा-सा बल्ब जल रहा था, जिसका प्रकाश उसकी चारों ओर जमी हुई काई के कारण बहुत मंदा पड़ गया था। वह जानता था कि 'दानव' बड़ा शक्की-मिजाज़ और कायर है, और उसके कमरे में रात-भर बत्ती जलती रहती है। 'दानव' सोया हुआ था और विकट शब्द से खर्राटे ले रहा था। पाँच 'कैण्डल-पावर के धुँधले बल्ब के मंद प्रकाश में उसके चीमड़ मुख की वीभत्स आकृति और भी अधिक भयावनी मालूम हो रही थी। गहरी नींद में मग्न होने पर भी उसकी आँखें एक-चौथाई खुली हुई थीं, जो उसके विकट रूप को सौगुना विकटतर बना रही थीं। और उस हालत में भी उसके मुख का घृणा और परोपेक्षा का भाव स्पष्ट परिस्फुट हो रहा था। उस भाव ने पारसनाथ के हृदय की धुँआती और ठण्डी पड़ती हुई आग को फिर एक बार दहका दिया, और उसने म्यान से खुकरी को बाहर निकालने के लिये उसकी मूठ को पकड़ा। ऐसा करते हुए वह एकटक एक विचित्र उन्मादक दृष्टि से अपने नामधारी पिता की ओर देख रहा था, और निद्रा-विचरण की-सी दुःस्वप्नावस्था में न मालूम क्या सोच रहा था और न जाने किस बात पर ग़ौर कर रहा था। खुकरी को जब वह आधा बाहर निकाल चुका, तो अकस्मात् उसकी तन्मय आँखों ने उस गिद्ध की तरह पड़े हुए वृद्ध की भौंहों के ऊपर और एक-चौथाई

खुली हुई आँखों के नीचे पड़ी हुई झुर्रियों में एक निराले और दिल दहलाने वाले करुण भाव की सूक्ष्म झलक देखी, जिसके अस्तित्व से वह इतने दिनों तक एकदम अपरिचित रहा। उस घृणा-मिश्रित करुण छाया का आभास पाकर वह, न जाने क्यों, आतंक से काँप उठा। जिस नंगी, झलझलाती हुई खुकरी को वह म्यान से आधा बाहर निकाल चुका था वह अपने-आप, बिना उसकी इच्छित चेष्टा के, धीरे से फिर म्यान के भीतर प्रवेश करने लगी—ठीक जिस प्रकार मदारी का साँप उसके हाथ से होकर अधखुली टोकरी के भीतर अपने-आप धीरे-धीरे प्रवेश करता चला जाता है। वह अब भी उस अर्द्ध-वृद्ध गिद्ध की ओर एकटक देख रहा था और उसकी आँखें पलक नहीं मार रही थीं। अपनी तत्कालीन निद्रा-विचरण की-सी अवस्था में उसने किस प्रकार का करुण भाव उस घृणित मुख पर देखा, बाद में ठण्डे दिल से उस पर विचार करके वह उसका विश्लेषण करने की चेष्टा करने पर भी असफल रहा और क्यों उस भाव को देखकर वह आतंक से सिहर उठा, और आधी निकाली हुई खुकरी क्यों अपने-आप भीतर चली गई, इसका भी कारण वह कुछ सोच नहीं पाया। पर इतना निश्चित था कि उसे हत्या से रोकने का कारण चाहे और जो-कुछ भी रहा हो, बुड्ढे के चेहरे के उस अव्यक्त कारुण भाव से पिघलकर—दया के वश में होकर—वह उसका खून करने से विरत नहीं हुआ था। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'तिब्बती दानव' के मुख पर उस अपरिस्फुट दयनीय भाव ने पारसनाथ के मन में करुणा जगाने के बजाय उसे भयभीत किया था। और यदि सच पूछा जाय तो वह करुण भाव सैकड़ों झुर्रियों से घिरे हुए उस हिंसात्मक मुखड़े पर 'फिट' नहीं बैठता था, बल्कि उसके घृणा और विद्वेष के मिश्रित रंगों को और अधिक काला, और अधिक गाढ़ा बनाने में सहायक हो रहा था। पारसनाथ के भयभीत होने का एक कारण यह भी था।

'बुड्ढे' का खर्राटे लेना अभी तक बंद नहीं हुआ था। पारसनाथ और एक मिनट तक उसी अवझुकी हुई अवस्था में खड़ा रहा, और उसी तन्मय दृष्टि से शायद 'बुड्ढे' की अजगर सी आँखों के एक-चौथाई खुले भाग के भीतर अपने मर्म की दृष्टि गड़ाने की असंभव चेष्टा करता रहा। सहसा उन आँखों के भीतर न मालूम क्या भाव देखकर वह चौंका और एक भौतिक भय से भीत होकर उसने मुँह फेर लिया। इसके बाद पहले की ही तरह निःशब्द पगों से वापस चला गया। खुकरी को यथास्थान रखकर वह अपने कमरे में वापस जाकर चुपचाप पलंग पर लेट गया।

लेटे-लेटे वह सोचने लगा—" 'बुड्ढे' ने जो लोमहर्षक बात मुझे सुनाई, उसमें सत्य का अंश कितना है? क्या यह संभव नहीं है कि माँ से किसी कारण से असंतुष्ट होकर उसके मन ने अनजान में उसके विरुद्ध एक काल्पनिक लांछन गढ़ लिया और अपनी उस काल्पनिकता को सत्य मानकर वह बरसों से अपने-आपको धोखा देता चला आ रहा है! निश्चय ही यही बात है। माँ का जो रूप इस नराधम ने मेरे आगे रखा है वह कभी सत्य नहीं हो सकता! पर—पर—तब क्या मैं इसी व्यक्ति का बेटा हूँ? क्या यह घृणित दानव किसी भी हालत में मेरा बाप हो सकता है!" और यह सोचकर कि कहीं वह सचमुच इसी बाप का बेटा न हो उसके सारे शरीर पर घृणा और ग्लानि के कारण काँटे खड़े हो गए! उसके भीतर से विद्रोह की आवाज़ उठने लगी और वह मन-ही-मन कहने लगा—"नहीं, मैं इस वीभत्स गिद्ध का बेटा कभी नहीं हो सकता—किसी भी हालत में नहीं; न रूप में, न रंग में, न किसी मनोभाव में ही उससे मेरा कोई साम्य है! पर यदि मैं उसका बेटा नहीं हूँ तो इसका अर्थ स्पष्ट ही यह है कि मेरी माँ वास्तव में व्यभिचारिणी है और मैं उसकी जारज संतान हूँ!" इस अंतिम कल्पना ने उस अधपके फोड़े को अत्यंत निर्ममता के साथ

नाखून से खरोंच दिया। वह भीतर ही भीतर कराह उठा, और करवट बदलकर, लेटे ही लेटे उसने दोनों हाथों से अपना सिर ढक लिया।

सातवाँ परिच्छेद

इसके बाद अपनी माँ की चिर-पिरिचित सुन्दर, स्नेहपूर्ण, चिर-प्रसन्न छवि उसकी बंद आँखों के सामने घूमने लगी। और साथ ही उस वैद्य की भी आकृति सजीव रूप में उसके आगे खड़ी हो गई, जिसके साथ 'तिब्बती दानव' ने उसको माँ का संबंध बताया था। वह देखने में सुन्दर नहीं था, पर उसका स्वभाव बहुत शिष्ट और व्यवहार बहुत मधुर था। वह अक्सर उन लोगों के यहाँ आता-जाता रहता था। छुटपन में पारसनाथ उस वैद्य को बहुत चाहने लगा था, और उसके आने पर खेल-कूद अथवा पढ़ना-लिखना छोड़कर उसके पास चला आता और ध्यानपूर्वक उसकी मीठी-मीठी बातें सुनता रहता। माँ के साथ उस वैद्य की बोलचाल उसे कभी किसी अज्ञात कारण से भी नहीं खली। यह कल्पना कभी भूल से भी उसके मन में नहीं उठी कि वह मधुरभाषी और शिष्ट स्वभाव वैद्य उसकी माँ का प्रेमी हो सकता है, और—और—उसके बेटे का बाप भी! और आज अकस्मात् वज्र के आलोक से भयंकर 'सत्य' उसके आगे प्रकट हुआ, जिसने एक पल में उसे संसार से और समाज से एकदम छिन्न कर दिया, जीवन की महत्त्वाकांक्षा का तार तोड़ दिया और यौवन की रंगीनी का जाल नष्ट कर दिया। अल्फलैला के किसी जिन्न ने सहसा आकर बीस वर्ष से परिचित दुनिया का रूप एक क्षण में इस प्रकार मूलतः बदल दिया कि वह कुछ समझ ही नहीं पाता था। उस बदली हुई दुनिया में मानवी सृष्टि का कोई चिह्न ही उसे कहीं

नज़र नहीं आता था, सर्वत्र किसी पैशाची सृष्टि के विचित्र, वीभत्स और भयावनी आकृति-प्रकृति के जीव-जन्तु उसे दिखाई दे रहे थे। उसके मन में एक दुर्निवार तरंग उठी कि बन्दूक से गोली खाकर आत्महत्या कर ले। पर न जाने उसके मन के किस अतल में सोया पड़ा दानव आज के भयंकर मन्थन और आंदोलन के फलस्वरूप अँगड़ाइयाँ लेता हुआ उठ बैठा था और समस्त मानव-समाज के प्रति एक विकृत प्रतिहिंसा के भाव से उसकी आत्मा को ओतप्रोत करता हुआ उसके अनजान में उसे आत्महत्या से विरत कर रहा था।

दूसरे ही दिन वह अपने 'पिता' के किसी कारिंदे से पचास रुपया उधार लेकर बिना किसी से कुछ कहे-सुने दार्जिलिंग चला गया। दार्जिलिंग में उसे एक स्कूल में नौकरी मिल गई थी, यह पहले ही कहा जा चुका है। दार्जिलिंग में काञ्छी से घनिष्ठता होने पर अपने बीस वर्ष के आदर्शोन्मुख जीवन के पुराने अभ्यास से उसने उसके साथ सहज प्रेममय व्यवहार प्रदर्शित किया था, पर नवोत्थित दानव उस विश्वास-परायण, सरल-हृदय, अनुभवहीन, एकाकिनी लड़की के प्रति प्रतिहिंसा के अस्त्र का पहला प्रयोग करने के लिये कुतूहली हो उठा। फल-स्वरूप ऐन मौके पर उसे धोखा देकर वह भाग कर कलकत्ते चला गया, जैसा कि पहले कहा जा चुका है। कलकत्ते में वह प्रायः तीन वर्ष तक अव्यवस्थित जीवन बिताता रहा। बीच-बीच में, कुछ महीनों तक किसी स्कूल में नौकरी करके, कुछ महीनों तक प्राइवेट ट्यूशन द्वारा, और कुछ महीनों तक एक दूकान में सेल्समैन की हैसियत से वह अपना खर्चा चलाता रहा। साथ ही साथ चित्रकला का जो थोड़ा-बहुत अभ्यास उसने किया था उसे एक निश्चित रूप देने की आकांक्षा से उसने किसी एक विद्यालय में उक्त कला की विशेष शिक्षा भी प्राप्त की। इसके बाद इधर-उधर भटकता हुआ एक दिन वह युक्तप्रान्त के उस शहर में पहुँच गया जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। कालिज

की घटना के बाद से उसने निश्चय कर लिया था कि इस जीवन में अब न कभी घर जावेगा और न कोई पत्र अपनी माँ को लिखेगा। 'तिब्बती दानव' को तो वह पहले भी कभी कोई पत्र नहीं लिखता था।

जब वह युक्तप्रांत के पूर्वोक्त शहर में आया तो प्रारंभ में कुछ दिनों तक रोज़ी का कोई भी सिलसिला न लगा सकने के कारण उसे बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। पर बाद में कुछ पुस्तक-प्रकाशकों से उसका परिचय हो गया और वह दो दो, चार चार रुपयों पर उनकी पुस्तकों के 'डिज़ाइन' तैयार करके किसी तरह, लशटम-पशटम अपनी गुज़र करने लगा। धीरे धीरे जब उसकी परिचित मंडली की परिधि और विस्तृत हो गई, और कुछ व्यक्तियों को उसकी कला विशेष रूप से पसंद आने लगी, तो उसे चित्रकला के शिक्षक के बतौर दो तीन व्यक्तियों ने नियुक्त कर लिया। बाद में दो स्थानों से उसे अलग हो जाना पड़ा—शिक्षार्थियों की उदासीनता के कारण। अब केवल एक जगह वह चित्रकला सिखाने जाता था—पंडित छगनलाल भुजौरिया के यहाँ। भुजौरियाजी से पारसनाथ का परिचय कैसे हुआ और उनकी 'धर्मपत्नी' नन्दिनी को अकस्मात् चित्रकला सीखने का शौक़ कैसे चर्राया, इसका भी एक छोटा-सा इतिहास है। भुजौरिया जी अपने 'मित्रों' पर यह जमाने के आदी थे कि वह केवल सब प्रकार की ललित कलाओं के शौक़ीन ही नहीं बल्कि विशेषज्ञ भी हैं। दो-चार मरभुखे चित्रकारों द्वारा अंकित मूल चित्र बहुत ही सस्ते दामों में प्राप्त करके अपने बैठक के कमरे को उन्होंने सुशोभित कर रखा था, और जो कोई भी मित्र उनसे मिलने आता उसका ध्यान वह प्रत्येक चित्र की 'स्वाभाविक और कलापूर्ण सुन्दरता' की ओर आकर्षित करते हुए बड़े गर्व का अनुभव करते। जब उन्हें मालूम हुआ कि पारसनाथ एक ग़रीब चित्रकार है और चित्र भी ख़ासे अच्छे तैयार

कर लेता है, तो उन्होंने उससे दोस्ती गाँठनी शुरू की। पारसनाथ का शिष्ट, शांत और संकोची स्वभाव उन्हें बहुत पसन्द आया। पहले ही दिन अपने यहाँ उसे ले जाकर उन्होंने अपनी धर्मपत्नी से उसका परिचय कराया और उसे खाना खिलाकर बड़ी आव-भगत की। जब कभी वह अपनी श्रीमती का परिचय किसी व्यक्ति से कराते तो कहते—"यह मेरी धर्मपत्नी नन्दिनी है।" 'धर्मपत्नी' शब्द को अपने मित्रों के बीच में उन्होंने इस क़दर 'पेटेन्ट' करवा लिया था कि जब उनके किसी मित्र को उनकी श्रीमती का हाल जानना होता तो वह पूछता—"कहिये भुजौरियाजी, आपकी धर्मपत्नी की तबीअत कैसी है!" भरसक गंभीरता के साथ मित्र महाशय यह प्रश्न करते, पर रोकने की पूरी चेष्टा करने पर भी व्यंग की मुस्कान उनके ओठों के इर्द-गिर्द झलक उठती। किन्तु भुजौरियाजी कभी उस बात को व्यंग के रूप में ग्रहण न करते और परिपूर्ण गंभीरता के साथ अपने गहरे नीले रंग के चश्मे के भीतर से कहते—"उनकी तबीअत का हाल क्या बताऊँ साहब, एक-न-एक बीमारी उन्हें लगी ही रहती है। 'एनीमिया' की पुरानी शिकायत तो थी ही, अब इधर कुछ दिनों से 'लिवर' बढ़ जाने से वह परेशान रहती है। सोलह-सोलह रुपये के तीन-तीन डाक्टर रोज़ सुबह-शाम देखने आया करते हैं। क़ीमती दवाएँ उसे इस क़दर खिलाई जा चुकी हैं कि कुछ ठिकाना नहीं। ख़र्चे की मुझे परवा नहीं है, पर कुछ फ़ायदा तो हो!" यह कहते हुए वह मुख की मुद्रा ऐसी बनाते जिससे इस बात पर अविश्वास करने का कोई कारण न रह जाता कि वह अपनी 'धर्मपत्नी' से बेहद प्रेम रखते हैं।

पारसनाथ से एक दिन उन्होंने कहा—"मैं तो अपने को कलाकारों का बेदाम का ग़ुलाम समझता हूँ और उनकी बड़ी इज़्ज़त करता हूँ। मैं जानता हूँ कि हमारे यहाँ के चित्रकार आर्थिक चिंता से किस क़दर पीड़ित रहते हैं, इसलिये मैं भरसक अपने वित्तानुसार उन्हें 'पेट्रोनाइज़'

करने की चेष्टा करता रहता हूँ। आप मुझे सुन्दर-सुन्दर चित्र देते रहिए, मैं भरसक आपकी सेवा करता रहूँगा। मैं बखूबी जानता हूँ कि कलाकार की कृति अमूल्य होती है, उसका मूल्य रुपयों से नहीं चुकाया जा सकता। इसलिये मैं आपकी चीज़ों का बाज़ारू मूल्य पूरा चुकाने पर भी यह समझूँगा कि आपने मुझ पर असीम कृपा की है, और आप देखेंगे कि कृतज्ञता प्रकाशन में मैं यथाशक्ति कोई त्रुटि नहीं करूँगा। मैंने सुना है कि आप तिब्बती चित्रकला के विशेषज्ञ हैं, इसलिये आप पहले मुझे उसी नमूने का एक चित्र तैयार करके दीजिए। उसके बाद जो पहाड़ी दृश्य आपको सब से सुंदर लगा हो उसका एक चित्र तैयार करके दीजिए। और—और—एक और चित्र आपको मेरे लिये तैयार करना होगा। मेरी धर्मपत्नी को 'माडल' बनाकर एक सुंदर नारी-मूर्ति की रचना आपको करनी होगी। ये तीन चित्र फ़िलहाल आप तैयार करके मुझे दें। आप देखेंगे, मैं एक महीने में आपका वह 'प्रोपेगेंडा' करूँगा जो वर्षों में भी दूसरे लोग नहीं कर पाते।"

भुजौरियाजी की सदाशयता पर पारसनाथ वास्तव में मुग्ध हो गया। परदेश में अपने संकोची और अभिमानी स्वभाव के कारण वह विकट आर्थिक परिस्थिति में पड़ा हुआ था, इसलिये एक निश्चित आश्रय पाने की आशा से वह मन-ही-मन भुजौरियाजी को हार्दिक धन्यवाद देने लगा। जब पहले-पहल उसने भुजौरियाजी को देखा था तब उनके मुख की आकृति और हावभाव देखकर सहम गया था। उसे ऐसा मालूम होने लगा था कि 'तिब्बती दानव' की प्रतिमूर्ति उसके सामने आकर खड़ी हो गई है। भुजौरियाजी की आँखें गहरे काले रंग के 'क्रुक्स लेंस'-युक्त चश्मे से ढकी होने के कारण उनका यथार्थ भाव जानना कठिन था—वही एक बचत थी, जिससे वह कुछ आश्वस्त हुआ था, वर्ना वह बहुत घबरा उठा था। पर जब उसने उनका प्रेमपूर्ण व्यवहार देखा तो वह गद्‌गद् हो गया; और विशेषकर

जब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी से बेतकल्लुफ़ी का संबंध स्थापित करने का मौक़ा उसे दिया, तो वह और भी अधिक कृतज्ञ हो उठा। उसने जल्दी-जल्दी दो चित्र भुजोरियाजी की इच्छा और सुझाव के अनुसार तैयार करके उन्हें दे दिए। भीतर ही भीतर उन चित्रों से बहुत प्रसन्न होने पर भी बाहर से 'पेट्रोनाइज़िंग' स्वर में उन्होंने कहा—"चित्र काफ़ी अच्छे हैं। कुछ सुधार की आवश्यकता अवश्य है, पर थोड़ा परिश्रम और करने से आप इस कला में विशिष्टता प्राप्त कर लेंगे—मेरा यह विश्वास है। अब आप मेरी धर्मपत्नी को 'माडल' बनाकर एक ऐसी नारी-मूर्ति तैयार कीजिये जो बरबस दर्शकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर ले। इस बात का ध्यान रखिएगा कि बैक-ग्राउण्ड कवित्वपूर्ण रहे और रंग भड़कीले हों, पर हों सुरुचिपूर्ण।" पारसनाथ के मन में यह संदेह बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के घर कर गया था कि नंदिनी 'माडल' बनने से इनकार कर देगी, पर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब वह केवल राज़ी ही नहीं हुई, बल्कि बहुत प्रसन्न हुई। चित्र जब समाप्त हो गया तो उसे देखकर वह और अधिक प्रसन्न हो उठी। उसके बाद उसने स्वयं चित्रकला सीखने का प्रस्ताव किया।

आठवाँ परिच्छेद

दो दिन बाद शाम को पारसनाथ उसी होटल में अकेले गया। उस लड़की के संबंध में अपने कौतूहल को वह किसी प्रकार भी दबा नहीं पाता था। होटल के उस विशेष नौकर को उसने बुलाया जो पिछले दिन उस लड़की को उन लोगों के पास पहुँचा गया था। वह एक जवान छोकरा था। उसकी आँखें यद्यपि शरारत से भरी थीं, तथापि उनमें एक स्निग्ध कोमल भाव भी वर्तमान था। पारसनाथ

ने उससे धीरे से पूछा—"कल तुम जिस लड़की को लाए थे उसे आज भी ला सकते हो ?"

"जी हाँ।"

"वह क्या इसी होटल में रहती है ?"

"जी नहीं।"

"तब ? क्या किसी चकले में रहती है ?"

"जी नहीं !"

"तब ?"

"वह अपने घर रहती है—वह एक भले घर की लड़की है, बाबूजी ! कालेज में पढ़ती है।"

पारसनाथ के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। भ्रांत दृष्टि से नौकर की ओर देखता हुआ बोला—"भले घर की लड़की है, कालेज में पढ़ती है, और तिस पर भी रोज़गार करने के लिये होटल में आती है !"

"वे लोग अब बहुत ग़रीब पड़ गए हैं, बाबूजी !"—मंद, करुण और साथ ही दुष्टतापूर्ण मुसकान से नौकर ने कहा।

पर पारसनाथ की भ्रांति का निवारण क़तई नहीं हुआ, बल्कि उसका कौतूहल उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला गया। कुछ देर तक चुप रहकर उसने कहा—"कुछ भी हो, तुम जाकर उसे बुला लाओ। हाँ, इसके पहले एक काम करो। मैं इस बड़े कमरे में नहीं बैठना चाहता—इसके अलावा यह कमरा एकदम रास्ते पर है। एक छोटा-सा एकांत कमरा मुझे चाहिये......हाँ, एक बात और है। पहले मुझे एक बोतल 'बियर' दे जाओ। मैं पहले 'बियर' पी लूँ, तब उसे मेरे पास लाना, समझे ?"

"जी हाँ।"

"तब जाओ......पर पहले मुझे कमरा दिखा दो।"

'ब्वाय' उसे तीसरी मंज़िल पर एक छोटे से कमरे में, जो वास्तव में एकांत स्थान पर था, ले गया। वहाँ पंखा वगैरह ठीक करके तब बियर लाने गया।

थोड़ी देर में एक बोतल बियर, एक सादा गिलास और एक प्लेट में बरफ़ और बोतल खोलने की चाभी लेकर वह वापस आया। तीनों चीज़ों को मेज़ पर रखकर उसने कहा—"मैं बाहर खड़ा हूँ, जब आप हुक्म देंगे मैं उस लड़की को बुला लाऊँगा।" यह कहकर वह चला गया।

पारसनाथ ने बोतल खोलकर गिलास में बियर ढाली और उसके बाद चम्मच से उसमें बरफ़ डालकर वह प्रायः आधा गिलास एक साँस में पानी की तरह पी गया। इसके बाद एक सिगरेट जलाकर पीने लगा, और पीते हुए सोचने लगा—"मैंने बड़ी चतुराई की जो व्हिस्की न मँगाकर बियर मँगाई। वह लड़की निश्चय ही शराबियों से घृणा करती होगी। उस रोज़ उसकी घबराहट का एक कारण निश्चय ही यह भी रहा होगा कि उसकी अगल-बगल के दोनों व्यक्ति बहुत अधिक व्हिस्की पिये हुए थे। एक तो व्हिस्की की गंध से उसका माथा भिन्ना रहा होगा, तिस पर शराबियों से सावधान रहने की शिक्षा ऐसी लड़कियों को पहले से ही दे दी जाती है। पर बियर की गंध एक तो उग्र नहीं होगी, तिस पर उसके पीने वाले का दिमाग़ दुरुस्त रहता है। मैं ठण्ढे दिमाग़ से उस लड़की से बातें करना चाहता हूँ।"

उसने गिलास को मुँह से लगाया और जो बियर उसमें बची हुई थी उसे भी एक साँस में पी गया। इसके बाद दूसरी बार गिलास भर-कर उसने बोतल को खाली कर दिया। इस बार भी उसने दो घूँटों में

गिलास खाली कर दिया, और तब छोकरे को पुकारा। छोकरा आया। पारसनाथ ने कहा—"जाओ, अब उसे बुला लाओ।" छोकरा चला गया। पारसनाथ ने खाली बोतल और खाली गिलास को 'टेबिल' के नीचे छिपाकर रख दिया।

लड़की के स्वागत के लिये पारसनाथ अपने मन को तैयार करने लगा। बियर पीने से एक हल्के-से गुलाबी नशे ने उसके मन को और मस्तिष्क को छा दिया था। उसका चित्त इस समय बहुत प्रसन्न और स्वस्थ था। वह जानता था कि यदि वह अपनी मित्रमंडली के साथ होता, तो उसके मन की स्थिति हर्गिज़ ऐसी प्रफुल्ल न होती। अपनी इस उलटी प्रकृति पर उसे स्वयं आश्चर्य होता था कि साथियों के बीच में पीने की अपेक्षा अकेले में पीने से वह अधिक प्रसन्न रहता है। उसने सोचा कि उस अत्यधिक संकोचशीला और रहस्यमयी लड़की से बातें करने का इससे अच्छा मौका दूसरा हो नहीं सकता। फिर भी एक अज्ञात आशंका से उसका हृदय रह-रहकर मृदु-मंद धड़क रहा था। यह क्यों?—वह मन-ही-मन सोचने लगा—किसी युवती स्त्री से, और ख़ासकर ऐसी स्त्री से जो होटल में रोज़गार के इरादे से आती हो, ऐसे स्वच्छन्द और साथ ही एकांत स्थान में बातें करने में घबराहट की कौन-सी बात है? आज तक इस तरह की कितनी ही स्त्रियों से वह 'प्रेमालाप' कर चुका था, पर कभी इस प्रकार की हौलदिली और आत्मविश्वास-हीनता का अनुभव उसने नहीं किया। और आज एक साधारण-सी लड़की का इन्तज़ार करते हुए उसका चित्त डाँवाडोल होने लगा—यह वास्तव में उसके लिये आश्चर्य की ही बात थी।

बाहर किसी के पाँवों की आहट सुनाई दी। ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई व्यक्ति चप्पलों से होनेवाली आवाज़ को दबाने की चेष्टा कर रहा

पूछा जाय तो उन सबकी तुलना में उसकी शारीरिक सुन्दरता अत्यंत फीकी लगती थी। उसका आवश्यकता से बहुत अधिक लंबा मुख, नुकीली ठुड्डी और गालों और ठुड्डी के बीच पड़े हुए गड्ढे—इन सब विशेषताओं का यदि विश्लेषण किया जाय, तो वह निश्चित रूप से शारीरिक सौन्दर्य के पारखियों के आगे कुरूप सिद्ध होती। पर उसके समस्त व्यक्तित्व से एक अनोखी रहस्यपूर्ण तीक्ष्णता, एक निराली पुनीत अस्पर्शिता की अदृश्य और सूक्ष्म—बल्कि आध्यात्मिक—तरंगें उठकर संचित पाप-वासना की विषैली साँसों से गंदे उस होटल के कमरे के एकांत वातावरण को बड़ी तीव्रता से आंदोलित कर रही थीं।

कुछ क्षण तक कमरे में स्तब्ध सन्नाटा छाया रहा। इसके बाद पारसनाथ ने अत्यन्त विनम्र भाव से, मधुर वाणी में पूछा—"देवीजी क्षमा कीजिएगा, मुझे आपका नाम मालूम नहीं हुआ!"

कौतूहल-भरी आधी दृष्टि से एक बार पारसनाथ की ओर देखकर लड़की ने फिर आँखें नीची कर लीं, और दाहिने हाथ की तर्जनी से मेज़ पर कुछ अर्थहीन सांकेतिक चिह्न अंकित करती हुई बहुत ही धीमी आवाज़ में वह बोली—"मुझे मंजरी कहते हैं।"

उसकी उस धीमी आवाज़ में एक ऐसा अप्रत्याशित जादू था जिसने पारसनाथ की नज़र में उसके व्यक्तित्व को कई स्तर ऊँचे चढ़ा दिया। वह अत्यंत पुलकित हो उठा और श्रद्धा और सम्मान से भरी मुसकान का हलका-सा आभास अपनी तनिक सजल-सी आँखों में झलकाता हुआ बोला—"ओह! मंजरी देवी! बड़ा ही सुन्दर, कवित्वपूर्ण नाम है! पर मंजरी देवी, एक बात है। आपके मुख के भाव से कुछ ऐसा आभास मिलता है जैसे आप मुझे एक अत्यंत हीन और पतित व्यक्ति समझती हों। इसमें संदेह नहीं कि मैं वास्तव में एक गिरा हुआ प्राणी हूँ—जैसा कि मेरी प्रत्येक बात से, प्रत्येक व्यवहार से आपके आगे स्पष्ट हो रहा होगा। फिर भी मैं नम्र निवेदन के साथ आपसे यह प्रश्न करने

का दुस्साहस करना चाहता हूँ कि क्या मैं सचमुच इतनी अधि घृणा के योग्य हूँ जितना मेरे प्रति आपके रुख से प्रकट हो रहा है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, मंजरी देवी, कि मैं हीन होने पर भी बहुत दुःखी हूँ—परिवार से अभिशप्त, समाज से बहिष्कृत और संसार से तिरस्कृत। यक़ीन मानिए, मैं बन नहीं रहा हूँ; मैं सच्चे हृदय से यह यथार्थ बात आज पहली बार आपके आगे प्रकट कर रहा हूँ, जिसे इतने दिनों तक सबसे छिपाता रहा। मुझे घृणा और संदेह की दृष्टि से नहीं, बल्कि करुणा की दृष्टि से देखिए मंजरी देवी!" यह कहते हुए वास्तव में उसकी आँखें छलछला आईं और एक मार्मिक व्याकुलता प्रकाश-रेखाओं के रूप में उनसे विकीरित होती हुई मालूम हुई। लड़की इस समय पूर्ण दृष्टि से—आँखें फाड़-फाड़कर—स्तब्ध भाव से उसकी ओर एकटक देख रही थी। संकोच, संदेह और घबराहट का कोई चिह्न भी इस समय उसके मुख पर शेष नहीं रह गया था। उसकी आँखों में केवल जिज्ञासा का भाव वर्तमान था। पर वह कुछ बोली नहीं, उसी पूर्ण जिज्ञासु भाव से पारसनाथ की ओर देखती रही।

पारसनाथ को अपनी भावुकता पर स्वयं आश्चर्य हो रहा था। नशे का अनुभव वह इसके पहले कई बार कर चुका था, पर नशा चाहे कैसा ही गहरा क्यों न हुआ हो, इस प्रकार की भावप्रवणता उसमें इसके पहले कभी किसी भी हालत में नहीं आई थी। जीवन के प्रति बराबर एक व्यंग्यपूर्ण हिंसात्मक दृष्टिकोण उसका रहा था, और हर प्रकार की भावुकता को वह ओछे, छिछले और हीन प्रकृति के व्यक्तियों की विशेषता समझता था। तिस पर किसी स्त्री के आगे आवेश में आना तो उसकी दृष्टि में हीनता की चरम सीमा थी। इसलिये आज का अनुभव उसके लिये एकदम नया था।

मंजरी का विभ्रान्त और जिज्ञासु भाव देखकर उसका साहस

बढ़ गया। उसी भाव-विह्वल गद्गद स्वर में उसने कहा—"यदि आप अनुचित न समझें तो इस बग़लवाली कुर्सी पर आकर तशरीफ़ रखें, मंजरी देवी ! मुझसे किसी प्रकार के अनुचित व्यवहार की आशंका आप न करें। मेरी इस बात पर विश्वास करें कि आपके प्रति मेरे मन में एक सम्मान का भाव उत्पन्न हो गया है।"

घनी, काली बरौनियों से युक्त अपनी बड़ी-बड़ी, तनी हुई आँखों की पूर्ण दृष्टि में विस्मय-उत्सुक भाव प्रकट करती हुई मंजरी कुछ देर तक उसकी ओर देखती रही; इसके बाद धीरे से उठकर पारसनाथ की बग़लवाली कुर्सी पर आहिस्ते से बैठ गई।

"आपकी इस कृपा के लिये मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।" यह कहते हुए पारसनाथ के मुख पर पुलक और करुणा-भरी मुसकान की अस्पष्ट छाया घिर आई।

मंजरी अनमने भाव से मेज़ पर रखी हुई एक बुझी हुई सिगरेट के टुकड़े को उठाकर दोनों हाथों से उसके बाहर का काग़ज़ चीरकर उसके भीतर भरी हुई तमाखू की पत्तियों को बाहर निकालने लगी। सहसा पारसनाथ बोल उठा—"ओह ! आप क्या—आप क्या सिगरेट पीती हैं ! माफ़ कीजिएगा......."

तमाखू की पत्तियों को मेज़ पर बिखेरते हुए पारसनाथ की ओर न देखकर मंजरी ने तनिक नाज़ से अपनी गर्दन को किंचित् लचकाकर कहा—"जी नहीं।" 'जी' शब्द पर उसने कुछ ज़ोर दिया। उसकी गर्दन लचकाने की मुद्रा और 'जी' शब्द पर ज़ोर देने का ढंग—इन दो बातों ने पारसनाथ के मन पर यह धारणा जमा दी कि मंजरी के मन में न उसके प्रति अविश्वास का भाव शेष रह गया है न किसी प्रकार की आशंका का चिह्न। कुछ ही समय पहले जो लड़की जाल में फँसी हुई, संगीहीन और असहाय कपोती की तरह

संकुचित और भीत होकर थर-थर काँप रही थी, उसमें आश्वासन और विश्वास का भाव जगाने में सफलता प्राप्त करने के कारण पारसनाथ की प्रसन्नता का ओर-छोर नहीं था। पर उसने भरसक अपने उस हर्षाकुल भाव को दबाने की चेष्टा की। वह मंजरी की लंबी-लंबी और पतली उँगलियों के सुंदर, सुडौल नाखूनों पर गौर करता हुआ कुछ देर तक न मालूम क्या सोचता रहा। इसके बाद उसने कहा—"मैं आपसे कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ—यदि आप मेरी ढिठाई क्षमा करें तो!"

मंजरी ने कौतूहल-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा, पर वह बोली कुछ नहीं। पारसनाथ कहता चला गया—"क्या मैं जान सकता हूँ कि आपका घर—जन्मस्थान—कहाँ है?"

तमाखू की बिखरी हुई पत्तियों को मेज़ पर से झाड़ते हुए मंजरी ने बिना पारसनाथ की ओर देखे बहुत ही धीरे से कहा—"मेरा जन्म दिल्ली में हुआ, पर वैसे हम लोग हापड़ के रहने वाले हैं।"

"ओह, यह बात है! अच्छा, आपके पिताजी यहाँ क्या करते हैं?"

इस बार मंजरी ने कनखियों से पारसनाथ की ओर देखा, और फिर बोली—"मेरे पिताजी की मृत्यु कई साल पहले हो चुकी थी।"

"तो इस समय यहाँ आपके घर पर कौन-कौन है?"

"माँ के सिवा और कोई नहीं है!"

"भाई-बहन।"

"कोई नहीं।"

"ओह, समझा! तो—तो आप लोगों की गुजर कैसे......पर माफ़ कीजिएगा, मैं जानता हूँ कि मैं ज्यादती कर रहा हूँ और मुझे

इस प्रकार का प्रश्न करने का कोई अधिकार नहीं है ! फिर भी, यदि आप अनुचित न समझें, तो एक प्रश्न मैं और करना चाहता हूँ—इस होटल से आपका परिचय कब से हुआ ?"

"प्रायः दो महीने से।"

"अच्छा ! मैं समझता हूँ आपका प्रधान उद्देश्य यहाँ आकर भोजन करने का रहता होगा ?" पारसनाथ जान-बूझकर बन रहा था। पर उसके इस प्रश्न के उत्तर में मंजरी ने केवल एक बार तीखी दृष्टि से उसकी ओर देखा, और मुँह से कुछ नहीं बोली।

सहसा पारसनाथ ने व्यस्त भाव जताते हुए कहा—"ओह, मैं आपसे यह पूछना भूल ही गया कि आपके लिये क्या खाना मँगाया जाय। ब्वाय !"

'ब्वाय' पास ही कहीं खड़ा था। आवाज़ सुनते ही तत्काल उपस्थित हुआ। पारसनाथ यह कहना ही चाहता था कि मंजरी देवी के लिये खाना लाओ, पर उसके कुछ कहने के पहले ही मंजरी बोल उठी—"मैं कुछ खाऊंगी नहीं।"

अत्यंत दुःखित भाव जताते हुए पारसनाथ ने पूछा—"क्यों ?"

"होटल में गोश्त बनता है, और मैं गोश्त नहीं खाती।"

"पर वेजिजटेबिल खाना भी तो यहाँ बनता है।"

"जिस रसोई में गोश्त बनता हो वहाँ की बनी कोई चीज़ मैं नहीं खा सकती।"

"ओह, यह बात है ! तो आप कट्टर धार्मिक हैं !" न चाहते हुए भी पारसनाथ के मुँह से व्यंग की गंध मानो खाने के बाद के डकार की तरह बाहर निकल ही पड़ी।

फिर उसी मर्मभेदी तीखी दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखते हुए

मंजरी ने कहा—"जी नहीं ! ('जी' पर उसने एक बार फिर काफ़ी ज़ोर दिया) मैं न धार्मिक हूँ न कट्टर। पर मांस से मुझे स्वभाव से ही अरुचि है।"

"हूँ ! अच्छा, खाना रहने दीजिए, कुछ पी ही लीजिए ! शर्बत मँगाया जाय ? या लेमनेड, जिंजर या और कोई चीज़ ?"

"अच्छी बात है, मैं 'लाइम-जूस' पी लूँगी।" यह कहकर उसने 'ब्वाय' की ओर देखा, पारसनाथ के कहने पर 'ब्वाय' चला गया।

कुछ देर तक फिर सन्नाटा छाया रहा। जिस एक प्रश्न के लिये पारसनाथ इतनी हेर-फेर की बातें कर रहा था उसे पूछने का साहस उसे नहीं हो रहा था, और इस कारण वह व्याकुल होकर भीतर ही भीतर छटपटा रहा था।

अंत में वह रह न सका। कमर कसकर परिणाम के लिये तैयार हो गया और हिम्मत बाँधकर बोल उठा—" मंजरी देवी, मैं एक प्रश्न पूछने की धृष्टता और करना चाहता हूँ, इसके बाद फिर आपको परेशान नहीं करूँगा। आशा करता हूँ, मेरी इस अंतिम धृष्टता को आप अवश्य ही क्षमा कर देंगी। आपका शील-स्वभाव देखकर यह बात मेरे आगे स्पष्ट हो चुकी है कि आप होटल में किसी विवशता के कारण आती हैं—स्वेच्छा से, किसी सुख की लालसा से नहीं। पर साथ ही दो महीने के अनुभव से आपको यह भी मालूम हो गया होगा कि होटल में जिस प्रकार के लोग आते हैं उनसे आत्मरक्षा करना सब समय संभव नहीं है। एक ओर आप आत्मरक्षा के लिये इस क़दर सचेत रहती हैं कि किसी पुरुष के स्पर्शमात्र से ग्लानि से सिहर उठती हैं, और दूसरी ओर—माफ़ कीजिएगा, मेरा उद्देश्य किसी हालत में भी आप पर किसी प्रकार का छींटा कसने का नहीं है, मैं केवल अपने मन की एक शंका का निवारण चाहता हूँ, जिसने दो दिन से

मुझे बेचैन कर रखा है। मैं यह भी जानता हूँ कि जिस बात का कोई संबंध मेरे जीवन से नहीं है, उसके विषय में किसी प्रकार की बेचैनी महसूस करने का कोई अधिकार भी मुझे नहीं होना...
मनुष्य का यह मन न जाने कैसी-कैसी ...
है, इस बात का अन्दाज़ लगाना भी कठि...
कहने जा रहा था, मंजरी देवी, कि यह ...
मैं किसी भी समय आपकी बेइज़्ज़ती ...
अकस्मात् वह ठिठक ...
थी, औ...
आँस...

चले जाने के लिये कहा। वह चला गया। मंजरी कुछ देर तक आँसुओं के रहे-सहे चिह्नों को अंचल से मिटाती रही। इसके बाद ... खड़ी हुई, और पारसनाथ की ओर न देखकर भर्राई हुई ... जाती हूँ, मुझे देर हो रही है, क्षमा ... ने पारसनाथ की ओर हाथ जोड़े, पर ... गा। पारसनाथ की घबराहट का अन्त ... हुआ, और बड़ी हड़बड़ी के साथ ... का एक नोट बाहर ... कुछ भेंट ... रसका

और नगण्य था। उस बृहत् नशे के खुमार ने भी स्वभावतः असाधारण रूप धारण कर लिया था।

कुछ देर तक वह उसी सन्न अवस्था में बैठा रहा। इसके बाद 'ब्वाय' को बुलाकर उसने बियर की दो बोतलें और मँगाई। बोतलों के आने पर वह धीरे-धीरे पीने लगा। प्रायः दो घंटों के भीतर उसने दोनों बोतलें समाप्त कीं। वह जानता था कि मनोवैज्ञानिक कारणों के परिवर्तन के साथ नशे का रूप अथवा क्रम भी बदलता रहता है—कभी गहरा कभी हलका, कभी मधुर कभी कटु। जिस आश्चर्यमयी लड़की के रहस्यमय आवरण को छिन्न करने के उद्देश्य से आज वह होटल में अकेले आया था, उसने अपना भेद तनिक भी न खोलकर और भी अधिक अंधकारमय रहस्य-पटों से अपने को आवृत कर लिया—इस कारण बियर का नशा उसे एक विचित्र भ्रांति के भँवर में गोते खिलाने लगा। उसने नशे को दबाने की तनिक भी चेष्टा न करके उस भँवर में मुक्त रूप से अपने छोड़ दिया। उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि उसके सिर के चारों ओर एक ज्वलंत प्रकाश-पूर्ण गोल रेखा शनिग्रह के चारों ओर घूमनेवाले आलोक-चक्र की तरह चक्कर काट रही है, और उस प्रकाश-रेखा के बीच में स्याही से भी गाढ़े काले रंग का गोला पूर्ण सूर्य ग्रहण की अतल अंधकारमय छवि की तरह स्थिर है; और वह अंधकार भी ऐसा रहस्यपूर्ण है कि उस पर देर तक आँखें ठहर नहीं पातीं,—सूर्य के प्रज्वलित प्रकाश की ही तरह वह निविड़ अन्धकार भी जैसे आँखों में चकाचौंध लगा देने वाला है।

अन्त में जब वह बिल चुकाकर और ब्वाय को 'टिप' देकर जाने के इरादे से कुर्सी पर से उठा, तो प्रायः दो मिनट तक उसका सिर चक्कर खाता रहा। पर फिर शीघ्र ही वह सँभल गया और प्रबल मानसिक चेष्टा से नशे के प्रभाव को बहुत-कुछ दबाने में समर्थ हो गया।

एक एक्के पर सवार होकर जब वह घर चलने लगा तो रास्ते-भर लड़की की रोती सूरत उसकी स्मृति में उज्ज्वल से उज्ज्वलतर रूप धारण करती रही और एक अनोखी वेदना, जिसका अनुभव उसके पहले उसे कभी नहीं हुआ था, रह-रहकर उसके भीतर टीस मारने लगी। इतनी बात उसके आगे स्पष्ट हो गई थी कि परिस्थितियों की घोरतम विवशता ने लड़की को होटल में आने को बाध्य किया है। पर (वह सोचने लगा) जब वह इस पथ पर पाँव रख चुकी है, तो उसे पूर्ण रूप से अपना क्यों नहीं लेती? इस प्रकार प्रतिपल तिल-तिल करके अपनी आत्मा को जलाते रहना और साथ ही जीविका का कोई दूसरा उपाय खोजने में असमर्थ होना—इससे बढ़कर कष्टकर और अस्वाभाविक परिस्थिति और क्या हो सकती है? उसे चाहिये कि यथार्थता को पूर्ण रूप से स्वीकार ले और मुक्त होकर, स्वेच्छा से, प्रसन्नता-पूर्वक एक पेशेवर वेश्या का जीवन बिताना शुरू कर दे। जब संसार ने उसकी तनिक भी परवा नहीं की है, और समाज उसे एक सुंदर, शृंखलाबद्ध, व्यवस्थित जीवन बिताने की कोई सुविधा देना नहीं चाहता, तो वह क्यों थोथी भावुकता के फेर में पड़े?—क्यों यह सोचकर प्रतिपल पीड़ित होती रहे कि वह—एक भले घर की लड़की—एक ऐसे पथ की ओर क़दम बढ़ाने के लिये विवश हुई है जहाँ उसकी इज़्ज़त एक न एक दिन मिट्टी के मोल बिककर ही रहेगी? जब समाज ने उसे नंगा-बूचा कर दिया है, तब वह क्यों अपनी खुशी से परिपूर्ण निर्लज्जता को नहीं अपना लेती, और जीवन और यौवन के उस सुख से (भले ही वह सुख अत्यंत गंदा और वीभत्स हो) क्यों नहीं तृप्त हो लेती, जो उसके सामने से होकर मोरियों के अविरत धारा-प्रवाह की तरह बहा चला जा रहा है? पारसनाथ की चिंताधारा अपने मकानवाली गली की मोरियों को नहीं भूल पाई; यह सोचकर मन-ही-मन उसे हँसी भी आ रही थी।

उसका जला-भुना मन इस प्रकार का तर्क कर तो रहा था, पर उसका अन्तर्मन भीतर-ही-भीतर उस लड़की की 'थोथी भावुकता' के प्रति श्रद्धा और संभ्रम से बार-बार झुक-झुक पड़ता था।

नवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन सवेरे नींद खुलते ही पारसनाथ को याद आया कि नंदिनी ने कल उसे विशेष आग्रहपूर्वक अपने यहाँ भोजन के लिये निमंत्रित किया था, और आज दिन का भोजन उसे उसी के यहाँ करना होगा। वह नित्य सुबह-शाम एक सस्ते भोजनालय में खाना खाया करता था। केवल चाय अक्सर घर ही में पिया करता था। इस काम के लिये उसने अपने पड़ोस की एक मालिन नियुक्त कर रखी थी, जो सुबह आकर झाड़ू-बुहारी करके चाय बनाकर उसे पिला जाती थी और उसके कमरे में रखे हुए घड़े का पानी बदल कर रख जाती थी। उसी प्रकार एक बार शाम को भी आकर चाय बना देती थी।

भोजनालय में निकृष्ट श्रेणी का भोजन मिलता था। इसलिये आज नंदिनी के यहाँ घर का बना भोजन मिलेगा, इस कल्पना से उसे कुछ प्रसन्नता अवश्य हुई। पर एक बात रह-रहकर उसे कुछ विचलित-सा कर रही थी। इधर कुछ दिनों से वह इस बात पर गौर कर रहा था कि नंदिनी के प्रत्येक हाव-भाव, रंग-ढंग और बात-व्यवहार में एक विशेष परिवर्तन आ रहा है। उसके रक्त और माँस से पुष्ट, सुन्दर, स्वस्थ और गोरे-उजले मुख ने पारसनाथ को प्रारंभ में अत्यंत प्रबलता से आकर्षित किया था, इसमें संदेह नहीं। पर धीरे-धीरे वह ऐसा अनुभव करने लगा था कि नंदिनी के चारों ओर अत्यधिक लालसा-जनित विलास का एक ऐसा भारग्रस्त वातावरण तैयार हो उठा है,

जिसमें मिठास की मात्रा आवश्यकता से बहुत अधिक है। उस मिठास की अतिशयता से वह छक गया था और अघाने लगा था। इसलिये प्रारंभ में नंदिनी से जिस तरह की घनिष्ठता बढ़ाने के लिये वह लालायित हो उठा था, उसकी विशेष चाह अब उसके मन में नहीं रह गई थी। इसका एक कारण और था। जब उसने नंदिनी को पहले-पहल देखा था तब उसके मन में यह धारणा उत्पन्न हुई थी कि वह गृहस्थाश्रम के अत्यंत उच्च और पवित्र शिखर पर स्थित एक ऐसी मायामूर्ति है जिसके दर्शन दूर से ही किए जा सकते हैं, पर जिसे स्पर्श नहीं किया जा सकता। ज्यों-ज्यों वह उसके निकट संपर्क में आता चला गया त्यों-त्यों इस संबंध में उसकी धारणा बदलती चली गई। पर यह सब होने पर भी वह अब भी उसके विवाहित-जीवन की जादू-भरी सीमारेखा से मोहाविष्ट था; नंदिनी को उस पवित्र सामाजिक शृंखला की सीमारेखा से बाहर निकालकर उसे विनाश के पथ पर ले जाने की प्रवृत्ति उसके भीतर बहुत दिनों से ज़ोर मार रही थी। इस प्रवृत्ति को उभाड़ने में स्वयं नंदिनी के पति महाशय परोक्ष में सहायक सिद्ध हो रहे थे। भुजौरियाजी के अनेक जटिल गाँठों से युक्त व्यक्तित्व से वह जितना ही अधिक परिचित होता जाता था, उनके प्रति उतनी ही घृणा भी उसके मन में बढ़ती चली जाती थी। साथ ही वह यह भी जानता था कि वह कुटिल प्रकृति का व्यक्ति उससे चाहे कैसा ही अनुचित लाभ क्यों न उठावे, उस परदेश में वह बिना उसके आश्रय के एक दिन भी नहीं ठहर सकता। इसलिये भीतर-ही-भीतर उससे चाहे वह कितना ही क्यों न कुढ़े, पर बाहर से उसके प्रति वह अत्यन्त सौजन्यपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करता था। पर अपने भीतर दबी हुई घृणा और विद्रोह की भावनाओं का बदला वह उसी की तरह भीतर से कुटिल पर बाहर से मीठे उपायों से लेना चाहता था।

पारसनाथ के मन में यह धारणा जमने लगी थी कि वह भुजौरिया-

जी और उनकी 'धर्मपत्नी' के स्वभाव से पूर्णतया परिचित हो गया है। पर उसका यह भ्रम कितना बड़ा था, इसका पता उसे बाद में धीरे-धीरे लगना शुरू हुआ। उस भ्रम की पहली सूचना उसे नंदिनी के उस विशेष निमन्त्रण के दिन मिली।

प्रायः बारह बजे के समय वह भुजौरियाजी के मकान के पास पहुँचा। वह जल्दी ही पहुँचना चाहता था, पर रास्ते में किसी एक पुस्तक-प्रकाशक के यहाँ व्यावसायिक बातें करने में उसे देर हो गई थी। एक्के पर से उतरकर भाड़ा चुकाकर उसने एक गली के भीतर प्रवेश किया और फिर उसके बाद एक दूसरी गली में गया। वहाँ से कुछ दूर चलकर बाईं ओर मुड़कर उस तीसरी गली में दाहिनी हाथ की तरफ़ दूसरे मकान के पास जाकर ठहर गया। स्थान के चुनाव में भुजौरियाजी उससे किसी क़दर कम न निकले, यह सोचकर उसे मन-ही-मन हँसी आ रही थी। उस गली में भी दोनों तरफ़ गंदी नालियाँ न जाने किस वैतरणी से मिलने के लिये आतुर होकर कलकल शब्द से बही चली जा रही थीं। मकान और नाली के बीच एक पुलोपम पत्थर रखा हुआ था। उसके सहारे नाली को पार करके वह दरवाज़े पर पहुँचा और जंज़ीर को ज़ोर से झनझनाने लगा। भीतर से रमणी-कंठ से आवाज़ आई—"कौन ?"

"मैं हूँ, किवाड़ खोलिए।"

कुछ देर बाद किवाड़ खुला और एक सुन्दरी युवती ने, जिसकी रूप-छटा तपाए हुए सोने की तरह निखर रही थी, किवाड़ खोला। उसके मुख की मधुर मुसकान से यह स्पष्ट मालूम होता था कि वह अपने भीतर के हर्ष और उल्लास के भाव को छिपा नहीं पा रही है। उसके इस उल्लसित भाव का छुतहा प्रभाव पारसनाथ पर भी पड़े बिना न रहा, और वह भी मन्द-मधुर मुस्कराने लगा। पारसनाथ के भीतर

प्रवेश करते ही रमणी ने भीतर से दरवाज़ा बंद कर दिया। भीतर प्रवेश करते ही सील की उसी सुपरिचित गंध ने पारसनाथ का स्वागत किया जिसकी स्मृति का तार उसके अपनी गलीवाले मकान से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ था। ऊपर जाने की सीढ़ियाँ उस भरपूर दुपहरी के समय भी अंधकार से ढकी हुई थीं। पर जब दोनों ऊपर पहुँचे तो वहाँ का उन्मुक्त वातावरण पूर्व-परिचित होने पर भी पारसनाथ को नया-सा लगा। एक सहननुमाँ चौड़े बरामदे पर धूप खुल खेल रही थी। मुँडेर पर बराबर-बराबर फ़ासले पर पाँच छः गमले रखे हुए थे, जिन पर पाँच तरह के विलायती फूल लगे हुए थे; नीचे जितनी ही गंदगी और अंधकार था, ऊपर उतनी ही सफ़ाई और प्रकाश। सामने के कमरे के भीतर प्रवेश करते ही उसको सुसज्जित रूप देखकर यह विश्वास करना कठिन हो जाता था कि नीचे गली की नालियों में असंख्य कीटों और कीटाणुओं का एक असीम लोक भासमान होता हुआ अनन्त की ओर प्रसरणशील हो रहा है, और भुजौरियाजी के उस 'कला-भवन' का उपहास करने का दुस्साहस कर रहा है। भुजौरियाजी ने अपने उस किरायेवाले मकान का नाम 'कला-भवन' रख दिया था। वास्तव में उस मकान के केन्द्रीय कमरे के भीतर कला की बहुत-सी सामग्रियाँ सुसज्जित थीं। उसकी दीवारों पर राफ़ेल, फ़ान गाग़, सेज़ान, कांस्टेबल आदि प्रसिद्ध यूरोपियन चित्रकारों के कुछ चित्र की मुद्रित प्रतिलिपियों के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय, और विशेषकर युक्त-प्रान्तीय चित्रकारों के कतिपय मूल चित्र भी टँगे हुए थे। स्वयं पारसनाथ द्वारा अंकित एक मूलचित्र वहाँ वर्तमान था। उसने अपने अंकित पाँच मूल चित्र भुजौरियाजी को दिए थे, जिनमें से केवल एक चित्र उस कमरे में टँगा था। वह चित्र उसे विशेष रूप से प्रिय था। वह चित्र था दार्जिलिंग के 'टाइगर हिल' से दिखाई देनेवाला सूर्योदय का दृश्य। उसकी पृष्ठतम भूमि पर किंचित् बाई ओर हिमालय के हिम-

मंडित शिखरों पर प्रतिस्फुरित होने वाली रविरश्मियों की कनकरेखा-छटा; उसके बाद निकट के पहाड़ों पर कुछ सुनहलापन लिये हुए हलके लाल रंग का हासाभास; उसके बाद सामने तनिक दाहिनी ओर, मालभूमि की क्षितिजरेखा से मिले हुए घने बादलों को भेदती हुई, अदृश्य सूर्य को तीर के समान तीखी किरणें; और अंत में अग्रतम भूमि पर लहरों से आंदोलित विशाल झील के समान फैली हुई सघन मेघतुल्य नीहार-राशि पर बिखरे हुए कुंकुम की अवर्णनीय शोभा! एक तो वह दृश्य ही अपने-आप में सुन्दर था, तिसपर रंगों का सामंजस्य और रेखाओं की बारीकी ने उसकी सुन्दरता को कई गुना अधिक बढ़ा दिया था। इस चित्र को पारसनाथ ने जिस तन्मयता से अंकित किया था, वह जैसे किसी सुदूर भूतकाल की बात हो गई थी। उसके बाद वह फिर किसी चित्र में इस प्रकार अपनी आत्मा के रस से तैयार किया हुआ रंग न दे सका। उसके साथ एक सुख-स्मृति—जो अब एक तीक्ष्ण काँटे के रूप में परिणत हो गई थी—जड़ित थी। कांची ने तब उस विशेष दिन के सूर्योदय के समान ही उसके जीवन के ऊपर स्तर-प्रति-स्तर जमे हुए घने काले बादलों को अपने अंतर के तीव्र ज्योतिर्मय किरण-तीरों से भेदकर उसके अंतर को एक विचित्र रूप-छटा से आलोकित किया था। तब उसे क्या पता था कि उसके अपने भीतर अभी गाढ़ कृष्ण मेघों का ऐसा अक्षय कोष संचित है जो फिर किसी भी समय उमड़कर पहले से भी अधिक भयंकर कालिमा से उसके अन्तराकाश को छा देगा और समस्त प्रकाश-रेखाओं का पथ एकदम बंद कर देगा आज बहुत दिनों के बाद, न मालूम क्यों, उसके हृदय में कांची की दबी हुई स्मृति की वेदना उक्त चित्र को देखने से एक बार तीव्र वेग से उभर आई—पर कुछ ही क्षण के लिये। दूसरे ही क्षण नंदिनी के मधुर झंकार-भरे स्वर ने उसे वर्तमान की वास्तविकता के बीच में खड़ा कर दिया। अपनी बड़ी-बड़ी उज्ज्वल आँखों में स्नेह-

लालस से भरी मीठी मुसकान झलकाकर वह बोली—"आपने इतनी देर कर दी कि मैं तो बिलकुल निराश ही हो गई थी !"

वास्तव में उसकी मुसकान बहुत ही (पारसनाथ की धारणा के अनुसार, आवश्यकता से कहीं अधिक) मीठी थी। और इस कारण उसका आकर्षण भी, तत्काल के लिये, भयंकर रूप से प्रबल था। उस मुसकान से पूर्णतया अनुप्राणित होता हुआ पारसनाथ भी मधुर-मधुर मुस्कराता हुआ बोला—"मुझे बहुत दुःख है। एक धूर्त प्रकाशक के चक्कर में पड़ गया था। क्षमा कीजिएगा। भुजौरियाजी कहाँ हैं ?"

"गए होंगे किसी की गिरह काटने ! उनके चक्करों का मुझे क्या पता।" यह कहते हुए उसकी मधुर मुसकान पल में जैसे किसी जादू के मंत्र से विलीन हो गई, और उसकी तनी हुई भौंहों के इर्द-दर्द बल पड़ गए। पारसनाथ ने आज नंदिनी का यह एकदम नया रूप देखा।

अत्यन्त विस्मित होकर उसने कुछ झिझकते हुए पूछा—"वह क्या खाना खाकर गए हैं ?"

"तरह-तरह के फरफंदों से जब छुट्टी मिले तब न! उन्हें घर पर खाने की फुर्सत कहाँ ! अपने ही समान किसी लफंगे, जालसाज़ या गिरहकट के यहाँ कुछ खा-खिला लेते होंगे। आजकल सुबह सात बजे निकल जाते हैं, दिनभर गायब रहते हैं, और रात में दस बजे के पहले कभी वापस नहीं आते।"

"ओह, यह बात है ! शायद अपने व्यवसाय से संबंधित किसी आवश्यक काम में व्यस्त रहते होंगे।" मुख पर अत्यन्त गंभीरता का भाव व्यक्त करते हुए पारसनाथ ने अपना यह मंतव्य प्रकट किया।

नंदिनी की आँखों में एक अतिशय तीखी और कटीली—प्रायः हिंसक—छाया घिर आई। भौंहों को पहले से भी अधिक तानते हुए कहा—"व्यवसाय से सम्बन्धित बात उनके लिये इस बात की चिन्ता के

सिवा और क्या हो सकती है कि किस भले आदमी को घर-घाट से बैठा दिया जाय, किस ग़रीब का सर्वनाश करके अपना 'बैंक-एकाउंट' बढ़ाया जाय, किस निरीह को चिकनी-चुपड़ी और 'उच्च कलापूर्ण' बातों से वश में करके उसका सारा सत्व चूस लिया जाय!" यह कहते हुए वास्तव में उसकी आँखें एक हिंस्र जंतु की तरह जलने लगी थीं। उसके मुख के जिस "आवश्यकता से बहुत मीठे" भाव से पारसनाथ इतने दिनों तक परिचित था, वह उसका तत्कालीन भाव देखते हुए एकदम असंभव-सा लगने लगा। वह सोचने लगा कि नंदिनी के असली रूप के संबंध में इतने दिनों तक वह भयंकर भ्रम में कैसे पड़ा रह गया!

नंदिनी कुछ देर तक उसी जलती हुई हिंसक दृष्टि से, तनिक अनमने भाव से, चुपचाप पारसनाथ की ओर देखती रही। इसके बाद उसी तीखे स्वर में बोली—"आपको पता है, आपने अपने जो पाँच चित्र इन्हें दिए थे उनमें से चार क्यों ग़ायब हैं?" इस प्रश्न के उत्तर में कुछ न कहकर पारसनाथ ने केवल अपनी विस्मित दृष्टि से यह जता दिया कि वह इस रहस्य से क़तई परिचित नहीं है।

नंदिनी क्षण-भर ठहरकर बोली—"आपने अपने प्रत्येक मूल चित्र के लिये जो दस-दस रुपये इनसे पाए हैं उनसे आप निश्चय ही अपनी वर्तमान स्थिति का ख़याल करके संतुष्ट हो गए होंगे, और आपके मन में यह विश्वास जम गया होगा कि यह महाशय बड़े सहृदय और उदार हैं। पर आपको मालूम नहीं है कि किस कुटिल जोंक के पाले पड़े हैं। आपके चारों चित्र इन 'कला-प्रेमी' महाशय ने अपने परिचित दो-एक राजा रईसों के हाथ सौ-सौ, डेढ़-डेढ़ सौ रुपये को बेच डाले हैं! पर मारिए गोली इन सब बातों को! ऐसे नीच व्यक्ति की चर्चा करना भी पाप है। ऐसे अर्थपिशाच का

नाम लेने से या तो खाना नहीं मिलता या खाया हुआ खाना हज़म नहीं होता। आज बड़े चाव से मैंने खाना तैयार किया था। एक तो आप देर में आए, जिससे सारा खाना ठंडा होकर मिट्टी हो गया, तिस पर आपने एक ऐसे व्यक्ति की चर्चा चलाई कि...क्या कहा जाय! कुछ भी हो; आप आराम से बैठिए, मैं खाना लाती हूँ।" यह कहकर वह बाहर चली गई।

पारसनाथ उसकी बात सुनकर सन्नाटे में आ गया। भुजौरियाजी की करतूतों का हाल सुनकर उसे जो आश्चर्य हुआ सो तो हुआ ही, पर सबसे बड़ा आश्चर्य हुआ उस 'अर्थपिशाच' के प्रति उसकी 'धर्म-पत्नी' का रुख देखकर। आज तक नंदिनी के किसी भी व्यवहार से वह यह अनुमान नहीं लगा पाया था कि वह अपने पति से इस क़दर असंतुष्ट हो सकती है। और असंतुष्ट होने पर भी कोई स्त्री किसी ग़ैर शख़्स के आगे ऐसे खुले शब्दों में, ऐसी कटुता के साथ अपने पति के गुप्त रहस्यों का भंडाफोड़ करके सान पर चढ़ी हुई छुरी की धार से भी तीखी आलोचना कर सकती है, यह बात उसकी कल्पना के अतीत थी। वह भ्रांत भाव से एक सोफ़ा पर बैठ गया और नंदिनी का जो एकदम नया रूप आज उसके देखने में आया था, उस पर ठण्डे दिल से विचार करने की विफल चेष्टा करने लगा।

थोड़ी देर बाद नंदिनी एक अधेड़ उम्र की नौकरानी को साथ लेकर आई। नौकरानी के हाथ में एक थाली थी, जिसपर परोसा लगाया गया था, और दूसरे हाथ में एक चौखड़ा था, जिस पर चार कटोरों में चार तरह की तरकारियाँ रखी हुई थीं। एक झलझलाती हुई थाली नंदिनी के हाथ में भी थी और उसके दूसरे हाथ में बड़ा-सा डिब्बा था, जिसमें पूड़ियाँ दबाकर रखी हुई थीं। फ़र्श पर कालीन के ऊपर एक दस्तरख्वान पहले से ही बिछा दिया गया था। उसी पर थालियाँ रख दी गईं।

उसके बाद नंदिनी ने पारसनाथ से नीचे बैठने का अनुरोध किया। दोनों जमकर बैठ गए। नौकरानी पानी लाने चली गई। दोनों साथ-साथ खाने लगे। इस समय नंदिनी के मुख पर उसी स्नेह-सरस मधुर मुसकान की झलक वर्तमान थी जिससे पारसनाथ भली भाँति परिचित था। एक कौर मुँह में डालने के बाद पारसनाथ ने कहा—"आज मुद्दत के बाद घर का बना भोजन मिला है। होटल का खाना खाते-खाते तबीअत ऊब गई थी।"

नंदिनी ने किंचित् करुण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—"क्या बताऊँ, मैं तो रोज़ ही आपसे यहीं खाने के लिये अनुरोध करती, पर इन मक्खीचूस महाशय के रंग-ढंग देखकर हिम्मत नहीं पड़ती।" वह खाना चबाती हुई बोल रही थी, जिससे उसका रूप बड़ा गद्यम— लग रहा था, यद्यपि उसकी आँखों का तत्कालीन सहृदय भाव बड़ा प्रभावोत्पादक था।

पारसनाथ केवल चार ही पूड़ियाँ खाने के बाद अघा ग— —ा था। वास्तव में पक्की रसोई उसे विशेष रुचती नहीं थी। शिष्ट— —चार के बतौर उसने "घर के बने भोजन" की जो तारी— —की थी उसका कोई विशेष प्रियकर उत्तर भी उसे नहीं मिला — —था, और 'मक्खीचूस महाशय' का अन्न उसके गले के नीचे उतरना — नहीं चाहता था। पर नंदिनी बड़े-बड़े कौर मुँह में डालकर बड़े — —चाव से खा रही थी, और जितनी देर में पारसनाथ चार पूड़ियाँ समाप्— —त कर पाया था उतनी देर में वह प्रायः उसका दुगना खा चुकी थी — नौकरानी आकर पानी रख गई। पारसनाथ कुछ देर तक घूँट-घूँट क— —रके पानी पीता रहा। उसके बाद नंदिनी का साथ देने के इरादे — से वह एक दहीबड़ा उठाकर कुतर-कुतर कर खाने लगा। उसका — हाथ ढीला पड़ते देखकर नंदिनी ने कहा—"आप तो कुछ खा ही — नहीं रहे हैं। खाना निश्चय ही आपके पसंद नहीं आया होगा!"

"नहीं, नहीं, खाना बहुत अच्छा बना है। पर, बात यह है कि मैं नाश्ता करके आया था।"

नंदिनी के मुख पर वेदना के चिह्न स्पष्ट दिखाई देने लगे। उसने कहा—"अच्छा कम से कम दो पूड़ियाँ तो और खा लीजिए। थाली की पूड़ियाँ पड़े रहने दीजिए। डिब्बे की पूड़ियाँ अभी गरम हैं।" यह कहकर उसने डिब्बे से दो पूड़ियाँ निकालकर पारसनाथ की थाली की ओर बढ़ाईं। पारसनाथ मना करता रहा, पर नंदिनी ने उसकी थाली में पूड़ियाँ डाल ही दीं।

पारसनाथ ने कहा—"आपने व्यर्थ में इन पूड़ियों को नष्ट किया है। मैं अब खा नहीं सकता। सचमुच मेरा पेट भर गया है।"

पर नंदिनी हठीली बालिका की तरह ज़िद करती हुई और आँखों में अधिक अनुनय का भाव जताती हुई कहने लगी—"न! आपको खाना ही होगा! आप नहीं खावेंगे तो मैं भी नहीं खाऊँगी। आपको भूख नहीं है, पर मुझे तो बड़ी भूख लगी है। अगर आपको मेरा भूखा रहना पसंद है, तो अच्छी बात है, न खाइए!" यह कहकर उसने कृत्रिम क्रोध का भाव जताते हुए अपने हाथ समेट लिए और अपने सामने से थाली हटा दी।

"अरे, आप यह क्या करती हैं! अच्छा, लीजिए। आपका साथ देता हूँ।" यह कहकर पारसनाथ ने एक छोटा-सा टुकड़ा तोड़कर मुँह में डाला। नंदिनी ने एक बार तिरछी दृष्टि से उसकी ओर देखकर और दुष्टतापूर्ण मुसकान मुख पर झलकाकर थाली अपनी ओर खींचकर खाना शुरू कर दिया।

दसवाँ परिच्छेद

जब दोनों खा-पी चुके और नौकरानी बर्तन उठाकर फ़र्श साफ़ करके चली गई, तो पारसनाथ आराम के साथ एक कौच पर बैठ गया, और जेब से सिगरेट निकालकर उसे जलाकर पीने लगा। नंदिनी नीचे बैठकर पान लगाती हुई व्यंग-भरी मुसकान के साथ बोली—"मैंने कहा न था कि आपने आते ही ऐसे व्यक्ति की चर्चा चलाई जिसका नाम सुनने से भूखा रहना पड़ता है! यही कारण है कि आपने पेट-भर भोजन नहीं किया!"

"नहीं नंदिनी देवी, ऐसा कहकर आप मुझपर ज़्यादती कर रही हैं। मैंने सचमुच जरूरत से बहुत ज़्यादा खाया है।"

पान लगाकर दो बीड़े नंदिनी ने पारसनाथ को दिए और दो बीड़े अपने मुँह में डाले। ऊपर से पूरी एक चुटकी भर तमाखू की पत्तियाँ मुँह में डालते हुए उसने तमाखू की छोटी-सी डिबिया (जो संभवतः चाँदी की थी और उसके ऊपर तारामंडल का चमचमाता हुआ पत्थर जड़ा हुआ था) पारसनाथ की ओर बढ़ा दी। पारसनाथ हँसा। उसने कहा—"आप अच्छी तरह जानती हैं कि मैं पान के साथ कभी तमाखू नहीं खाता, पर जानते हुए भी रोज़ ऐन मौके पर यह बात भूल जाती हैं और रोज तमाखू की डिबिया मेरी ओर बढ़ाती हैं!" अपनी भूल पर नंदिनी भी हँस पड़ी। उसने कहा—"दर-असल आज-कल मेरा दिमाग़ ठिकाने नहीं रहता।"

"क्यों, आज-कल क्या कोई ख़ास चिंता आपके सिर पर आ पड़ी है?"

"कोई ख़ास चिंता भी नहीं मालूम होती। मैं स्वयं नहीं जानती कि बात क्या है!" यह कहकर वह उसी कौच की दूसरी बग़ल में बैठ

गई जिस पर पारसनाथ बैठा था। उसे बैठते देखकर पारसनाथ सँभल कर बैठ गया।

कुछ देर बाद पारसनाथ ने कहा—"मुझे ऐसा मालूम होता है, नंदिनी देवी, कि यह छोटी-सी तमाखू की डिबिया आपके जीवन के किसी एक विशेष महत्वपूर्ण अध्याय से संबंधित है।"

कुछ चौंककर नन्दिनी ने पूछा—"क्यों? यह अनुमान आपने कैसे लगाया?"

"योंही। आपको मालूम होना चाहिये कि मैं नजूमी भी हूँ।"

"ओह, समझी!" यह कहकर वह अत्यंत गंभीर भाव से ध्यानपूर्वक पारसनाथ की ओर देखती रही। कुछ क्षण के लिये वह अनमनी भी दिखाई दी। इसके बाद सहसा फिर उसके मुख पर सहज प्रसन्न भाव झलक उठा। अपनी जगह से खिसककर वह पारसनाथ के बहुत निकट आकर बैठ गई, और अपना दाहिना हाथ बढ़ाती हुई बोली—"चूँकि आप ज्योतिषी हैं, इसलिये आप निश्चय ही हाथ देखना जानते होंगे। ज़रा मेरा हाथ देखकर बताइए कि निकट भविष्य में मेरे जीवन में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन आने वाला है या नहीं।'

पारसनाथ कुछ देर तक चकित भाव से उसकी ओर देखता रह गया। आज उसकी ढिटाई के कई नये नमूने वह देख चुका था, और उसकी प्रत्येक बात और प्रत्येक व्यवहार उसे रहस्यमय लग रहा था। कुछ झिझकते हुए उसने उसका हाथ धीरे से पकड़ लिया, और ग़ौर से हस्तरेखाओं का निरीक्षण करने का ढोंग रचने लगा।

कुछ देर बाद बोला—"आपका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। दो वर्ष के भीतर आप पुत्रवती और विशेष रूप से धनधान्यवती होंगी। और सौभाग्यवती तो आप अन्त तक रहेंगी!"

"जाइए, आपको सब समय हँसी की ही सूझती है!" यह कह-

कर वह बड़े नाज़ से मुस्कराने लगी, और फिर बच्चों के-से अनुनय के स्वर में बोली—"ज़रा अच्छी तरह से देख दीजिए न! सचमुच मुझे अपने भविष्य के संबंध में बड़ी चिंता है।" उसकी आँखें ललक रही थीं और उसके हाथ की गरमी पारसनाथ को कुछ अस्वाभाविक-सी लग रही थी। एक अज्ञात घबराहट का अनुभव करते हुए पारसनाथ ने उसका हाथ छोड़ दिया, और उसका मुख किंचित् गंभीर हो आया। उसने कहा—"मैं दरअसल हँसी कर रहा था। मैं हाथ देखना नहीं जानता।"

"आप नहीं जानते, पर मैं जानती हूँ हाथ देखना। लाइए, अपना हाथ दीजिए, मैं आपके जीवन के भूत, वर्तमान और भविष्य की सब बातें ठीक-ठीक बता दूँगी।" यह कहकर उसने पारसनाथ के हाथ बढ़ाने की प्रतीक्षा न करके स्वयं उसका हाथ पकड़ लिया और देखने लगी। इतने में नीचे से नौकरानी की आवाज़ सुनाई दी—"बहूजी, किवाड़ बंद कर दीजिए।" वह संभवतः चौका-बर्तन कर चुकी थी और अब किसी काम से जा रही थी।

"मैं एक मिनट में आती हूँ, तब देखूँगी।" कहकर वह तेज़ी से बाहर चली गई। नौकरानी के चले जाने पर उसने भीतर से नीचे का दरवाजा बंद कर दिया, और फिर ऊपर वापस चली आई। पारसनाथ सन्नाटे में था, और ठीक से न कुछ समझ पाता था, न सोच पाता था।

नंदिनी फिर उसी स्थान पर जाकर बैठ गई, बल्कि इस बार पारसनाथ के और अधिक निकट—प्रायः कंधे से कंधे सटाकर—बैठ गई। पारसनाथ चूँकि कौच के बिलकुल कोने पर बैठा हुआ था, इस कारण उसके लिये हटने की तनिक भी गुंजाइश नहीं थी। नंदिनी ने बैठते ही उसका हाथ पकड़ लिया और अपने बाएँ हाथ की हथेली

पर उसे स्थापित करके वह हाथ देखने लगी। चूँकि अब नौकरानी भी चली गई थी, इसलिये सारे मकान में उन दो प्राणियों के अतिरिक्त तीसरा कोई नहीं था। पारसनाथ अपने को एक ऐसी परिस्थिति में पा रहा था, जो अच्छी थी या बुरी, इस संबंध में कुछ भी निर्णय उसका मन नहीं कर पा रहा था। नंदिनी प्रकट में बहाना तो हाथ देखने का कर रही थी, पर उसके हाथ की अस्वाभाविक जलन (जो और चाहे कुछ भी हो, साधारण बुखार की सूचक नहीं थी), आँखों की पुलकभरी सजलता, चेहरे की तमतमाहट, सुगंधित श्वासों का गहरा चढ़ाव-उतार—ये सब लक्षण उसका कुछ दूसरा ही रूप पारसनाथ के सामने रख रहे थे। निर्जन गृह की उस एकांत परिस्थिति में नंदिनी की वह विह्वलता एक अनोखी अशांति उसके मन में उत्पन्न कर रही थी। बहुत दिनों से उसके मन में इस प्रकार के अवसर की लोल आकांक्षा बनी हुई थी, पर आज जब दीर्घ प्रतीक्षा के बाद वह अवसर आया, तो न मालूम क्यों उसका मन कछुवे के अंगों की तरह अपने को चारों ओर से सिकोड़ने लगा। वह जानता था कि इस संकोच का कारण धार्मिक अथवा नैतिक नहीं है। धर्म और नीति के भय को वह वर्षों पहले तिलांजलि दे चुका था। और न यही कारण था कि नंदिनी का मदालस और लालसा विभोर रूप उसे आकर्षणहीन लग रहा हो। यदि सच पूछा जाय तो नंदिनी का उस समय का रूप उसे जैसा मादक और मोहक लग रहा था, वैसा इसके पहले कभी नहीं लगा। जो ज्वर उस समय स्पष्ट ही नंदिनी के प्राणों के रंध्र-रंध्र को अंध आवेग से झकझोर रहा था वह संक्रामक व्याधि की तरह उसकी नाड़ियों में भी पागल गति से संचरित हो रहा था। पर यह सब होने पर भी कौन निविड़ रहस्यात्मक बाधा आज अकस्मात् भीमकाय गौरी-शंकर पर्वत की तरह दुरतिक्रम्य होकर बीच में आ गई। सहसा यह कौन अदृश्य वज्र-रेखा तिलस्मी व्यवधान खड़ा कर गई? उसका

अन्तर्मन कारण जान गया था, पर बाह्य मन भ्रांत अवस्था में केवल छटपट-छटपट कर रहा था।

नंदिनी ने हाथ देखते हुए किंचित् गद्‌गद स्वर में कहा—"आपके हाथ के बाँए किनारे पर सबसे छोटी उँगली के नीचे यह जो तीन छोटी-छोटी पड़ी रेखाएँ हैं वे काफ़ी साफ़ और गहरी हैं। ये रेखाएँ यह जताती हैं कि तीन स्त्रियों से आपका घनिष्ट प्रेम-संबंध रहेगा—यह भी संभव है कि तीनों से आपका विवाह हो जाय!" यह कहकर वह कनखियों से एक अनोखी अदा के साथ पारसनाथ की ओर देखने लगी।

पारसनाथ उचक उठा और क्षणकाल के लिये चकित और स्तब्ध दृष्टि से उसकी ओर देखता रह गया। "क्या यह संभव है?"—उसने मन में सोचा—"क्या नंदिनी वास्तव में अंतर्दर्शिनी है? या यह दैव-योग की बात है? नहीं, वास्तव में वह न तो हस्तरेखा-विशेषज्ञ है और न अंतर्दर्शिनी। यह केवल एक इत्तफ़ाक है कि उसके मुँह से कौतुकवश इस तरह की बात निकल पड़ी है, जो—जो—कौन जाने!—संभवतः सत्य भी सिद्ध हो सकती है।" और तत्काल वह ख़ूब ज़ोर से अट्टहास कर उठा।—"ख़ूब! आपने सचमुच बड़े मज़े की बात कही है! तीन विवाह! ख़ूब!" और यह कहकर उसने एक हलके झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया। पल में उसका वह लालसा-जनित ज्वर न जाने कहाँ तिरोहित हो गया, जिससे मुक्ति पाने के लिये वह बुरी तरह छटपटा रहा था। पर फिर वही प्रश्न आधी रात के किसी भूत की कौतूहली छाया की तरह उसके मन के किसी अंधकारमय कोने से झाँकने लगा कि पोषित आकांक्षा की चरितार्थता का पूरा सुयोग प्राप्त होने पर भी क्यों वह उस ज्वर से छुट्टी पाने के लिये बेचैन था?

बहरहाल, जब उसने हलके से झटके से अपना हाथ छुड़ाकर अट्टहास किया तो नंदिनी जैसे खिसिया गई, और तत्काल अलग हटकर बैठ गई। पल में उसके मुख का भाव आश्चर्यजनक रूप से बदल गया। लज्जा, वेदना और हलके-से क्रोध के मिश्रित भाव की छाया ने उसके मुख पर जैसे स्याही पोत दी। आधी दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखकर उसने अर्द्धव्यक्त स्वर में कहा—"आप बड़े निष्ठुर और निर्मोही हैं।" और यह कहकर वह कौच पर से उठी; पासवाले सोफ़ा पर जाकर मुँह प्रायः फेरकर बैठ गई, और दाहिने हाथ की तर्जनी के नाखून से सोफ़ा की लकड़ी पर न मालूम क्या गड़बड़झाला लिखने लगी।

पारसनाथ ने देखा कि मामला थोड़ा-सा टेढ़ा पड़ रहा है। उसने कहा—"ओह, आप नाराज़ हो गईं! मुझे माफ़ कीजिए, नंदिनी देवी, मेरा इरादा क़तई आपको नाराज़ करने का नहीं था।"

पर नंदिनी कुछ न बोली, और उसी तरह मुँह फेरे नाखून से लिखती रही। पारसनाथ को एक कौतुक सूझा। वह तत्काल उठ खड़ा हुआ और नंदिनी के आगे फ़र्श पर घुटने टेककर हाथ जोड़कर औंधे लेट गया—ठीक जिस प्रकार एक पुजारी देवता की मूर्ति के आगे भक्तिभाव से प्रणत होता है। नंदिनी कौतूहलपूर्ण आधी दृष्टि से उसका यह नया रंग और नया ढंग देख रही थी। पारसनाथ कुछ देर तक उसी अवस्था में चुपचाप हाथ जोड़े लेटा रहा। इसके बाद बोला—"छमहु देवि भक्त कृत अपराधू।"

यह विचित्र कौतुक देखकर नंदिनी के भीतर फुरेरियाँ उठ रही थीं। वह पूर्ण प्रयत्न से हँसी रोकने की चेष्टा कर रही थी। क्षण भर बाद पारसनाथ फिर बोल उठा—"होहु प्रसन्न देहु बरदानू।" बहुत चेष्टा करने पर भी नंदिनी अपने को रोक न सकी, उच्छ्वसित आवेग

से खिलखिलाती हुई हँस पड़ी। कुछ देर तक मुंह में कपड़ा ठूँसकर फिर एक बार हँसी को दबाने की चेष्टा की, पर प्रबल उच्छ्वासों के साथ हँसी फूट-फूट पड़ती थी। अंत में वह उठ खड़ी हुई और मुक्त वेग से हँसने लगी। पारसनाथ भी उठ बैठा। अपने हास्य-जनित आँसुओं को अंचल से पोंछती हुई नंदिनी बोली—"जाइए! आप बड़े दुष्ट हैं!"

पारसनाथ ने सहज मुसकान के साथ कहा—"नहीं नंदिनी देवी, मैं उतना दुष्ट नहीं हूँ जितना कि आप समझे बैठी हैं। आप अकारण मुझसे नाराज़ हो गई थीं।" यह कहकर वह खड़ा हो गया।

नंदिनी कृत्रिम क्रोध से आँखें नचाती हुई बोली—"आपका हृदय बड़ा कठोर है, दूसरों की भावनाओं का तनिक भी असर आपके हृदय पर नहीं पड़ता।"

पारसनाथ ने उसकी पहेली को कुछ-कुछ समझने पर भी न समझने का-सा भाव जताते हुए कहा—"अगर आपकी किसी भावना को न समझने की चूक मुझसे हुई हो तो मैं हृदय से क्षमा चाहता हूँ। आपकी आज की दावत मैं कभी नहीं भूलूँगा। अच्छा, इस समय आज्ञा दीजिए!"

नंदिनी ने इस बार सहज भाव से उसकी ओर देखा। बोली—"क्या अभी चले जाना चाहते हैं? मैंने जो नया चित्र अंकित किया है उसे तो आपने देखा ही नहीं ज़रा ठहरिए, मैं लाती हूँ।" पारसनाथ फिर एक बार कुर्सी पर बैठ गया। नंदिनी एक मेज़ की दराज़ से एक चित्र निकालकर लाई और पारसनाथ के हाथ में देकर उसकी कुर्सी का डंडा पकड़ कर खड़ी रही। चित्र में दिखाया गया था कि एक स्त्री एक तालाब से कमल तोड़ने के लिये झुकी हुई है। चित्र को देखते हुए पारसनाथ ने कहा—"वाह, बहुत सुंदर चित्र है! पर स्त्री का चित्र आपसे बहुत मिलता-जुलता है। क्या शीशे में अपनी आकृति देखकर आपने यह चित्र खींचा था? सेल्फ़-पोर्ट्रेट?"

"जाइए! आप तो मेरी हर बात का मज़ाक उड़ाना चाहते हैं!"

"नहीं, मैं सच कहता हूँ। कुछ भी हो, चित्र बहुत सुन्दर बना है। इसके लिये मैं आपको बधाई देता हूँ। यह लीजिए!" यह कहकर उसने चित्र नंदिनी को वापस कर दिया और स्वयं उठ खड़ा हुआ। इसके बाद बोला—"अच्छा, अब आज्ञा दीजिए! हाँ, एक बात है—" कहकर वह रुक गया। नंदिनी उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर चुपचाप देख रही थी। पर जब उसने देखा कि बात कहते-कहते वह रुक गया तो उसने कहा—"क्या बात है, कहते क्यों नहीं!"

किंचित् उपेक्षा का-सा भाव प्रकट करते हुए पारसनाथ बोला—"कोई खास बात नहीं है। योंही एक बात याद आ गई थी, जो अब मुझे आवश्यक मालूम हो रही है। अच्छा, नमस्कार!" यह कहकर वह जाने लगा। पर नंदिनी ने उसका रास्ता रोकते हुए कहा—"वह बात क्या है, बिना उसे बताये आपको जाने नहीं दिया जायगा। आधी बात मुँह से निकालकर रुक जाना यह कहाँ का शिष्टाचार है!"

पारसनाथ बड़ी द्विविधा में पड़ गया। फिर उसने सोचा कि कहने में हर्ज़ ही क्या है! उसकी जैसी हताश स्थिति है, उसमें झूठमूठ की मान-मर्यादा का खयाल रखना और पोली शान बनाये रहना म बेवकूफ़ी है। उसने कहा—"मैं—मैं—मुझे कुछ रुपयों की आवश्यकता है। क्या इस समय तीस रुपये आप मुझे क़र्ज़ के बतौर दे सकेंगी? देखिए, तकल्लुफ़ के चक्कर में न पड़िएगा। अगर आप बिना दिक़्क़त के दे सकें तो दीजिए, वर्ना कोई ऐसी बात नहीं है, मैं कहीं से दूसरा प्रबंध करने की चेष्टा करूँगा।"

पारसनाथ ने सोचा था कि क़र्ज़ की बात सुन कर नंदिनी या तो बड़े संकोच में पड़ जावेगी या उसके मुख पर घृणा की रेखाएँ खिंच

जावेंगी। इसलिये उसने अपने जान में बड़ा दुस्साहस करके, मन मारकर वह प्रस्ताव किया था। पर उसके आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने देखा कि उसका प्रस्ताव सुनकर नंदिनी का चेहरा अस्वाभाविक प्रसन्नता से खिल उठा। वह बोली—"आप दो मिनट ठहरिए; मैं अभी लाकर देती हूँ।" यह कहकर वह भीतरवाले कमरे में चली गई। कुछ ही देर बाद लौटकर उसने दस-दस के पाँच नोट पारसनाथ को देते हुए कहा—"यह लीजिए! मुझे अभी इन रुपयों की कोई जल्दी नहीं है। आप फ़ुर्सत से—छः महीने, या साल-भर या दो साल बाद जब सुविधा हो तब—दीजिएगा।" पारसनाथ ने बिना गिने ही रुपये जेब में रख लिये और धन्यवाद देकर विदा हुआ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

रास्ते भर वह नंदिनी के आज के प्रत्येक व्यवहार के संबंध में सोचता रहा, और सोच-सोच कर कभी विस्मित, कभी विभ्रांत, कभी पुलकित और कभी भीत होता रहा। मकान पर पहुँचने के बाद उसने दाढ़ी बनाई। पासिन ने आकर चाय बनाकर उसे पिलाई। इसके बाद स्नान करके कपड़े-वपड़े बदल कर वह बाहर जाने की तैयारी करने लगा। आज उसका चित्त बहुत प्रसन्न था। ऐसी प्रसन्नता का अनुभव उसे ख़ास ही ख़ास दिनों में हुआ करता था। उस प्रसन्नता के यद्यपि बहुत से कारण हो सकते थे, तथापि उसका प्रधान कारण क्या है यह बात उससे छिपी नहीं थी। जब-जब उसकी जेब रुपयों से गरम होती थी तब-तब उसे उक्त विशेष प्रकार की प्रसन्नता का अनुभव होता था... तब इस बात का ख़याल उसे नहीं रहता था कि किस ज़रिये... रुपये प्राप्त हुए हैं—चाहे वह बयाने के रूप में प्राप्त हुए...

करने के बाद पारिश्रमिक के रूप में, चाहे पठान से क़र्ज़ के रूप में। आज सुबह से यह चिंता उसे बेहद पीड़ा पहुँचा रही थी कि उसकी जेब प्रायः शून्य हो चुकी है। इसी कारण वह नंदिनी के पास जाने के पहले एक प्रकाशक के पास गया था, जिसकी बहुत सी किताबों के डिज़ाइन वह बना चुका था। उसके पास जाकर उसने बयाने के रूप में बीस रुपये माँगे थे, पर प्रकाशक ने साफ़ लफ़्ज़ों में इनकार कर दिया था। चारा न देखकर उसने नंदिनी से कहा था। नंदिनी से क़र्ज माँगने पर जिस क्षणिक ग्लानि का अनुभव उसे हुआ था वह दो कारणों से उसके अवचेतन मन में दब गई थी—एक कारण यह कि जब उसने क़र्ज़ का प्रस्ताव किया तो नंदिनी के मुख पर संकोच, घृणा अथवा अवज्ञा का भाव व्यक्त होने के बजाय आश्चर्यजनक प्रसन्नता झलक उठी थी (चाहे उस प्रसन्नता का कारण कुछ भी रहा हो), दूसरा यह कि काल्पनिक नहीं, बल्कि वास्तविक रुपयों से—सम्राट् की छाप से युक्त नीले रंग के फड़फड़ाते हुए काग़ज़ के प्यारे-प्यारे चौकोर टुकड़ों से—उसकी जेब गरम हो उठी थी। इसके सिवा एक कारण और था, जिसे उसका सचेत मन जानबूझ कर भुला रहा था। वह यह कि आज वह होटल में जाकर बड़े इतमीनान से बियर पी सकेगा, और उस रहस्यमयी लड़की से एक बार फिर आत्म-विश्वास-पूर्वक आलाप करने की सुविधा प्राप्त कर सकेगा जिसने किसी अज्ञात कारण से दो ही दिन के भीतर उसके मन के बहुत भीतर के स्तर को प्रबल रूप से आंदोलित कर दिया था।

प्रायः छः बजे के क़रीब वह होटल के लिए रवाना हुआ। होटल पहुँचते ही उसने उस विशेष लड़के को अपने पास बुलाया जो जरी को बुला लाया था। चूँकि पिछले दिन उस लड़के को उसने [illegible]पय अच्छा ख़ासा 'टिप' दिया था, इसीलिए वह बड़ी प्रसन्नता से [illegible]ड़ा चला आया। पारसनाथ ने पूछा कि कलवाला

कमरा खाली है या नहीं। जब मालूम हुआ कि कमरा खाली है तो उसने वहीं चलकर बैठने का विचार किया। कमरे में जाकर, कोट उतारकर, पंखा खुलवाकर जब वह आराम से कुर्सी पर बैठ गया तो उसने एक नोट लड़के को देकर कहा कि बियर की दो बोतलें एक साथ ले आवे। जब लड़का लाने चला गया तो उसने बिना किसी उद्देश्य के योंही एक बार बाकी नोटों को गिना। जब उसने देखा कि दो के बदले दस-दस के चार नोट बाक़ी हैं, तो वह हर्ष और आश्चर्य से उचक पड़ा। उसने मन में सोचा—"नंदिनी ने निश्चय ही भूल से उसे तीन के बदले पाँच नोट दे दिये हैं—शायद नोट बरसात की सील के कारण एक-दूसरे से चिपके हुए होंगे। कल मैं निश्चय ही उसके पास जाकर फ़ौरन उसकी इस ग़लती की सूचना उसे दे दूँगा, और दो नोट उसे वापस कर दूँगा। पर नहीं, वापस करने की जल्दी ही क्या है ! उसे केवल सूचित कर दूँगा और कह दूँगा कि वे पाँच नोट मैंने क़र्ज़ के रूप में ले लिए हैं। अच्छा, यह कैसा रहेगा कि मैं उसे इस बात की सूचना ही न दूँ ! उसकी भूल को सुधारने की क्या ग़रज मुझे पड़ी है ! उसकी तिजोरी में उस 'मक्खीचूस' द्वारा संचित बहुत-से नोट पड़े हुए हैं। यदि मेरे समान आर्थिक कष्ट से पीड़ित व्यक्ति को इन लोगों की भूल से कुछ लाभ हो गया, तो क्यों उस लाभ को नुक़सान में परिणत करने की मूर्खता की जाय ! पर ठहरो ! जब नंदिनी ने जानबूझकर तीस के बदले पचास रुपये मुझे दिए हों ! ठीक है, यही बात है ! वह बड़ी चंट है और अपने मक्खीचूस पति की तरह ही घुटी हुई है। वह कभी नोटों को गिनने में भूल नहीं कर सकती। तब उसने जानबूझकर यह जो भूल की, उसका कारण क्या हो सकता है ! समझा ! वह मेरी ईमानदारी की परीक्षा लेना चाहती है ! उसने मुझे उठाईगीरा ही समझ लिया है। बेहया कहीं की ! जैसे उससे स्वभाव का लफंगापन मुझसे छिपा हो ! आज जिस बेहयाई का

परिचय उसने दिया वह एक वेश्या की हरकतों को भी मात करती थी। जहन्नम में जाय ! मुझे क्या करना है उसकी वेश्याई या सुघराई से ! मैं कल ही कहीं से क़र्ज़ लेकर उसके सब रुपये वापस कर दूँगा।"

इस तरह की कल्पना से उसका प्रसन्न मनोभाव खीझ, ग्लानि और हिंसा में परिणत हो गया। थोड़ी देर बाद लड़का बियर की दो बोतलें और बाक़ी रुपये लेकर आया। उसके बाद नीचे जाकर जब वह गिलास, बरफ़ और चाभी लेकर आया, तो पारसनाथ ने बड़ी उतावली से एक बोतल खोलकर गिलास में बियर ढाली और बरफ़ मिलाकर गटागट पीने लगा। एक साँस में पूरा गिलास ख़तम करने के बाद उसने शेष बियर भी गिलास में ढाली; और तब एक सिगरेट जलाकर आराम से पीने लगा। पर ग्लानि और खीझ का मिश्रित भाव उसके मन पर से हट नहीं रहा था। इसलिये दूसरे गिलास को उसने जल्दी समाप्त कर डाला। इसके बाद दूसरी बोतल खोलकर फिर गिलास भरा, और उसे भी जल्दी-जल्दी गटककर पीने लगा। जब तीसरा गिलास समाप्त हुआ, तो थोड़ी-सी स्थिरता उसके मन में आने लगी। चौथी बार गिलास भरकर उसने लड़के को पुकारा, और उसे यह आर्डर दिया कि गिलास के सिवा बाक़ी सब चीज़ों को उठाकर ले जावे, और उसके बाद मंजरी को बुला लावे। उसके चले जाने पर पारसनाथ चौथे गिलास में से कुछ रुक-रुककर पीने लगा। फिर भी लड़के के वापस आने के पहले ही उसने चौथा गिलास भी समाप्त कर दिया। अब उसका मन कुछ तरंगित होने लगा था, और एक अलस विषाद का पुलक-प्रद वातावरण सिगरेट के धुँए की तरह ही उसके चारों ओर छाने लगा था। शंकित, कंपित और हर्ष-पुलकित हृदय से वह मंजरी की पगध्वनि की प्रतीक्षा कर रहा था।

सहसा वह नव-परिचित पग-ध्वनि, जो एक ही बार में उसे

चिर-परिचित-सी जान पड़ने लगी थी, अत्यंत मंद, मधुर और धीर गति से उसके उत्सुक कर्ण-कुहरों में आकर उन्मादक ताल से बजने लगी। पारसनाथ का हृदय—जिसे वह दो दिन पहले तक ढीठ, निडर और किसी भी स्त्री की उपस्थित में किसी भी कारण से विचलित न होने वाला समझता था—उस पगध्वनि के ताल के साथ ही धक-धक धड़कने लगा। वह अपने को सँभालने की कोशिश कर ही रहा था कि वही रहस्यमयी छाया-मूर्ति दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गई जो दो दिन के परिचय के बाद भी एकदम अपरिचित-सी लगती थी। उसे देखते ही एक वर्णनातीत रोमाञ्च की अपूर्व अनुभूति बिजली के हलके-से धक्के की सुरसुरी की तरह उसके सिर से लेकर रीढ़ के अन्तिम सिरे तक दौड़ गई। वह हड़बड़ाता हुआ तत्काल उठ खड़ा हुआ, और एक व्याकुल मुसकान के साथ हाथ जोड़कर उसने लड़की का अभिवादन किया। लड़की के मुख पर आज न किसी प्रकार के संकोच की जड़ता का कोई चिह्न वर्तमान था, न किसी तरह की वेदना की म्लान छाया। उस पर केवल झलक रहा था तीक्ष्ण बुद्धि का संयत विलास और सहज कुतूहल की भेद-भरी मार्मिकता। आज जैसे वह अपने रहस्यमय व्यक्तित्व के अनन्त पटों में से एक पट उघाड़ कर आई थी, और केवल उस एक पट के उघड़ने से ही पारसनाथ को ऐसा अनुभव होने लगा था जैसे उसकी काया-पलट हो गई हो। आज उसकी गति में आत्म-विश्वास का भाव भी आश्चर्यजनक रूप से वर्तमान दिखाई देता था। पारसनाथ के "आइए, विराजिए," कहने के पहले ही वह निश्चित पगों से आगे बढ़कर सामनेवाली कुर्सी पर जाकर आराम से बैठ गई।

उसे बैठते देखकर पारसनाथ भी बैठ गया। पारसनाथ की आँखें पुलक-गद्गद, सजल मुसकान से चमक रही थीं। अकस्मात् बिजली की-सी झलक से उसके आगे यह सत्य उद्घाटित हुआ कि आज दिन

में नन्दिनी के यहाँ, लालसा-जनित ज्वर के चरम क्षण में—ऐन मौके पर—जो रहस्यमयी, वज्र-रेखा उन दोनों के बीच आ खड़ी हुई थी, वह वास्तव में वही छायामूर्ति थी जो इस समय उसके सामने बैठी हुई है। उसने अत्यंत कोमल और सहृदयतापूर्ण स्वर में कहा—'क्षमा कीजिएगा, मंजरी देवी, मैंने आज फिर आपको कष्ट दिया। कल मुझे ऐसा लगा था कि आपकी तबीअत अच्छी नहीं है, इसलिये आज आपकी तबीयत का हाल जानने की इच्छा को मैं दबा न पाया। (यह कहते हुए उसने मन-ही-मन कहा—'झूठ बोलने की कला में मैं दिन पर दिन निपुण होता जा रहा हूँ—यह वास्तव में बड़ी तारीफ़ की बात है।') आज तो आपका जी अच्छा है न?"

मंजरी निस्संकोच भाव से, पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी—कौतूहल-मिश्रित सहज गंभीरता के साथ। पारसनाथ के प्रश्न के उत्तर में बड़ी शालीनता के साथ गर्दन घुमाती हुई, अपनी तर्जनी के नाखून से मेज़ पर कुछ अर्थहीन सांकेतिक चिन्ह अंकित करती हुई बोली—"जी—हाँ, आपकी दया से मेरी तबीअत बिलकुल ठीक है।"

पारसनाथ का पुलक-गद्गद् भाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता था। उसने कहा—"यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई! अच्छा; मञ्जरी देवी, मैं आपसे निवेदन के रूप में एक बात पूछना चाहूँ तो आप बुरा तो न मानेंगी? विश्वास रखिए, मैं बनने या बनाने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि सच्चे हृदय से एक प्रश्न आपसे करना चाहता हूँ।"

लिखना छोड़कर, मेज़ पर दाहिने हाथ का कुहना टेककर भरपूर दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखते हुए मञ्जरी ने मन्द-मधुर किंतु धीर-गंभीर स्वर में कहा—"कहिए, आप क्या पूछना चाहते हैं?"

"मैं यह पूछना चाहता था कि—कि मैंने आपको किसी भी 'समय

एक क्षण के लिये मुस्कराते नहीं देखा, क्या—क्या आपने स्वभाव की इस अस्वाभाविकता पर आपने कभी विचार किया है ? माफ़ कीजिएगा, मेरी बात का कुछ दूसरा अर्थ न लगाइएगा। मैं एक सीधी-सी बात सीधे ढंग से पूछना चाहता हूँ।" यह कह चुकने के बाद उसने मन-ही-मन सोचा—"कहीं कल की तरह वह आज भी रो न पड़े।"

पर मंजरी ने एक बार मर्मच्छेदी दृष्टि, से उसकी ओर देखकर सहज भाव से अत्यंत धीर और संयत स्वर में कहा—"आप ऐसा क्यों समझते हैं कि न मुस्कराना 'स्वभाव की अस्वाभाविकता' है।" पारसनाथ ने पुलकित आश्चर्य से देखा कि ऐसा कहते हुए मुसकान की बहुत ही क्षीण—प्रायः अव्यक्त—झलक मंजरी की आँखों में और ओठों के इर्द-गिर्द खिलने लगी। जैसे घोर अमावस्या की निशा के शेष प्रहर की अंतिम घड़ी में पूर्व क्षितिज की रेखा में प्रकाश का पूर्व आभास व्यक्त-सा होने लगा हो।

उसे देखकर पारसनाथ के हृदय के अणु-अणु में एक मंद-मधुर गुदगुदी-सी उठने लगी। पुलकित पलकों के भीतर विकल हर्ष छलकाते हुए वह बोला—"निश्चय ही न मुस्कराना एक अस्वाभाविक अवस्था है, मंजरी देवी ! जरा सोचिए तो सही, जीवन में प्रतिपल, प्रतिक्षण, दुःख, शोक, चिंता, ग्लानि और भय की भावनाओं से जिस व्यक्ति की आत्मा दबी हुई हो, अनंत जीवन के केन्द्र में प्रवाहित होनेवाले आनन्द के मुक्त निर्झर से छहरती हुई कुछ बूँदें भी जिसके मन का अभिषेक न कर पाती हों, वह व्यक्ति कितना अभागा, और कितना अभिशप्त है। मैं मानता हूँ कि कठोर से कठोर, अँधेरी से अँधेरी और कड़वी से कड़वी परिस्थितियाँ मनुष्य के जीवन को चारों ओर से घेर सकती हैं, पर झरना घनी अँधेरी गुहाओं के भीतर से होकर बहने को

बाध्य होने पर भी सहस्रों बाधाओं को तोड़-फोड़कर मुक्त प्रकाश की ओर अपना रास्ता निकाल ही लेता है। उसी प्रकार हम लोगों को, जो कि घोर-अन्धकारमय सामाजिक स्तरों के नीचे—सैकड़ों कुलबुलाते हुए बिच्छुओं और साँपों, और लपलपाते हुए नरक के कीड़ों के बिलों के भीतर—जीवन बिताने को विवश किये गए हैं, क्या यह उचित नहीं है कि उन अंध गह्वरों को भेदकर कम से कम इतना पथ निकाल लें कि सूर्य की दो-चार किरणें उनके भीतर प्रवेश कर सकें।"

यह कहते हुए पारसनाथ को ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे उसकी कलामयी प्रतिभा, जो वर्षों से भयंकर पाषाण-खंडों के चाप से दबी पड़ी थी, आज अँधेरी गुहा से बाहर फूट निकलनेवाले झरने की ही तरह अकस्मात् किसी प्रबल शक्ति की प्रेरणा से उच्छ्वसित आवेग से फूट पड़ी है। मंजरी विस्मय-विह्वल दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी। स्पष्ट था पारसनाथ के भीतर कलामय स्तर के आकस्मिक विस्फोट का बड़ा गहरा प्रभाव उस पर पड़ा था। कुछ क्षण तक स्तब्ध रहने के बाद मुक्त मुसकान की दीप्त छाया से मंजरी का सारा मुख उज्ज्वल हो आया—जैसे वैदिक ऋषि के मंत्रावाहन से अंधकार का पर्दा फाड़कर ऊषा पूर्ण रूप में प्रकट हुई हो। उस स्निग्ध, उज्ज्वल मुसकान की छटा को छहराती हुई वह बोली—"आप तो कवि मालूम होते हैं!"

पारसनाथ के मुख पर धीरे-धीरे एक सहज-सहृदय गम्भीरता की सकरुण छाया घनीभूत होती जाती थी। उसने शांत और संयत स्वर में कहा—"था एक जमाना जब मैं कवि भी था और चित्रकार भी। तब एक निश्चित ध्येय भी मेरे आगे था और जीवन का अर्थ भी मुझे बहुत-कुछ स्पष्ट-सा लगता था। पर वह बात सुदूर भूतकाल की हो गई है: अब वह मुझे पूर्वजन्म की-सी लगती है, बल्कि अनेक जन्म पहले की......" उसी रहस्यवादी शैली में बहुत देर तक बोलते रहने की

आकांक्षा पारसनाथ को आकुल करने लगी थी, पर मंजरी का कौतूहली मन वास्तविक तथ्यों को जानने के लिये अधीर हो रहा था।

"पूर्वजन्म की बात जाने दीजिए, इस जन्म में आप क्या करते हैं, यह बताइए।"

"इस जन्म में झख मारता हूँ, मंजरी देवी! चार-चार पाँच-पाँच रुपयों पर अपनी आत्मा के बिखरे हुए टुकड़ों को बेचता फिरता हूँ—इतने पर भी सब समय ख़रीदार नहीं मिलते।"

पारसनाथ की करुण स्वीकारोक्ति से अत्यन्त व्यथित होने पर भी स्पष्ट बात जानने का कौतूहल मंजरी दमन नहीं कर पाती थी। उसने कहा—"क्षमा कीजिएगा, मैं रूपक की भाषा नहीं समझ पाती। आख़िर क्या चीज़ आप बेचते हैं? कविताएँ?"

"नहीं मंजरी देवी, कविताएँ तो कौड़ी को तीन-तीन के भाव भी कोई नहीं ख़रीदता। मैं बाज़ारू चित्र बनाकर बेचता हूँ।"

"ओह, यह बात है। तो आप चित्रकार हैं? यह तो बड़ी अच्छी बात है। यह तो बड़ी इज़्ज़त का पेशा है।" यह कहते हुए उसके मुँह से एक अव्यक्त आह-सी निकल पड़ी, जैसे तुलना में अपने पेशे की हीनता गाढ़े काले रंगों से उसके आगे उभर आई हो।

कुछ क्षण तक दोनों चुप रहे। उसके बाद मंजरी ने पूछा—"आपका घर कहाँ है?"

"विश्व का कोई भी कोना ऐसा नहीं है जिसे मैं अपना घर कह सकूँ।"

"आपका जन्म कहाँ हुआ?"

"आज़मगढ़ ज़िले के एक गाँव में।"

"तब क्या वहाँ आपका घर नहीं है?"

"अवश्य था, पर अब नहीं है।"

मंजरी ने समझा की शायद किसी आर्थिक संकट के कारण पारसनाथ का घर-बर बिक-बिका गया है, इसलिये इस अप्रिय चर्चा को आगे बढ़ाना उसने उचित नहीं समझा। पर कुछ और बातें जानने के लिये वह उत्सुक थी। उसने पूछा—"आपके बाल-बच्चे क्या यहीं आपके साथ हैं?"

इस बार पारसनाथ के मुख का सकरुण भाव व्यंग की-सी मुसकान में परिणत हो गया। बोला—"मेरे न कोई बाल है न बच्चा। मैं अभी अविवाहित हूँ।"

"ओह, समझी! पर आपके माता-पिता तो अवश्य ही आपके साथ होंगे?"

"जी नहीं, मैं यहाँ अकेला हूँ, और बहुत संभव है आजीवन अकेला ही रहूँगा।"

मंजरी के मन में आया कि पूछे—"इतना वैराग्य क्यों?" पर उसने कुछ नहीं पूछा। कुछ देर वह प्रश्न-भरी दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखती रही। इसके बाद सहसा उसने पूछा—"समय क्या हो गया, क्या आप बता सकते हैं?"

"मेरे पास घड़ी तो नहीं है, पर मेरा अंदाज़ है कि साढ़े आठ बजते होंगे। क्यों, आपको कुछ जल्दी है क्या?"

"जी हाँ, मैं तो बातों में भूल ही गई थी। माँ की तबीअत ख़राब है। उसके लिये मुझे जल्दी ही एक दवा ले जानी है। अच्छा, इस समय आज्ञा दीजिए!" यह कहकर वह हाथ जोड़ती हुई उठ खड़ी हुई। उसके चेहरे पर चिंता की रेखाएँ स्पष्ट खिंच गई थीं।

पारसनाथ भी खड़ा हो गया, और पिछले दिन की तरह आज

भी उसने जेब से दस रुपये का एक नोट निकाला और उसे मंजरी की ओर बढ़ाता हुआ संकोचपूर्वक मुस्कराने लगा। संकोच के अतिरिक्त उसकी मुस्कान में बड़ी कोमलता और सहृदयता भी वर्तमान थी। आज मंजरी को रुपया देते हुए उसे अकारण ही संकोच हो रहा था; उसे ऐसा लगता था जैसे रुपया देने में मंजरी अपने को अपमानित अनुभव करने लगेगी। वह उस समय के लिये यह बात एकदम भूल गया कि वह दो बार उसके हाथ से रुपया ले चुकी है! उसने यह नहीं सोचा कि जो लड़की स्पष्ट ही अपनी निपट ग़रीबी से तंग आकर होटल में अजनबी पुरुषों को रिझाने का पेशा स्वीकार कर चुकी है, वह आज क्यों रुपया लेने से इनकार करेगी और अपने को अपमानित समझेगी? आज उससे बातें करते हुए वह ऐसा मोहाच्छन्न और तन्मय हो गया था कि इस बात की सुध ही उसे न रही कि वह किसी याचक, सहायप्रार्थी और ग़रज़मंद लड़की से बोल रहा है। उसके मन में उस समय के लिये यह भ्रम जम गया था कि वह एक संपन्न और कुलीन घर की सुसंस्कृता लड़की से बातें कर रहा है। इसलिये मंजरी जब जाने लगी तो वास्तविकता की ओर ध्यान लौट आने पर भी पूर्वोक्त क्षणिक भ्रम का संस्कार अभी तक उसके मन में बना हुआ था। यही कारण था कि नोट देने के लिये हाथ फैलाते हुए उसका मन आज कुछ सिकुड़-सा रहा था। और तारीफ़ की बात यह रही कि वास्तव में आज मंजरी का मुख उस नोट को देखकर अदमनीय लज्जा से लाल और साथ ही असीम वेदना से अत्यंत म्लान हो आया। पर यह सब होने पर भी यह बात पारसनाथ से छिपी न रही कि उसकी लुब्ध आँखें उस नोट पर एकटक गड़ी हुई थीं—जिस प्रकार दिनों से भोजन न पाये हुए भिखारी की आँखें रोटी के टुकड़े पर से हटना नहीं चाहतीं। फिर भी उसने पारसनाथ की ओर देखने का साहस न करते हुए मरी हुई आवाज़ में कहा—"आज

रहने दीजिए ; कल ही तो आपने दिया है !" उस मरी हुई आवाज़ से पारसनाथ के आगे यह बात स्पष्ट हो गई कि न चाहते हुए भी उन रुपयों का कितना बड़ा प्रलोभन उसके लिए है ! और संभवतः उसकी आवश्यकता भी बड़ी भयंकर, बड़ी ही जीवन-शोषी है ! उसके पीड़ित हृदय में अदम्य करुणा की एक व्याकुल लहर तल से सतह तक उमड़ उठी। यह अनुभूति उसके लिये बिलकुल नयी-सी थी। उसका संकोच पल में जाता रहा और अत्यंत सहज भाव से उसने कहा—"नहीं, मंजरी देवी, यह कदापि नहीं हो सकता ! आपको मेरी यह तुच्छ सेवा स्वीकार करनी ही होगी !" यह कहते हुए उसने इस बार निर्भय होकर नोट आगे बढ़ाया। मंजरी ने उसकी ओर न देखकर जैसे मन मारकर वह नोट उसके हाथ से ले लिया, और फिर एक बार हाथ जोड़कर (उसकी ओर बिना देखे ही) वह बड़ी तेज़ी से बाहर निकल गई।

पारसनाथ कुछ देर तक भटका और भरमाया-सा अपने स्थान पर खड़ा रहा। उसके बाद धीरे-से फिर कुर्सी पर जाकर बैठ गया। लड़के को बुलाकर उसने खाना मँगाया। जब खाना आया तो उस समय के लिये सब कुछ भूलकर भूखे बाघ-सा वह उस पर तन्मयता से टूट पड़ा। खा-पीकर, बिल चुकाकर, लड़के को इनाम देकर वह भ्रमित मन से एक्के पर सवार होकर मकान की ओर चला गया।

बारहवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन वह चाहने पर भी नंदिनी के यहाँ इस बात की सूचना देने नहीं गया कि उसने तीस की जगह पचास रुपये उसे दे डाले हैं। दिन भर वह ऐसी क्लांत अवस्था में खटिया पर लेटा रहा जैसे जीवन-

व्यापी असफल परिश्रम से थका-माँदा हो। संध्या होते ही उसमें न जाने कहाँ से अपने-आप धीरे-धीरे एक अजीब संजीवनी स्फूर्ति-सी फिर आई। पासिन आकर चाय बना गई। चाय पीकर, स्नान करके, सज-सँवरकर वह तैयार हुआ। जेब टटोल कर देखा, अभी पैंतीस के क़रीब रुपये पड़े हुए थे। "चलो ठीक है—अभी से चिंता की कोई बात नहीं है!" यह सोचकर वह कुछ प्रसन्न होने की चेष्टा करने लगा।

ठीक साढ़े छः बजे वह होटल में पहुँच गया। उसी परिचित कमरे में बैठकर बियर मँगा कर पीने लगा। जब पी-पिला चुका, तो लड़के को उसने मंजरी को बुला लाने के लिये भेजा, और अत्यंत उत्सुक हृदय से अधीरता के साथ उसकी प्रतीक्षा करने लगा। प्रायः पंद्रह मिनट बाद लड़के ने आकर सूचना दी कि मंजरी नहीं आ सकती, क्योंकि उसकी माँ की तबीअत ख़राब है। पारसनाथ को ऐसी निराशा हुई जैसी इसके पहले कभी जीवन में नहीं हुई थी। उस हताश अवस्था में उसने एक बोतल बियर की मँगा कर पी, और कुछ खा-पीकर चलता बना।

दो दिन तक वह कहीं नहीं गया। घर ही पर बैठकर दो-तीन पुस्तकों के 'कवर-डिज़ाइन' बनाकर उसने तैयार कर डाले। इधर कुछ दिनों से वह आलस्य और जड़तावश कोई काम नहीं कर पाया था। पैसे की निपट तंगी की हालत में जब दो-चार दिन का ठिकाना उसने कर लिया तो उसे बड़ा संतोष हुआ।

तीसरे दिन वह शाम को फिर होटल गया। वहाँ पहुँचते ही उसने इस बात का पता लगवाया कि मंजरी की माँ की तबीअत अब कैसी है, और वह होटल में आ सकती है या नहीं। मालूम हुआ कि अभी तबीअत अच्छी नहीं हुई है, और लड़की नहीं आ सकती।

पारसनाथ बड़े चक्कर में पड़ गया। साथ ही यह सोचकर उसे

मन-ही-मन अपने ऊपर कुछ घृणा-सी हुई कि इस बात से दुःखित होने के बजाय कि मंजरी के माँ की तबीअत ख़राब है, वह केवल इस बात के लिये चिंतित है कि मंजरी रंग-रस की बातें करने के लिये उसके पास नहीं आ पा रही है। रंग-रस की बातें!! और नहीं तो क्या वह उस अनाथ लड़की के जीवन के वास्तविक सुख-दुःख का साझी बनने के लिये उत्सुक है? उसके समान उत्तरदायित्वहीन, पलायनशील प्राणी के लिये क्या यह संभव है? किसी हालत में भी नहीं!

पर मनुष्यता का भी तो कुछ तक़ाज़ा है। जब तक मंजरी की सांसारिक अवस्था के संबंध में वह अजान था तब तक उसका रुख़ चाहे कैसा ही क्यों न रहा हो, पर अब जब वह उसकी निपट अनाथ अवस्था से परिचित हो गया है तो क्या यह उचित है कि वह केवल उसकी माँ की तबीअत का हाल जानकर ही रह जाय और उसकी परेशानी में हाथ न बँटावे?

होटल के कमरे में बैठा बियर पीता हुआ वह इस तरह की बातें सोच रहा था। बीच-बीच में एक निपट उदासीनता की भावना उसे घर दबाती थी, पर फिर-फिर जैसे कोई उस उदासीनता के भीतर उँगली डालकर उसके मन को खरोंच देता था। ऐसे अवसरों पर उसके भीतर दुर्निवार रूप से यह प्रेरणा जग उठती कि मंजरी के घर जाकर उसकी वर्तमान परेशानी की हालत में उसकी सहायता करनी चाहिये। कई बार उसने अपने-आपको समझाया कि किसी एक पेशेवर लड़की के लिये इस क़दर समवेदनाशील होना निपट मूर्खता है; ऐसी लड़कियाँ बहुत मिल सकती हैं, और उसे भूलकर उसी छोकरे के ज़रिये से किसी नयी लड़की का पता लगाना चाहिये। संभवतः वह नयी लड़की मंजरी से भी अधिक आकर्षणशील निकल आवे। पर रह-रहकर कोई रहस्यमयी शक्ति उसके मन के भीतरी स्तर का किसी तेज़, तीखी और

नुकीली चीज़ से निरन्तर खोंचती जाती थी। रह रहकर उसके अन्तर्वासी के कानों में कोई फुसफुसा रहा था कि मंजरी के घर जाकर उससे मिलना परम आवश्यक है, और चूकने पर जीवन का एक चरम क्षण उसके हाथ से चला जावेगा।

खा-पी चुकने के बाद वह अत्यंत चिंतित और अस्थिर अवस्था में मकान को वापस चला गया। मकान में पहुँचकर बिस्तर पर लेटने के बाद भी वह बहुत देर तक एक ऐसी बेचैनी से छटपटाता रहा, जिसकी पूर्व-अनुभूति की कोई याद उसे नहीं आती थी।

दूसरे दिन वह कुछ जल्दी—प्रायः पाँच बजे के समय—होटल में पहुँचा, और उस लड़के से, जो मंजरी को बुलाने जाया करता था, कहा—"क्या तुम मुझे मंजरी का मकान दिखा सकते हो?"

लड़का कुछ सकपकाया। उसने कहा—"मकान तो दिखा सकता हूँ, पर—पर क्या आप उसके यहाँ जाना चाहते हैं? वहाँ आप कैसे जा सकेंगे? वह मुहल्ले के बीच में अपनी माँ के साथ रहती है।"

पारसनाथ ने कहा—"तुमसे मैं ये सब बातें जानना नहीं चाहता। तुम मुझे उसका मकान दिखा दो, बस! इसके लिए तुम्हें इनाम मिलेगा, घबराओ नहीं।"

लड़का राज़ी हो गया। पारसनाथ उसके साथ चला गया। होटल से कुछ ही दूर आगे जाकर दोनों दाहिनी ओर एक गली की तरफ़ मुड़े। गली काफ़ी लंबी दिखाई दी। प्रायः डेढ़ फर्लाङ्ग चलने के बाद फिर दाहिनी ओर को मुड़ना पड़ा। उस तंग गली में सबसे पहले मुसलमानों के दो-चार कच्चे घर दिखाई दिए। उसके बाद चार क़दम आगे चलकर बाँई ओर एक कुछ ऊँची उठी हुई जगह पर एक गाय बँधी थी। उसकी एक बछिया भी उसी के पास एक खूँटे पर बँधी थी। सारा स्थान सड़ी हुई घास, गोबर और गोमूत्र की गंध से पवित्र हो रहा था।

उसी स्थान से लगा हुआ एक कच्चा मकान था, और उसके बाद ही एक छोटा-सा, दुमंज़िला, पक्का मकान था। होटल का लड़का उसी मकान के पास आकर ठहर गया, और बोला—"इसी मकान में वह रहती है।"

दरवाज़ा बाहर से बन्द था। पारसनाथ ने संकेत में लड़के को यह आदेश दिया कि वह दरवाज़े पर धक्का दे और आवाज़ लगावे। पर लड़के ने नम्रतापूर्वक इनकार करते हुए कहा—"वह मुझसे नाराज़ हो जावेगी कि मैं एक आदमी को अपने साथ यहाँ ले आया। मुझे इजाज़त दीजिए, मैं जाता हूँ।" पारसनाथ ने उससे अधिक कुछ कहना बेकार समझकर चार आने पैसे उसे थमा दिए। लड़का चला गया। पारसनाथ ने हौले से दरवाज़े की ज़ंजीर को किवाड़ से बजाना शुरू कर दिया। कुछ ही देर बाद भीतर से आवाज़ आई—"कौन है!" वह चिर-परिचित-सा झंकृत कंठस्वर था। पारसनाथ के हृदय में कँप-कँपी-सी दौड़ गई। गला साफ़ करके, साहस बाँधकर उसने धीरे से कहा—"ज़रा खोलिए!"

दरवाजा खुला। मंजरी खड़ी थी। पारसनाथ को देखकर वह भौंचक्की-सी रह गई। अपनी विस्मित और विभ्रांत आँखों को फाड़-फाड़कर उसकी ओर केवल देखती रही। पारसनाथ ने संकोच से घबराए हुए स्वर में बहुत ही धीरे से कहा—"क्षमा कीजिएगा! मैं जानता हूँ कि यहाँ आकर मैंने बड़े दुस्साहस का काम किया है। पर जब मैंने सुना कि आपकी माताजी की तबीअत ख़राब है, और चार दिन के बाद भी सँभल नहीं पाई है, तो विश्वास मानिए, मैं विकल हो उठा और रह नहीं सका। मैं आपसे हार्दिक प्रार्थना करता हूँ, मंजरी देवी, कि मुझे भीतर अपनी माताजी के पास ले चलिए और उनके दर्शन करने दीजिए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आपकी माताजी की सेवा-टहल में विघ्न-कर्ता नहीं, बल्कि सहायक सिद्ध हूँगा।"

उसके शब्दों से और मुख के भाव से ऐसी सच्ची कातरता प्रकट होती थी कि मञ्जरी स्पष्ट ही प्रभावित होती हुई दिखाई दी। कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद वह पारसनाथ से भी धीमी आवाज़ में बोली —"मैं केवल एक शर्त पर आपको माँ के पास ले जा सकती हूँ। वह शर्त यह है कि मैं माँ को आपका परिचय देते हुए चाहे कैसी ही ग़लत बात क्यों न कहूँ, आप उसका खंडन न करें, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उसकी ताईद करते रहें।'

"मुझे यह शर्त मंजूर है।'

"तो चलिए।" यह कहकर मंजरी ने भीतर से दरवाज़ा बन्द कर दिया, और ज़ीने से होकर ऊपर जाते हुए उसने पारसनाथ को संकेत किया कि वह भी उसका अनुसरण करे। ज़ीना पार करके दोनों एक बरामदे पर चढ़ आए। उस बरामदे से लगा हुआ एक छोटा-सा कमरा था। उस कमरे के भीतर एक खटिया पर प्रायः अधेड़ अवस्था की एक स्त्री लेटी हुई थी। वह बहुत सुस्त दिखाई देती थी और उसके चौमड़ मुख पर पड़ी हुई झुर्रियों की संख्या गिनी नहीं जा सकती थी। उसकी दोनों आँखें खुली हुई थीं, जिनके पीले-से कोयों पर निस्तेज और प्रकाशहीन पुतलियाँ अत्यंत चंचलता के साथ द्रुत गति से डोल रही थीं। स्पष्ट ही वह अंधी थी। मंजरी ने पारसनाथ के साथ भीतर प्रवेश करते ही कहा—"अम्माँ, जिन्होंने कालेज में मेरे काम से खुश होकर मुझे बीस रुपये इनाम के बतौर दिए थे वह आए हैं—तुम्हारी तबीयत का हाल पूछना चाहते हैं।"

अधेड़ महिला की ज्योतिहीन आँखों में मधुर मुसकान खिल आई। उनका मुरझाया हुआ चेहरा परम उल्लास से जगमगा उठा। वह धीरे से उठ बैठी और हड़बड़ाए हुए स्वर में बोलीं—'आओ बेटा, बैठो। भगवान तुम्हें सुखी रखें। जब से बिटिया ने इनाम पाया तब से बराबर वह तुम्हारा ज़िक्र बात-बात में करती रहती है। कहती

है—तुम सोच नहीं सकतीं, अम्माँ, कि वह कितने बड़े और कैसे भले आदमी हैं। मैं कहती हूँ—तू अभागिन न जाने किस मनहूस साइत में जनमी थी, तेरे जन्म के समय से आज तक मुझ पर एक के बाद एक विपत्ति के पहाड़ टूटते गए हैं, नहीं तो मैंने भी अपने भले दिनों में सभी बुरे आदमी नहीं देखे हैं—भले भी काफ़ी देखे हैं। यह बात मैं खूब अच्छी तरह से सोच सकती हूँ कि जिस आदमी ने हमारी आज-कल की घोर विपत्ति के समय बिटिया को बीस रुपया इनाम दिया है वह कैसा भला और कितना बड़ा होगा। बेटा, तुम्हें ईश्वर ने हमारे लिये पठाया है। तुमने वक्त पर बिटिया को इनाम न दिया होता, तो मैं तो दवा और पथ्य के बिना मर ही गई होती, साथ ही बिटिया की भी जो दुर्गति हो गई होती उसे मैं ही जानती हूँ। हम लोग बड़े दुखी हैं, बेटा, भगवान दुश्मन की भी यह दुर्दशा न करें!" यह कहकर अधेड़ स्त्री अपनी अंधी आँखों से टपाटप आँसू गिराने लगी।

पारसनाथ भ्रांत दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। वह अपने को एक विचित्र, भौतिक और रहस्यमय वातावरण में पा रहा था, और भूला, भटका, भरमाया-सा खड़ा था। उसने एक बार मंजरी की ओर देखा। उसके मुख पर और आँखों में दारुण वेदना और निःसीम लज्जा-जड़ित कातर प्रार्थना के मिश्रित भाव की घनी छाया अंकित हो गई थी। मंजरी के मुख का वह भाव देखकर सहसा पारसनाथ के मन में न मालूम कहाँ से एक आश्चर्यजनक साहस और स्फूर्ति का संचार हो गया। उसने सहज भाव से आत्मविश्वासपूर्वक कहा—'अम्माँजी, मैं आपकी तबीअत का हाल जानने के लिये आया हूँ। मैंने सुना था कि आप बीमार पड़ी हैं। अब आपकी तबीअत कैसी है?'

'अब अच्छी है, बेटा, अच्छी है!'—अपना सिर हिलाते हुए और निर्जीव आँखों की निःसत्व पुतलियों को अनोखे ढंग से घुमाते हुए अधेड़ स्त्री ने कहा।

पारसनाथ बोला—"मुझे यह जान कर बड़ी खुशी हुई, अम्माँजी ! अब आप कोई चिंता न करें। अब दो दिन में आप बिलकुल चंगी हो जावेंगी। मैं अब से सब समय आपकी सेवा में उपस्थित रहूँगा।"

"तुम्हारी हज़ार वर्ष की आयु हो, बेटा ! भगवान तुम्हें सदा सुखी रखें। तनिक इधर आओ, मेरे पास इस खटिया पर आकर बैठ जाओ। मैं तुम्हारे सिर पर हाथ फेरकर अपना कलेजा ठंढा करूँ। आओ बेटो !"

पारसनाथ क्षणिक झिझक के बाद खटिया के पैताने पर जाकर बैठ गया। इस बीच मंजरी चुपके से बाहर खिसक गई थी। अधेड़ महिला धीरे से सरककर पारसनाथ के बहुत निकट चली आई और पारसनाथ के टोपी-रहित सिर पर धीरे से हाथ फेरती हुई बोली—"वह भी आज तुम्हारे ही बराबर हो गया होता, बेटा ! उसके भी बाल तुम्हारी ही तरह चिकने, मुलायम और घुँघराले थे। आठ वर्ष तक मैंने गोद में खेलाकर, पाल-पोसकर बड़ा किया, और एक दिन हँसता-खेलता चल बसा—इस अभागिन छोकरी के जन्म के तीन महीने बाद।!"

इतने में मंजरी ने एक टूटी हुई कुर्सी लाकर कमरे में रख दी। पारसनाथ कुछ देर तक खटिया पर ही बैठा रहा और अधेड़ महिला उसके सिर के बालों को सहलाती रही। बाद में वह बोला—"अब आप आराम से लेट जाइए, अम्माँजी, मैं कुर्सी पर जाकर बैठता हूँ।" यह कहकर उठ खड़ा हुआ और कुर्सी पर जाकर बैठ गया। मंजरी एक कोने पर दीवार के सहारे चुपचाप खड़ी थी। वह कभी अपनी अम्माँ की ओर देखती थी, कभी पारसनाथ की ओर। पारसनाथ ने देखा कि उसकी आँखों में कभी कोरा कौतूहल झलकता था, कभी एक अनोखे संदेह की-सी छाया घिर आती थी, और कभी एक करुण कृतज्ञता का-सा भाव छलक पड़ता था। कुछ देर बाद न मालूम क्या सोचकर पारसनाथ को अपनी माँ के साथ अकेले छोड़कर वह नीचे चली गई।

अधेड़ महिला दीवार से पीठ सटाकर खटिया पर बैठी हुई थी। पारसनाथ के बहुत कहने पर भी वह नहीं लेटी। कुछ समय तक दोनों मौन रहे। उस निर्जन कमरे की स्तब्धता के बीच में अधेड़ महिला की निष्प्राण आँखों की दो चंचल पुतलियाँ निरन्तर दोलित होकर पारसनाथ के मन में एक अज्ञात, भौतिक भय का-सा संचार कर रही थीं। उस भय के भूत को भगाने के उद्देश्य से वह मौन भंग करता हुआ बोला—"अम्माँजी, मुझे ऐसा लगता है कि आपका जीवन सदा इसी तरह की ग़रीबी में नहीं बीता। निश्चय ही आपने अच्छे दिन भी देखे हैं।"

"तुम्हारा सोचना बिलकुल ठीक है, बेटा। मैंने काफ़ी अच्छे दिन देखे हैं। बिटिया के पिताजी दिल्ली में कपड़ों का व्यापार करते थे। हज़ारों का लेन-देन रहता था। पर भगवान का कुछ ऐसा कोप उन पर सवार हुआ कि वह सट्टेबाज़ी के चक्कर में पड़ गए। उसमें उन्होंने दो-तीन लाख रुपया कमाया भी। पर बाद में ऐसा उलटा पाँसा पड़ा कि कमाया हुआ सारा धन गँवाकर, व्यापार चौपट करके उन्होंने बुज़ुर्गों की जोड़ी हुई ज़मीन-जायदाद भी बेच दी। उसे भी सट्टे के अर्पण करके दिवालिया बनकर इस शहर में चले आए। सब-कुछ ख़तम कर डाला, पर मेरे एक भी गहने पर उन्होंने हाथ नहीं लगाया—मेरे कहने पर भी नहीं। यहाँ आकर वह परचून की एक छोटी-सी दुकान खोलकर किसी तरह गुज़ारा करने का इरादा रखते थे। पर यहाँ आने के तीन ही महीने बाद एक दिन रात के वक़्त अचानक उनके दिल की धड़कन बन्द हो गई, और मेरे ऊपर जो गाज गिरी उसका अन्दाज़ तुम लगा सकते हो, बेटा।" यह कहते हुए फिर एक बार उनकी आँखों से झड़ी लग गई।

पारसनाथ चुप था। सांत्वना का एक भी शब्द उसके मुँह से निकल

नहीं पाता था। अधेड़ महिला कहती चली गई—"विधाता ने मेरी गोद से एक हँसते-खेलते बच्चे को छीन लिया, तिसपर भी उसे तसल्ली नहीं हुई, और मेरा सुहाग भी घोर दुर्गति के बाद लूट लिया। इस बिटिया से बड़ी मेरी एक और लड़की थी, दो साल बाद वह भी मर गई! यहीं पर बातें ख़तम नहीं हुईं। कुछ समय बाद मेरी सबसे बड़ी लड़की विधवा हो गई। यहाँ पर विधाता ने इतनी लाज रखी कि विधवा होने के एक वर्ष बाद वह खुद भी मर गई। मंजरी सबसे छोटी लड़की है। अपने पिता के मरने के चार महीने बाद इसका जन्म हुआ। उस समय मेरी उम्र क़रीब तीस बरस की रही होगी। बिटिया इस समय बीस वर्ष की है। ये बीस वर्ष जिस तरह की यम-यातना सहते हुए मैंने बिताए हैं, बेटा, उसे मैं ही जानती हूँ। क़रीब पाँच हज़ार के गहने मेरे पास थे। उन्हें बेच-बेचकर मैं इतने दिनों तक अधपेट खाना खाकर इसे पाला है, स्कूल भी पढ़ाया है। पर इधर छः महीने से मैं बिलकुल लाचार हो गई हूँ, बेटा। विधाता ने मेरी आँखों की जोत भी छीन ली। दोनों आँखों में मोतिया-बिन्द पड़ गए थे। एक अधकचरे डाक्टर से आपरेशन करवाया। मुझ पर दया करके दो सौ के क़रीब फ़ीस उसने माँगी। रुपये का रुपया गया, और दोनों आँखें भी जाती रहीं। इतने पर भी मेरे पापों का भोग पूरा नहीं हुआ। जो कुछ गहना बचा रह गया था वह सब एक दिन चोरी हो गया, अब काल के दिन पूरा करने के लिये जीती हूँ। मर नहीं पाती। छः महीने से बिटिया मुझे पाल रही है। कालेज की फ़ीस भी देती है, मकान का किराया भी चुकाती है मुझे भी खिलाती-पिलाती है। कैसे सब कर रही है मैं नहीं जानती, बेटा। कहती है कि कालेज से वजीफ़ा मिलता है, और एक घंटा किसी के यहाँ पढ़ाने जाती है। पर इस तरह कब तक चलेगा, बेटा! अगर मैं अंधी न हो गई होती, तो निश्चय ही एक दिन मकान में आग लगाकर बिटिया को साथ लेकर जल मरती। पर विधाता को

वह भी मंजूर नहीं है, और मैं लाचार, एकदम लाचार हो गई हूँ।" यह कहकर वह फूट-फूट कर रोने लगीं।

सन्ध्या का प्रायांधकार कमरे में छाने लगा था। अधेड़ महिला की दिल दहलनेवाली रामकहानी सुनते हुए पारसनाथ को ऐसा मालूम हो रहा था जैसे उस कमरे को चारों ओर से भयंकर आकृतिवाले भूत-प्रेत और पिशाच-दानवों ने घेर लिया है, और वे सब किसी कारण से बोखलाए हुए 'हा हा! हू हू!' के भैरव हुंकार और फुफकार-भरे शब्दों में गरजते हुए उन्मत्त नृत्य कर रहे हैं। भय की उस चरम अनुभूति ने कुछ समय के लिये उसे प्रायः चेतनाशून्य बना दिया; पर जब उसने मञ्जरी की माँ को फूट-फूटकर रोते देखा तो प्रचंड चेष्टा से अपनी सब दबी हुई शक्तियों को बटोरने में उसने सफलता पा ली। अत्यन्त धीर, गंभीर और आश्वासन-भरी वाणी में वह बोला—"अम्माँजी, जो बात बीत गई उसके लिये आपको दिलासा देने में मैं अपने को बिलकुल असमर्थ पाता हूँ। पर इस समय से आप लोगों की सेवा का पूरा भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ, और आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आजीवन अपनी इस बात से कभी मुँह नहीं मोड़ूँगा। मैं स्वयं एक बहुत ग़रीब आदमी हूँ अम्माँजी, और मेरे दुःख की कहानी बहुत लम्बी न होने पर भी भयंकरता में कुछ कम नहीं है। फिर भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार मैं आज से बराबर आप लोगों की सेवा में तत्पर रहूँगा, आपके आगे इस बात की प्रतिज्ञा करता हूँ।" उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि वह नया भार स्वीकार करते हुए उसके हृदय में युगों से संचित एक मनों भारी बोझ हलका हो गया। यह बात उसके आगे अस्पष्ट नहीं हो रही थी कि वह पुराना बोझ क्या था और कैसा था; पर इतना निश्चित रूप से अनुभव कर रहा था कि उसका स्वरूप चाहे कैसा ही क्यों न रहा हो, वह दीर्घकाल से एक भीषण चट्टान के भार की तरह उसकी छाती पर पड़ा हुआ था, और

उसके अनजान में उसकी आत्मा के श्वास-छिद्रों को बंद करके प्रतिपल उसका दम घोटने की चेष्टा में रत था। पर नया भार—जो उस पुराने भार की तुलना में फूल की तरह हलका लग रहा था—स्वीकार करते ही उसकी छाती पर पड़ा हुआ वह वज्र-पाषाण न जाने किस मायावी स्पर्श से काफ़ूर हो गया! किसी कर्तव्य को स्वीकार करने का सुख इतना बड़ा होता है, यह बात उसे आज मालूम हुई।

अधेड़ महिला ने उसकी बात सुनकर आँसुओं को रोकने की चेष्टा करते हुए गले में अटकी हुई आवाज़ में कहा—"बेटा, मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि भगवान ने तुम्हें भेजा है। मैं और क्या कहूँ—मेरे लिये तुम साक्षात् ईश्वर के रूप में आए हो!"

सहसा कनखियों से दरवाजे पर किसी की छाया देखकर पारसनाथ ने पीछे की ओर मुँह करके देखा। मंजरी एक हाथ में चाय का प्याला और दूसरे हाथ में दूध का गिलास लिये खड़ी थी। असल में मंजरी को आए कुछ देर हो चुकी थी। पारसनाथ को भाव-विह्वल स्वर में अम्माँ को दिलासा देते सुनकर वह आड़ में खड़ी हो गई थी।

भीतर आते ही उसने पारसनाथ की ओर प्याला बढ़ाते हुए कहा—"लीजिये, चाय पीजिए! चाय तो आप पीते ही होंगे?" उसकी तिरछी दृष्टि में संकोच से दबी हुई, अव्यक्त रहस्यमयी मुसकान खेल रही थी। चाय का प्याला लेकर पारसनाथ धीरे-धीरे पीने लगा। दूध का गिलास मंजरी ने अपनी माँ के हाथ में दे दिया। पारसनाथ चाय पीता हुआ परम कौतूहल-भरी दृष्टि से बड़े ग़ौर से मंजरी की ओर देख रहा था। वह जान गया था कि मंजरी ने उसकी 'प्रतिज्ञा' वाली बात सुन ली है। उस बात का क्या असर उस पर पड़ा, यह जानने के लिये वह बेहद उत्सुक हो उठा था। मंजरी की आँखों की दबी हुई मुसकान उसे ठीक बात का पता नहीं दे रही थी। फिर भी

कृतज्ञता के-से एक अस्पष्ट भाव का छायाभास उसके मुख पर अस्फुट रूप से व्यक्त हो रहा था। वह दीवार के सहारे खड़ी होकर ससंकोच पारसनाथ की ओर देख रही थी, और बीच-बीच में पारसनाथ की तद्गत दृष्टि से सहमकर अपनी माँ की ओर देखने लगती। सहसा पारसनाथ ने कहा—"आप क्या चाय नहीं पीएँगी ? अपना प्याला भी यहीं ले आइए !"

मंजरी ने बड़ी धीमी आवाज़ में कहा—"जी नहीं, मैं अभी नहीं पीऊँगी।" यह कहती हुई वह नीचे की ओर देखकर अपने दाहिने पाँव के अँगूठे से फ़र्श की मिट्टी खुरचने लगी।

चाय पीकर पारसनाथ उठ खड़ा हुआ। अधेड़ महिला की ओर देखकर वह बोला—'अम्माँजी इस समय आज्ञा दीजिए। कल मैं फिर आऊँगा। अब से मैं रोज़ आता रहूँगा।' यह कहकर वह मंजरी की ओर हाथ जोड़कर जाने लगा। उसे जाते देखकर मंजरी सँभल कर खड़ी हो गई, और संकोच का भाव त्यागकर अत्यंत स्निग्ध और सहज मुसकान के साथ बोली—"खाना खाके जाइए।"

मंजरी का अनुरोध पारसनाथ को एकदम अप्रत्याशित लगा। एक बिलकुल नयी और सुखद अनुभूति से पुलकित होकर उसने कहा—"क्षमा कीजिएगा, इस समय मुझे एक ज़रूरी काम से जल्दी जाना है, नहीं तो मैं अवश्य खाकर ही जाता। कल फिर आऊँगा, अभी आज्ञा दीजिए !" यह कहकर उसने मंजरी की ओर हाथ जोड़े और फिर चला गया।

तेरहवाँ परिच्छेद

तब से पारसनाथ ने नियमित रूप से मंजरी के यहाँ जाने का क्रम बना लिया। अक्सर सन्ध्या के समय वह वहीं खाता। कभी मञ्जरी की माँ के पास बैठकर बातें करता—उन्हें लामा-पुराण के दिलचस्प क़िस्से सुनाता, अख़बार की ख़बरों से परिचित कराता, वेद-वेदांत के गहन विषयों की सरल व्याख्या करता—और कभी मञ्जरी को छोटे-मोटे कामों में सहायता देने के बहाने नीचे चला जाता। प्रारम्भ में तो मञ्जरी उसे अनभ्यस्त ढङ्ग से काम में हाथ बटाते देखकर अत्यन्त संकुचित हो उठती थी, और वास्तव में उसकी 'सहायता' से मञ्जरी के काम में विघ्न ही अधिक पहुँचता था। पर धीरे-धीरे वह आदी हो गई, और पारसनाथ की एकांतिक निकटता उसके जीवन का एक आवश्यक—बल्कि अनिवार्य—अङ्ग-सी बनने लगी। पारसनाथ भी ज्यों-ज्यों मञ्जरी के अधिक निकट आता जाता था, त्यों-त्यों वह अपने भीतर एक आश्चर्यजनक स्थिरता, एक अविश्वसनीय मानसिक स्वास्थ्य की अनुभूति के साथ ही एक ऐसी निराली मीठी वेदना की गुदगुदी का अनुभव करता जाता था जो एकदम अपूर्व थी। वह एक ऐसी लड़की के हृदय का विश्वास पा गया था जो आज तक संसार के सब प्राणियों को अत्यंत संदेह की दृष्टि से देखती थी, और सबसे घबराई और डरी हुई-सी रहती थी। पारसनाथ का मन जान गया था कि ऐसी लड़की का विश्वास पा जाना किसी हालत में भी साधारण बात नहीं है।

अपना सहज आलस्य पारसनाथ ने छोड़ दिया था, और वह समय-असमय तरह-तरह के व्यावसायिक और कलात्मक चित्रों को अंकित करने के काम में जुटा रहता। उन चित्रों को लेकर वह

प्रकाशकों और 'कला-प्रेमी' व्यक्तियों के यहाँ भटकता रहता, और जो-कुछ भी मिल जाता उतने ही से संतोष करके, तीन प्राणियों के परिवार का खर्चा किसी तरह चलाता। वह अपने को मंजरी और उसकी माँ के परिवार का एक अविच्छिन्न अंग समझने लगा था। कुछ रुपयों का प्रबंध होते ही उसने एक महीने के लिए जिन्स खरीदकर मंजरी को सौंप दी। गेहूँ, चावल, दाल, घी, तेल, लकड़ी, कोयला, मिर्च मसाला, आदि सभी चीज़ें रखवा दीं। इसके अलावा जो-कुछ भी ऊपरी खर्च होता था उसका भी सब भार उसने अपने ऊपर ले लिया। स्वयं वह अपने पुराने मकान ही में रहता था। उसका मोह वह छोड़ नहीं पाता था, पर प्रति दिन संध्या को वह नियमित रूप से मंजरी के यहाँ जाता था, और कभी-कभी सुबह को और दोपहर को भी।

जिस दिन उसने नंदिनी से रुपये क़र्ज़ लिए थे तब से उसने उसके यहाँ जाना छोड़ दिया था। पर कुछ समय बाद जब वह कड़ी मेहनत के फल से सौ-डेढ़ सौ रुपये का प्रबंध कर सकने में समर्थ हुआ, तो एक दिन पचास रुपया लेकर वह नंदिनी के पास पहुँचा।

आज भी नंदिनी अकेली थी। भुजौरियाजी घर पर नहीं थे। नंदिनी ने जब पारसनाथ को देखा तो उसकी विस्मित आँखों में एक सकरुण वेदना-भरी मुसकान झलक उठी। आज वह बहुत सुस्त दिखाई देती थी। उसके स्वस्थ और सुन्दर मुख की जिस चमक-दमक से पारसनाथ परिचित था उसका लेश भी आज वर्तमान नहीं था। उसके उस मुरझाए हुए चेहरे पर उदासी की जो घनी छाया आज पारसनाथ ने देखी वह वास्तव में उसकी कल्पना के परे थी। उसे देखकर वह सहम-सा गया।

पारसनाथ ने जब नमस्कार किया तो नंदिनी ने भी उत्तर के रूप में चुपचाप हाथ जोड़ दिए। उसके बाद वह उसी विषाद-म्लान दृष्टि से

उसकी ओर देखती हुई अत्यंत धीर और मंद स्वर में बोली—"आप इस कदर नाराज़ हो सकते हैं, यह मैं इसके पहले स्वप्न में भी नहीं सोच सकती थी। बैठिए, खड़े क्यों हैं!" यह कहती हुई वह स्वयं एक कुर्सी पर बैठ गई। पारसनाथ यह सोचकर आया था कि वह नंदिनी के रुपये वापस करके खड़े-खड़े दो-एक शिष्टाचार की बातें करके वापस चला जावेगा। पर उसके मुख का कल्पनातीत करुण और उदास भाव और बात करने का कुछ अनोखा-सा ढंग देखकर वह बैठने को बाध्य हुआ।

एक कुर्सी पकड़कर जब वह बैठ गया तो सलज्ज मुसकान के साथ बोला—"क्षमा कीजिएगा, नंदिनी देवी, उसके बाद इतने दिनों तक मैं फिर आ नहीं सका। बात असल में यह हुई कि एक तो मैं इधर काम में इतना अधिक व्यस्त रहा कि कहीं जाने-आने का अवकाश ही नहीं मिला, दूसरे मेरे पास—मैं इतने दिनों तक रुपयों का प्रबंध नहीं कर पाया। आपने जो पचास रुपया क़र्ज़ देकर आवश्यकता के समय मेरी सहायता की थी, उसे इतने दिनों तक न चुका सकने के कारण मैं मारे संकोच के आपके पास आने का साहस ही नहीं कर सका। मैं फिर एक बार आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ।" यह कहकर उसने जेब से पचास रुपये के पाँच नोट निकालकर सकुचाते हुए उन्हें नंदिनी की ओर बढ़ाया और फिर कहा—"यह लीजिए!"

नंदिनी के मुख पर व्यंग, क्रोध और ग्लानि के भाव एक साथ परिस्फुट हो उठे। उसने आधी दृष्टि से एक बार उन रुपयों की ओर देखा, पर उन्हें लेने के लिये हाथ नहीं बढ़ाया। और फिर अत्यंत म्लान मुसकान के साथ पारसनाथ की ओर देखकर बड़ी ही दीनता-भरे स्वर में कहा—"आपने मुझे एकदम शायलॉक ही समझ लिया, पारसनाथ बाबू? या सूदखोर काबुली? आप मेरे यहाँ इतने दिनों तक इसलिये

नहीं आए कि आप मुझसे कुछ रुपया माँगकर ले गए थे, यह कितना बड़ा अन्याय आपने मुझ पर किया है, इसे आप नहीं समझेंगे। खैर, आप आज किसी बहाने आए तो सही!" यह कहते ही उसकी आँखों में आँसू की दो बड़ी-बड़ी बूँदें चमक उठीं। वह धीरे से साड़ी के पल्ले से आँखें पोंछने लगी।

पारसनाथ एकदम भौंचक्का-सा होकर भ्रांत दृष्टि से नंदिनी की ओर ताकता रह गया। उसकी कुछ समझ ही में नहीं आता था कि बात क्या है। उसने अपना जो हाथ नोटों-सहित आगे को बढ़ाया था उसे धीरे-से पीछे हटा लिया। उसके बाद सांत्वना के स्वर में बोला—"आप यह क्या करती हैं, नंदिनी देवी? आप रोने क्यों लगीं? मैं मानता हूँ कि मुझसे बड़ा अन्याय हुआ है, पर इस कारण क्या आपको मुझे इस क़दर लज्जित करना चाहिये? मैं आपको न शायलॉक समझता हूँ न सूदखोर काबुली! आपके हृदय की महत्ता से यदि मैं परिचित न होता, तो कभी आपसे क़र्ज़ न माँगता, फिर चाहे कैसी ही कठोर विपत्तियों का सामना मुझे क्यों न करना पड़ता। मैं फिर एक बार आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे क्षमा कर दीजिए, और इन रुपयों को रख लीजिए!" यह कहकर उसने फिर एक बार नोटों-सहित अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया।

पर नंदिनी ने उसके हाथ की ओर देखा तक नहीं, और वह अंचल से अपनी आँखें पोंछती रही। पोंछते-पोंछते आँखें लाल हो आईं। आँसू सूख गए थे, पर फिर भी वह पोंछती गई। एक अजीब-सी बेकली पारसनाथ के मन में समाने लगी थी। अपने सामने बैठी हुई उस युवती नारी का करुण भाव देखकर उसके मन में दया उत्पन्न हो रही हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। और न वह यह सोचकर पुलकित ही हो रहा था कि अपने पति से असन्तुष्ट एक सुन्दरी रमणी उसके

प्रेम से पीड़ित होकर विह्वल आँसू बहा रही है। उसके मन में रह-रहकर एक अवर्णनीय मादक-ज्वर की असहनीय ज्वाला दहकने लगी थी, और साथ ही एक अज्ञात भय का-सा संचार हो रहा था। प्रेम के कड़वे-मीठे अनुभव उसे बहुत हो चुके थे, पर गृहस्थ-धर्म में दृढ़ किसी विवाहिता नारी की प्रेम-पीड़ा का अनुभव उसके लिये बिल्कुल नया था। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार के प्रेम की कल्पना उसके लिये सदा अत्यंत आकर्षक रही, और प्रारंभ में नंदिनी को चित्रकला सिखाने की जो तत्परता उसमें जगी थी उसका एक प्रधान कारण यह आकर्षण भी था। पर ऐन मौके पर जब वह दुर्लभ प्रेम याचक की तरह उसके सामने उपस्थित हुआ, तो वह ठिठककर रह गया और सहमकर उसने अपने को समेटना शुरू कर दिया। पिछली बार जब वह निमंत्रण खाने नंदिनी के यहाँ गया था, तभी से उसके मन में इस प्रकार की प्रतिक्रिया शुरू हो गई थी, जैसा कि पहले कहा जा चुका है। उसके अंतर्मन के किसी गुप्त कोने से कोई अज्ञात संस्कार उसके कानों में यह गुनगुना रहा था कि यह पथ बड़ा ही भयंकर है और किसी अनजान काली रात की कराल भौतिक छाया से घिरा हुआ है। नंदिनी को देखकर रह-रहकर उसका हृदय बरबस धड़क रहा था। उस विषम संकटमय मानसिक परिस्थिति से मुक्त होने के लिये वह छटपटाने लगा। इतने में किसी ने नीचे का दरवाज़ा खटखटाया। नंदिनी तत्काल सँभल गई और उठ खड़ी हुई। एक बार फिर अपनी दोनों आँखें अच्छी तरह से पोंछकर बाहर चली गई।

भुजौरियाजी आज किसी कारण नियमित समय से पहले ही घर वापस चले आये थे। नंदिनी उनके साथ ऊपर चली आई। पारसनाथ उन्हें देखकर उठ खड़ा हुआ और शिष्टाचारपूर्वक दोनों हाथ जोड़ते हुए मन मारकर मुस्कराने लगा।

"अख्खाह! आप हैं! अब तो आपके दर्शन ही दुर्लभ हो गए हैं,

जनाब ! मेरी धर्मपत्नी मुझसे कई बार यह शिकायत कर चुकी है कि पारसनाथ बाबू ने हम लोगों से एकदम असहयोग ही कर डाला है ! क्यों नंदा है न !" यह कहकर उन्होंने एक विचित्र मुस्कान से अपने गाढ़े काले रंग के चश्मे के भीतर से नंदिनी की ओर देखा । नंदिनी एक कुर्सी के सहारे खड़ी थी । उसने एक बार गंभीर मुद्रा से अपने पति की ओर तेवर चढ़ाते हुए देखा, और फिर चुपचाप मुँह फेर लिया ।

पारसनाथ के मन की सब भावनाएँ उस व्यक्ति को देखकर तीती हो उठीं । पालिश-रहित काले जूते के घिसे चमड़े की तरह उसके मुच्छ विहीन चीमड़ मुख पर जनखों का-सी अभिव्यक्ति देखकर असह्य घृणा से उसका सारा शरीर सिर से लेकर पाँव तक जर्जरित हो उठा । पर बाहर से उसने उस घृणा का लेश भी प्रकट न होने दिया और सलज्ज भाव से मुस्कराता हुआ चुप खड़ा रहा ।

भुजौरियाजी ने अपनी किश्तीनुमाँ टोपी उतारकर खूँटी पर टाँग दी, और फिर टसर की शेरवानी उतारते हुए बोले—"आपने मेरी धर्मपत्नी को मॉडल बनाकर जो चित्र अंकित किया था, हमारे राजा साहब को वह बहुत पसन्द आया । वह उसे अपने पास रखना चाहते थे; मैंने 'प्रेज़ेन्ट' के बतौर उन्हें दे दिया । इसी एक बात से आप समझ सकते हैं कि मैं आपकी कला का प्रचार कैसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों के आगे करता रहता हूँ । पर आप तो इस बात की ओर ध्यान ही नहीं देना चाहते । इधर बहुत दिनों से आपने कोई चित्र मुझे देने की कृपा नहीं की ।"

इस बात का कोई उत्तर पारसनाथ ने नहीं दिया । भुजौरियाजी की ओर गौर से देखते हुए उसके मन में बरबस यह विचित्र अनुभूति जग रही थी कि उनके मुख की एक-एक मुद्रा, एक-एक हाव, एक-एक

भाव, एक ऐसी अनिष्टकारी प्रेतात्मा से मिलता-जुलता है जिससे उसका परिचय बहुत पुराना हो, और जो कई युगों—बल्कि जन्मों—से उसके पीछे पड़ा हो। देख-देखकर उसके शरीर में घृणा; भय और क्रोध के कारण भयभीत साही की तरह काँटे खड़े हो रहे थे। उत्कट घृणा और साथ ही लोमहर्षक भय उभाड़नेवाले व्यक्ति का आकर्षण अत्यंत प्रबल होता है—रेंगनेवाले ज़हरीले कीड़े की तरह। पारसनाथ कुछ देर तक 'हिप्नोटाइज़' किए गए व्यक्ति की तरह भुजौरियाजी की ओर स्थिर दृष्टि से देखता रहा, और चाहने पर भी आँखें फेर न सका। उसके बाद अकस्मात् एक झटके से पूरी ताक़त के साथ अपने मन का भूत झाड़कर वह एक क़दम पीछे को हटा और बोला—"इस समय मुझे आज्ञा दीजिए, एक बहुत ज़रूरी काम से मुझे एक जगह जल्दी ही पहुँचना है। फिर कभी आऊँगा—जल्दी ही।" यह कहकर उसने मरे मन से भुजौरियाजी की ओर हाथ जोड़े और फिर उन्मन अवस्था में खड़ी नंदिनी की ओर एक बार भयंकर अपराधी की-सी दृष्टि से देखकर उसने हाथ जोड़ते हुए अत्यंत संकोच-भरी आवाज़ में कहा—"अच्छा, नमस्कार! फिर आऊँगा!" यह कहकर वह बड़ी तेज़ी से बाहर चला गया।

चौदहवाँ परिच्छेद

पारसनाथ जब बाहर आकर बड़ी सड़क से होकर एक्के की खोज में चलने लगा, तो उसकी मानसिक आँखों के आगे रह-रहकर नंदिनी की बड़ी-बड़ी आँखों की वह उदास, कातर दृष्टि, वह विकल हाहाकार-मयी छाया हवा से फहर-फहर उड़ने वाले काले पर्दे की तरह डगमग-डगमग गति से नाच रही थी और उसके भीतर एक अनोखी बेचैनी

की कँचकँरी पैदा कर रही थी। इधर कुछ समय से मंजरी के संसर्ग में आने से उसके भीतर जो एक निश्चिन्तता आने लगी थी, वह आज के अनुभव से जैसे फिर से अस्त-व्यस्त और डाँवाडोल होने के चिह्न प्रकट करने लगी ; असंख्य तूफ़ानी झकोरों से बिखरे हुए और सैकड़ों द्वन्द्वों के उलटे-सीधे आघातों से चिथड़े-चिथड़े होकर फटे हुए उसके जिस अंतर्मन में टाँके से लगने लगे थे, उसे कोई जैसे फिर एक बार किसी तेज़ छुरे से आर-पार चीरने पर उतारू हो गया था।

वह बलपूर्वक उस घोर अशांत भावना को दबाने की चेष्टा करने लगा। आकाश में पूरब की ओर से घने काले बादल बड़ी तेज़ी से उमड़ते हुए आ रहे थे। सितंबर का महीना प्रायः आधा बीत चुका था, पर अभी तक मानसून का जोश तनिक भी ठंडा नहीं पड़ा था। उन घहराते हुए तूफ़ानी बादलों की ही तरह पारसनाथ के भीतर भी जैसे कोई चीज़ रह-रहकर वेग के साथ उमड़ रही थी, जो एक बार बरसने पर भी शांत होगी या नहीं, उसका कोई आश्वासन उसे नहीं मिल रहा था। चौराहे पर पहुँचने पर उसे एक खाली एक्का दिखाई दिया। उसे तय करके वह मंजरी के मकान की ओर चल पड़ा।

ज्यों-ज्यों एक्का आगे बढ़ता था त्यों-त्यों किसी अज्ञात माया और अस्पष्ट आशा से पारसनाथ के भीतर की अशांति भी कम होती जाती थी, और उसके स्थान पर एक सुस्थिर, सुखद और स्वास्थ्यप्रद अनुभूति धीरे-धीरे अपना प्रभाव फैलाती जाती थी। जब एक्का निश्चित गली के पास पहुँचा तो वह उतर पड़ा और एक्केवाले को किराये के पैसे देकर वह तेज़ क़दम रखता हुआ मकान की ओर बढ़ा। बूँदें पड़ने लगी थीं और ज्योंही वह दरवाज़े पर पहुँचा त्योंही मूसलाधार पानी बरसने लगा। उसने बड़े ज़ोर से किवाड़ों पर धक्का देना शुरू किया। तत्काल दरवाज़ा खुला। अत्यंत स्निग्ध और मधुर मुस्कान-भरी दृष्टि से मंजरी ने उसका स्वागत किया। भीतर जाकर पारसनाथ ने स्वयं

दरवाज़ा बंद कर दिया—सहज अधिकार के साथ, आत्मविश्वास-पूर्वक। जैसे वह अपने ही मकान में आया हो।

मंजरी ने उसी सरस और मीठी मुसकान के साथ कहा—"आप बड़े भाग्यशाली हैं !"

"वह कैसे ?" प्रश्न करते हुए पारसनाथ की आँखों में विस्मय-भरी उत्सुकता झलक रही थी।

"जब आप मकान पर पहुँच चुके तब पानी पड़ना शुरू हुआ। रास्ते में अगर इस तरह की वर्षा होती तो आप बुरी तरह भींग गए होते, और बदलने को एक भी कपड़ा आपको यहाँ न मिलता !" यह कहते हुए संकोच-भरी दुष्टता का एक अत्यंत क्षीण आभास उसकी आँखों में और ओठों पर थिरकने लगा।

जिस अशांत पीड़ा को पारसनाथ नंदिनी के यहाँ से अपने साथ लाया था वह मंजरी की स्निग्ध दृष्टि की पहली झलक से ही कपूर की तरह हवा में विलीन हो गई थी। उसके भीतर पूर्ण स्थिरता आ गई थी। उसके मुख पर सहज आत्मविश्वास की शांत मुसकान खेलने लगी थी। अत्यंत धीरता के साथ उसने कहा—"तुम ठीक कहती हो, मंजरी देवी, सचमुच इस संबंध में भाग्य ने मुझ पर कृपा की है। पर विश्वास मानो, यह एक अपवाद है, जिस पर मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा है। क्योंकि भाग्य देवता मुझ पर उतने कृपाशील नहीं रहते जितना कि तुम समझे बैठी हो। फिर भी इतना निश्चित है कि आज किसी कारण से वह सचमुच मुझ पर प्रसन्न हैं, इसका सब से बड़ा प्रमाण यह है कि आज तुम भी.........पर हटाओ। अम्माँजी की तबीअत कैसी है ?"

मंजरी का चेहरा अचानक अकारण ही कुछ गंभीर हो आया था उसने धीरे से कहा—"अच्छी है !"

"आज खाना क्या खिलाओगी ?"

"जो आप कहें।"

"घर पर तरकारी क्या-क्या है ?"

"आलू के सिवा और तो कुछ भी नहीं है। आज कोई कुँजड़ा इस तरफ़ आया नहीं।"

"अच्छा, मैं बाज़ार जाकर कुछ तरकारियाँ ख़रीदकर ले आता हूँ, तब तक तुम चाय के लिये पानी चढ़ा दो। आज अभी तक चाय पीने का मौक़ा नहीं मिला। छाता है ?"

"हाँ, है। मैं ऊपर जाकर ले आती हूँ।" यह कहकर मंजरी ऊपर चली गई। पारसनाथ खड़ा खड़ा सोचने लगा कि मंजरी से परिचय हुए इतने दिन हो गए, दोनों के बीच पूर्ण घनिष्ठता का संबंध स्थापित होने की पूर्ण सुविधाएँ प्राप्त हो गईं, पर अभी तक उसके मन की गाठें खुल नहीं पाई हैं, अभी तक संकोच, झिझक और विचित्र ढंग की अज्ञात आशंकाओं से वह ग्रसी हुई है।

मंजरी ऊपर जाते ही उलटे पाँव वापस चली आई। आते ही उसने लड़खड़ाती हुई आवाज़ में कहा—"अम्माँ को जाने क्या हो गया है वह बेहोश-सी पड़ी हुई हैं। जल्दी ऊपर चलिए।" भयंकर घबराहट की लोमहर्षक छाया उसके मुख पर घिर आई थी। गाढ़ कालिमा से उसका चेहरा पुता हुआ था। पारसनाथ हड़बड़ाता हुआ ऊपर गया। मंजरी भी उसके पीछे चली। वास्तव में मंजरी को माँ का बुरा हाल था। वह खटिया पर चित होकर बेख़बर-सी पड़ी हुई थीं। पारसनाथ ने उनका दाहिना हाथ पकड़कर देखा। वह जैसे जल रहा था। उसने चिल्लाकर पुकारा—"अम्माँजी, अम्माँजी!" पर अम्माँजी के कानों तक उसकी आवाज़ पहुँची ही नहीं। उसने न जाने क्या सोचकर मंजरी से कहा कि वह उन्हें हिला-डुला कर जगाने

की कोशिश करे। मंजरी प्रायः रोती हुई खटिया के पास गई और "अम्माँ! अम्माँ!" पुकारती हुई हाथ से उनके शरीर को हिलाकर जगाने की चेष्टा करने लगी। सहसा अधेड़ महिला ने अपना दाहिना पाँव कुछ हिलाया और अपनी अंधी आँखों को आधा खोलकर करवट बदलने की चेष्टा की। मंजरी ने रोनी आवाज़ से ज़ोर से [illegible]रावनी, ऐसी हौलनाक अधेड़ महिला ने एक बार दोनों आँखों को पूरा खोलकर [illegible] [illegible]दयहीन निस्तेज पुतलियों को विचित्र ढंग से घुमाया, और उसके दोनों ओठ भी जैसे कुछ कहने के लिए फड़क उठे। पर फिर तत्काल उन्होंने आँखें बंद कर लीं और ओठ भी।

पारसनाथ बोला—"मैं जल्दी किसी डाक्टर को बुला लाता हूँ। तुम यहीं बैठी रहना। घबराना नहीं, मैं अभी आता हूँ।" यह कहकर सामने खूँटी पर टँगे छाते को लेकर वह चला गया। मंजरी हताश भाव से फ़र्श पर घुटने टेककर दोनों हाथों के सहारे खटिया के डंडे पर सिर रखकर निश्चेष्ट अवस्था में आँखें बंद करके बैठ गई। बाहर झमाझम पानी बरस रहा था और भीतर संध्या के प्रायांधकार में कराल मृत्यु की मौन छाया घिरी हुई थी। मंजरी को ऐसा मालूम हो रहा था जैसे [illegible] प्रेतों और छायाओं के किसी घोर दुःस्वप्न-लोक में किसी दुर्गम [illegible] पथ पर एकाकी चली जा रही है—किसी अज्ञात रहस्यमय अनिर्दिष्ट स्थान में बसेरा ढूँढ़ने के लिये; जैसे समय बहुत कम है और चलने में शीघ्रता न करने से अनंत अंधकारमयी कालरात्रि उसे चारों ओर से घेरकर अपने विकराल जबड़ों से ग्रस लेगी। वह हाँफती हुई, ठोकरें खाती हुई केवल चली जा रही है—कहाँ से चली है, किस दिशा की ओर भागी जा रही है, कहाँ पहुँचने पर उसे विश्राम मिलेगा, इसका कुछ भी भान उसे नहीं है। बहुत देर तक उसी दुःस्वप्न की अवस्था में वह औंधे मुँह बैठी रही। सहसा रोगिणी ने अपने दोनों पाँवों को झटकना शुरू किया। मंजरी उचककर उठ

बैठी। उसने भीत होकर देखा कि रोगिणी अपने दोनों पाँवों को छट-पटाती हुई, दोनों हाथों को ऊपर की ओर फैलाकर जैसे किसी भारी चीज़ को पकड़ने के लिये घोर निष्फल प्रयास कर रही हो। बेहद घबरा कर मंजरी फटी हुई आवाज़ में चिल्लाकर बोली—"अम्माँ! अम्माँ!"

पर अम्माँ के कान इस प्रत्यक्ष पार्थिव लोक से अनंत योजन दूर पहुँचे हुए थे, और अनंत वज्रों की वर्षा होने प ख़रीदकर ले आ माध्यम से उन तक आवाज़ नहीं पहुँच सकती थी। केवल बीस-पचीस मिनट पहले उनका शरीर, उनका मन, उनकी आत्मा इस पृथ्वी के—प्रत्यक्ष जगत् के—सहस्रों बंधनों के असंख्य तानों-बानों से अगणित रूपों में उलझे हुए थे, पर अब उनमें से किसी भी बंधन से जैसे अणुमात्र संबंध भी उनका नहीं रह गया था, और किसी चिर-रहस्यमय, चिर-अज्ञात और चिर-अज्ञेय लोक की कल्पनातीत अनुभूतियाँ—वे विभी-षिकापूर्ण भी हो सकती हैं, आनंदातिरेक से भरी भी हो सकती हैं—उनमें मूलतः भिन्न प्रकार की चेतना का संचार कर रही थीं। उनका छटपटाना बढ़ता ही जाता था, और बार-बार अपने दोनों हाथों को किसी अज्ञान विवशता के कारण वह नीचे कर लेती थीं और फिर उन्हें ऊपर उठाकर न जाने किस मानव-संग-स्पर्श-वर्जित लोक के किसी प्राणी अथवा प्राणियों के आगे किस अलौकिक आकांक्षा से पसार रही थीं। उनकी पूर्णरूप से खुली हुई आँखों की प्रकाशहीन पुतलियाँ प्रतिपल न जाने किस व्याकुलता से स्पंदित होकर किस प्रेत-जगत् का अपार्थिव दृश्य देखने में समर्थ हो रही थीं। मंजरी इस हद तक घबरा उठी कि उसने पुकारना छोड़ दिया। किसी अज्ञात संस्कारवश उसे विश्वास हो गया कि बीस वर्ष तक प्रतिपल, प्रति-क्षण वह जिस नारी के आँचल से इस तरह चिपकी रही है जिस तरह जीवित शरीर की नसों के रक्तकण, जिसके अंधी, निश्चेष्ट और निरुपाय होने पर भी यह कल्पना उसके मन में कभी नहीं समा सकी

कि उसने आँचल के स्पर्श के बिना वह एक पल के लिये भी जीवित रह सकती है, वह अकस्मात् बिना किसी पूर्व-सूचना के उससे पूर्ण रूप से विच्छिन्न होकर दूर दूर, कल्पनातीत रूप से दूर चली गई है, और अब वह किसी भी मानवीय उपाय से पकड़ में नहीं आ सकेगी। अपने अर्द्ध-चेतन मन की यह आकस्मिक अनुभूति मंजरी को ऐसी डरावनी, ऐसी हौलनाक लगी कि मारे आतंक के उसकी नाड़ियों का रक्तप्रवाह जैसे सिमट कर धीमा पड़ गया और उसकी गति एकदम रुद्ध होने को हो गई। उसे जैसे काठ मार गया और वह फ़र्श पर घुटने टेककर औंधी अवस्था में सिर छिपा कर लेट गई।

कितनी देर तक इस अवस्था में वह मूर्च्छित-प्राय पड़ी रही, इसका अंदाज़ वह स्वयं नहीं लगा सकी। उसकी वह अर्द्धमूर्च्छा तब भंग हुई जब पारसनाथ डाक्टर को साथ लेकर बड़ी तेज़ी से जूते फटफटाता हुआ ऊपर चला आया। उसके जाने के बाद भीतर से मकान का दरवाजा बंद करना मंजरी भूल गई थी, इसलिये पारसनाथ को इस बार किवाड़ खटखटाने की ज़रूरत नहीं पड़ी थी। अँधेरा गाढ़ से गाढ़तर हो आया था। पारसनाथ को इस बात की याद दिलानी पड़ी कि बत्ती नहीं जलाई गई है। मंजरी जैसे किसी पूर्वजीवन की-सी स्मृति के आघात से अकचकाती हुई उठ खड़ी हुई, और बत्ती जलाने के लिये नीचे गई। पानी निरंतर, अविराम गति से, अविरल धारापात से, पृथ्वी के प्रतिपल की जीवन-मरण की घटनाओं की पूर्ण उपेक्षा करता हुआ अंध भाव से बरसता चला जा रहा था। उसके अटूट प्रवाह से मञ्जरी के भीतर का आकाश और अंतरिक्षव्यापी हाहाकार भूतों, प्रेतों और दानवों के असंख्य मजीरों और करतालों से युक्त उन्मत्त कोलाहल के साथ मिलकर एक प्रचंड तांडव की सृष्टि कर रहा था।

लालटेन जलाकर जब वह ऊपर गई, तो डाक्टर ने अपना

वाटर-प्रूफ उतार कर खूँटी पर टाँग दिया, और रोगिणी की नब्ज़ देखने लगा। स्टेथास्कोप की नली कान से लगाकर उसके हृदय, फेफड़े तथा अन्य स्थानों की परीक्षा करने लगा। उसके बाद उसने अपनी यह राय प्रकट की कि एक विशेष प्रकार का इंजेक्शन देना होगा। अपने 'बैग' से इंजेक्शन का सामान निकालकर उसने पारसनाथ से कहा कि रोगिणी के हाथ-पाँव मज़बूती से पकड़ लिये जाँय, ताकि 'इंजेक्शन' देते समय वह छटपटावे नहीं। पारसनाथ ने रोगिणी के दोनों हाथ और मंजरी ने बड़ी घबराहट के साथ दोनों पाँव पकड़ लिये। फिर भी रोगिणी पाँवों को छटपटाती रही। डाक्टर ने तनिक डाँट के स्वर में कहा—"मज़बूती से कस कर पकड़िए। घबड़ाने से कैसे काम चलेगा!"

एक बार कुहने से आँसुओं को पोंछकर मंजरी ने यथाशक्ति ज़ोर लगाकर अपनी माँ के पाँवों को पकड़ा। डाक्टर ने इंजेक्शन देना शुरू किया। इंजेक्शन देने के कुछ ही समय बाद यह असर दिखाई दिया कि जिस अस्वाभाविक बल से रोगिणी इतनी देर से छटपटा रही थी वह क्षीण पड़ गया। मंजरी और पारसनाथ, दोनों ने अपने हाथ उठा लिए। रोगिणी को धीरे-धीरे एक अवश, अलस जड़ता घेरने लगी, और वह निद्रा की-सी अवस्था में झूमने लगी। डाक्टर ने संतोष का उल्लसित भाव मुख पर झलकाते हुए कहा—"अब चिंता की कोई बात नहीं है, कुछ समय के लिये इन्हें इसी हालत में चुपचाप लेटे रहने दीजिए, और करीब आधे घंटे बाद यह दवा इन्हें दीजिएगा। उसके बाद आधे-आधे घंटे के अंतर से देते रहिएगा।" यह कहकर उसने काग़ज के एक टुकड़े पर दवा का नाम लिख दिया। फ़ीस लेकर, वाटर-प्रूफ़ पहनकर, 'बैग' उठाकर डाक्टर साहब चलने लगे। पारसनाथ ने लालटेन पकड़ उन्हें रास्ता दिखाया। इसके बाद मंजरी को दिलासा देकर वह दवा लाने चला गया। मंजरी शून्य, निस्तेज और

रहता है। उसने अपने जीवन में इसके पहले कभी कि
सन अवस्था में नहीं देखा था। पर सहसा, किसी अज्ञात ... ...,
वह चौंक उठा, और वास्तविकता वज्र की प्रकाश-रेखा से एक बार उसकी आँखों के आगे नाच उठी। रोगिणी का शरीर हिम की तरह ठंढा हो गया था और वह इस तरह साँस ले रही थी जैसे बड़े कष्ट में हाँफ रही हो। उसी अज्ञात संस्कार की प्रेरणा से घबराई हुई आवाज़ में पारसनाथ ने मंजरी से कहा—"मञ्जरी, जल्दी से एक लोटे में पानी लाओ। जल्दी!"

मञ्जरी निद्रा-विचरण की-सी अवस्था में उठी और नीचे जाकर एक लोटे में पानी ले आई। पारसनाथ ने खटिया पर बैठकर रोगिणी का सिर धीरे से उठाकर अपने घुटने पर रख लिया था। मञ्जरी लोटा थामे खड़ी थी। पारसनाथ चम्मच से पानी लेकर रोगिणी को पिलाने लगा। चम्मच मुँह से लगते ही रोगिणी ने फिर अत्यत अधीरता से मुँह खोला, जैसे खोते से गिरा हुआ अधमरा गौरैये का बच्चा मरणासन्न, अचेतन अवस्था में भी किसी के स्पर्शमात्र से सचेत सा हो उठता है और एक रहस्यमयी जीवन-लालसा से प्रेरित होकर मुँह खोलता है। वह रुक-रुककर जल की बूँदों को घुटकने लगी। दूसरी बार जब उसके मुँह से चम्मच लगाया गया तो उसने पहले से भी अधिक अधीरता से मुँह खोला, जैसे किसी रेगिस्तान के अनंत प्रसार के बीच में वह पड़ी हो, और उस प्रसार की तरह ही उसकी जलती हुई प्यास भी अनंत हो। क्या उन बूँदों से वह सर्वशोषी कराल तृष्णा—युग-युग की जीवन-लालसा से अतृप्त, अनंत असंतोषों से दग्ध, असंख्य विफल कामनाओं से ध्वस्त मानवात्मा की वह चिरंतन पागल प्यास—बुझ सकेगी?—पारसनाथ ने मन-ही-मन यह प्रश्न किया। प्रश्न के उत्तर में उसके अन्तर के कानों में किसी अदृश्य शैतान ने ठठाकर अट्टहास किया। उस विकट अट्टहास को सुनकर वह आतङ्क से सिहर उठा।

पानी की बूँदें पिलाता गया, और उन्हें पीने के लिये ... अधीर अन्तराकांक्षा उग्र से उग्रतर होती गई। पर साथ ही घुटकने की शक्ति उसमें क्षीण से क्षीणतर होती जाती थी। मञ्जरी भीत, विस्मित और पथराई हुई आँखों से एकटक उस चरम निष्ठुर दृश्य को देख रही थी। उसके पत्थर के आँसू तरल अश्रुओं का पथ पूर्णतः रोध किये हुए थे। कुछ समय बाद रोगिणी की यह अवस्था हो गई कि अज्ञात संस्कारवश पीने की इच्छा रखते हुए भी वह एक भी बूंद गले के नीचे न उतार सकी। श्वास की गति क्षीणतम हो गई। अन्त में रोगिणी की अन्तिम साँस के साथ नाक के रास्ते से होकर एक प्रकार का झाग सा निकल आया, और उसकी गर्दन पारसनाथ के घुटने के नीचे लटक गई। मुँह अन्तहीन पिपासा की अतृप्ति लिए असफल चेष्टा की गतिहीन अवस्था में सदा के लिये खुला ही रह गया; अधखुली अन्धी आँखें न जाने किस छायालोक में पहुँचकर कौन-सा भीतरी प्रकाश पाकर जगमगा उठीं। मञ्जरी चीख़ मार उठी। पानी का लोटा उसके हाथ से आवाज़ के साथ फ़र्श पर गिर गया। वह पछाड़ खाकर माँ के पैरों पर गिर पड़ी, और उन स्पर्शज्ञानहीन चरणों को अपने खौलते हुए आँसुओं से तर करने लगी। उसके फफकने से उसकी पीठ के उभरने और बैठने की क्रिया क्रम से चल रही थी। पारसनाथ ने मृत शरीर का सिर अपने घुटने से उठाकर धीरे से तकिये पर रख दिया। उसने मञ्जरी को दिलासा देने के लिये बार-बार मुँह खोलना चाहा, पर प्रत्येक बार उसकी चेष्टा विफल हुई। उसके ओंठ जैसे गोंद लगने से एक-दूसरे से चिपक गए हों।

पंद्रहवाँ परिच्छेद

बाहर वर्षा ने भीषणतम रूप धारण कर लिया था। ऐसी प्रलय-वृष्टि पारसनाथ ने पहाड़ में अवश्य देखी थी, पर देश में प्रकृति का यह कोप उसके लिये एक नया अनुभव था। ऐसे अन्धवेग से पानी बरस रहा था जैसे वह सोचता हो कि आज न बरसने से फिर कभी नहीं बरस पावेगा। शाम से अभी तक एक क्षण के लिये भी उसका तार नहीं टूटा था। पास-पड़ोस में चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था, केवल एक साँड़ सम्भवतः किसी एक अरक्षित स्थान में खड़ा होने से बीच-बीच में भयंकर शब्द से हुंकार उठता था।

पारसनाथ के सामने यह समस्या पेश हुई कि मृत-शरीर के संस्कार का क्या उपाय किया जाय। एक तो वह उस मुहल्ले के किसी भी व्यक्ति से परिचित नहीं था, तिसपर उस प्रलय-वर्षा में किसके पास जाया जाय, और कौन आकर उसकी सहायता करने को राज़ी होगा! फिर भी यह समस्या व्यावहारिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होने पर भी पारसनाथ को इतना बेचैन नहीं कर रही थी जितना मञ्जरी को सांत्वना देने की आकुलता। उसके कुछ समझ ही में नहीं आता था कि मञ्जरी को किस ढङ्ग से, किन शब्दों में क्या कहकर दिलासा दे। वह रह-रहकर एक ऐसे निपट निस्सहाय, अज्ञान बच्चे की तरह कातर सिसकियाँ भर रही थी जो आधी रात में माँ के चिर-परिचित अञ्चल से बिछुड़ने पर रोते-रोते थक गया हो, और जिसके रोने ने चिल्लाने की अक्षमता के कारण हिचकियों का रूप धारण कर लिया हो।

पारसनाथ खटिया पर से उठकर कोने पर रखे हुए काठ के बक्स के ऊपर निश्चेष्ट बैठ गया। दोनों घुटनों पर कुहने टेककर हथेलियों से उसने अपना माथा छिपा लिया। उस समय उसकी आँखें उसके मन

की ही तरह इस क़दर अनुभूतिशील हो उठी थीं कि लालटेन का क्षीण प्रकाश भी उसे असह्य मालूम हो रहा था। इसलिये हथेलियों को आँखों का 'शेड' बनाकर वह अपनी तत्कालीन विचित्र परिस्थिति पर विचार करने की चेष्टा करने लगा। पर केवल ज़मीन-आसमान को एक करने वाली वर्षा के 'हहर! हहर!' शब्द, महानाश की लास्य-लीला से पीड़ित विश्व के हाहाकार-भरे कलरोल के सिवा और कोई विचार-तरङ्ग उसके भ्रांत मस्तिष्क से आकर नहीं टकराती थी। कुछ देर तक उसी भटकी हुई, मानसिक अवस्था में स्तब्ध बैठे रहने के बाद सहसा, बिना कुछ सोचे या इच्छा किये, उसने एक बार खटिया पर पड़ी मृत स्त्री की ओर देखा। वही चिर-विस्मय से अधखुला मुँह, चिर-प्रश्न की भ्रांति के कारण अधखुली आँखें, चिर-निरुत्तर की स्तब्धता से मग्न मुख की पाषाण-तुल्य अभिव्यंजना!—और उसके काठ के समान अचल, गतिहीन चरणों पर लोटती हुई, मर्मघाती मौन क्रन्दन से बिलखती हुई एक निःसंबल, कठोर जीवन-संघर्ष में बुरी तरह से पराजित तरुणी! बाहर चारों ओर प्रलय-लीला का गर्जन-स्वर; और भीतर निर्जन, एकांत कमरे में मौत का भयावह सन्नाटा। यह दृश्य देख-देखकर एक अज्ञात रहस्यमय भौतिक भय से पारसनाथ का हृदय बैठा जा रहा था। मृत स्त्री के मुख की भयंकर प्रेतरूप-छाया पर उसकी आँखें कुछ देर तक जैसे किसी मेस्मेरिज़म के आकर्षण से गड़ी रह गईं। इसके पहले उसके मन में भय की भावना तनिक भी नहीं उत्पन्न हुई थी। कठोर कर्तव्य की-सी एक ठोस अनुभूति ने उसकी नसों में लोहे की-सी शक्ति प्रदान कर दी थी। पर अब जब भय कुछ शेष हो गया और कमरे के भीतर और बाहर मौत की छाया-मूर्तियों की फुफकार और सिसकार के सिवा और कोई शब्द मस्तिष्क के कर्ण-कुहरों में सुनाई न दिया, तो एक अलौकिक भय के सैकड़ों अनुचर विचित्र और वीभत्स रूप धारण करके उसके आगे नाचने लगे। कुछ काल तक इस भौतिक

भय ने उसके भीतर ऐसा विकट रूप धारण कर लिया कि उसे ऐसा मालूम होने लगा जैसे वह चेतनाशून्य हो जायगा। पर शीघ्र ही उसको भीतर प्रतिक्रिया शुरू हुई, और आत्म-रक्षा की भावना जागरित हुई। भय को झाड़कर और कर्तव्य की कठोरता को फिर एक बार सुदृढ़ रूप से सामने रखकर वह उठ खड़ा हुआ। मंजरी के पास जाकर उसने प्रवल चेष्टा से मुँह खोलकर पुकारा—"मञ्जरी!" उस मृत्यु-मौन वातावरण में उसे स्वयं अपनी आवाज़ बड़ी भयावनी लगी—जैसे वह नहीं, बल्कि यमराज का कोई क्रूरकर्मा दूत मञ्जरी को पुकार रहा हो। पर मञ्जरी के कानों तक जैसे उस शब्द की क्षीणतम भनक भी नहीं पड़ी, जैसे किसी अगम अतल के गहनतम रंध्र से वह आवाज़ उठी हो और रास्ते में अनेक कंदराओं के भीतर असंख्य चट्टानों से टकराने के बाद ऊपर पहुँचने के पहले ही अपनी प्रतिध्वनि में अपने आप विलीन हो गई हो।

पारसनाथ को दूसरी बार पुकारने का साहस नहीं हुआ। मञ्जरी अभी तक उसी अवस्था में औंधी लेटी हुई थी। पारसनाथ उसी के पास नीचे बैठ गया, और अकस्मात्, बिना किसी पूर्व कल्पना या विचार के, उसने मञ्जरी की पीठ पर हाथ रखकर धीरे से सहलाना शुरू कर दिया। वह खुद नहीं जानता था कि वह क्यों ऐसा करने लगा, पर उसका अज्ञात मन जानता था कि उस चरम संकट के अवसर पर उसे दिलासा देने के लिये कोई शब्द उसके पास नहीं है, और साथ ही उसे शांत करने की भी परम आवश्यकता है। इसलिये अपने अनजान ही में उसने उसकी पीठ पर हाथ फेरना शुरू कर दिया था। मञ्जरी पीठ पर उसका हाथ पड़ने पर चौंक उठी, और उसकी ओर देखने लगी। कैसी आश्चर्यजनक, कैसी अनोखी और कैसी अप्रत्याशित वह दृष्टि थी! रोने के कारण दोनों पलकें सूज उठी थीं, पुतलियाँ भीगी हुई थीं और आँखों के कोर लाल हो उठे थे। आँखों के नीचे, दो हलके

नीले रंग के दाग-से अंकित हो गए थे। उसके मुख पर भय और घब-राहट का लेशमात्र चिह्न भी वर्तमान नहीं था। केवल थी एक मर्मघाती पीड़न की दिल दहलानेवाली अभिव्यक्ति। उसकी आर्द्र आँखों के एक कोने से व्यक्त होती थी असीम करुण वेदना, और दूसरे कोने से दहक रही थी क्रोध और हिंसा की निर्धूम आग। पर किसके प्रति वह आक्रोश था? क्रूर नियति के प्रति व्यर्थ रोष की वह ज्वाला क्या अपनी असफलता से खिसियाकर अपने आप बुझ जावेगी, या पारसनाथ को भी अपने साथ ले बीतेगी!

पर पारसनाथ उस दृष्टि से तनिक भी नहीं सहमा। उसे वह सहज स्वाभाविक लग रही थी। उसकी स्वयं अपनी आँखें भीगी हुई थीं, और वह अनमने भाव से मञ्जरी की पीठ पर हाथ फेरता जाता था। मञ्जरी को भी स्पष्ट ही वह एक साधारण सी बात लग रही थी। पता नहीं क्यों। क्योंकि यह निश्चित था कि किसी भी साधारण परिस्थिति में न तो पारसनाथ को उसकी पीठ पर हाथ लगाने का साहस हो सकता था, न मञ्जरी ही उसकी इस तरह की हरकत का प्रतिरोध किये बिना रहती। पर इस समय दोनों एक अत्यंत असाधारण परिस्थिति की मझधार में, एक भौतिक रहस्यमयी अनुभूति की भँवर में गोते खा रहे थे। दोनों की मानसिक दशा एक अस्वाभाविक स्तर पर आकर उद्भ्रांत हो उठी थी।

कुछ ही क्षण बाद मञ्जरी फिर औंधी हो गई, और शव के चरणों पर उसने अपना मुँह छिपा लिया। पारसनाथ की आँख से टपाटप आँसू गिरते जा रहे थे, और वह निद्रा-विचरण की-सी मनोदशा में मञ्जरी की पीठ सहलाता जाता था। वह स्वयं नहीं जान पाता था कि उसकी आँखों से क्यों बरबस आँसू टपकते जाते हैं। क्या वास्तव में मञ्जरी की माँ की मृत्यु से उसे इस क़दर दुःख हुआ था? हो सकता है। पर दुःख की

अनुभूतियाँ तो जीवन में उसे उससे कई गुना अधिक विकट रूप में हो चुकी थीं, किंतु इस क़दर आतुर तो वह कभी नहीं हुआ। तब आज कौन विशेष कारण आ गया? पर इस बात का कोई भीतरी कारण खोजने की प्रवृत्ति उस समय उसके मन में नहीं जग रही थी।

वर्षा का अखंड प्रवाह जारी था। बल्कि उसका वेग निरंतर बढ़ता ही चला जाता था। पारसनाथ बहुत देर तक उसी अवस्था में बैठा ही रहा, और मंजरी भी उसी निश्चल स्थिति में पड़ी रही। प्रायः एक घंटे बाद मंजरी उठ बैठी। पारसनाथ ने उसकी ओर देखा। इस समय उसकी आँखों की भाव-व्यंजना ने एक दूसरा ही रूप धारण कर लिया था। क्रोध और हिंसा के स्थान में एक सरस, सुकोमल और स्निग्ध वेदना स्थिर रूप में छा गई थी। इतनी देर तक जैसे वह अपने भीतर, अंतरतम प्रदेश में दबी हुई किसी अज्ञात शक्ति को बटोरने में पूरे प्रयत्न से लगी हुई थी। उस प्रयत्न में बहुत कुछ सफलता पाने पर इस समय उसके व्यक्तित्व का एक निराला ही रूप, पारसनाथ की आँखों के आगे झलक उठा। उसे देख-देखकर उसके भीतर, तल से सतह तक, तूफ़ान के वेग से एक विचित्र मथन-क्रिया चलने लगी। बाहर, भीतर, चारों ओर झंझामय वातावरण का पागल प्रवेग अत्यंत भीषण रूप से उसके हृदय को झकझोरने लगा। वह जैसे अपने आपसे भयभीत हो उठा और उस भय से आत्मरक्षा करने के लिये किसी सजीव और सहृदय प्राणी के निकट-स्पर्श की परम आवश्यकता अपने अनजान में उसे महसूस हुई। सहसा उस प्रलय वात्या के ताल से अपने अंतर का ताल मिलाते हुए उसने मंजरी के अत्यन्त निकट जाकर उसका दाहिना हाथ दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया। उसकी ग य आँखों के कोनों में आँसुओं के छोटे-छोटे कण चमक रहे थे। उ ने का तनिक भी ध्यान उसे नहीं था, और वह अपने आपको, देश और काल को, जीवन और मृत्यु को भूलकर, लोमहर्षक उन्माद से ग्रस्त

होकर मञ्जरी के सिर से अपना सिर सटाकर निरंतर आँसू बहाता चला गया। जैसे उस महाप्रलय की नाशनिशा में वह एक अत्यंत स्वाभाविक और साधारण बात थी। पारसनाथ के आँसुओं का वेग अधिकाधिक उमड़ता जाता था, जैसे वह बाह्य प्रकृति की तूफ़ानी वर्षा का ही स्वाभाविक प्रतिरूप हो। मञ्जरी की आँखों से भी फिर से झड़ी बरसने लगी। पारसनाथ के आँसुओं से मञ्जरी के गाल और ओंठ भीग रहे थे और मंजरी के आँसुओं से उसके। कितनी देर तक दोनों उस चरम मोह की दशा में मग्न रहे इसका अंदाज़ दोनों में से एक को भी नहीं था। आकस्मात् एक काल्पनिक अथवा वास्तविक खटका सुनकर पारसनाथ ने खटिया पर पड़ी हुई मृत नारी के शव की ओर देखा, और देखते ही एक अवर्णनीय आतंक की अनुभूति से वह सिहर उठा। लालटेन का प्रकाश पहले से क्षीण पड़ गया था, संभवतः तेल चुक गया था। उस क्षीण प्रकाश में पारसनाथ ने देखा, या उसे यह भ्रम हुआ, कि मृत नारी ने अपनी अधखुली आँखों को पहले से कुछ अधिक खोला, और एक बार पलक मारकर वह जैसे एक विचित्र और भयावह रूप से मुस्कराने लगी — व्यंग से, प्रतिहिंसा से, अथवा प्रसन्नता से, कौन जाने! उसके सारे शरीर में रोंगटे खड़े हो गए। मञ्जरी को छोड़कर वह अलग हटकर बैठ गया, और कुछ देर तक भ्रमित दृष्टि से मृत स्त्री की ओर देखता रह गया।

लालटेन की बत्ती बुझने पर थी। वह मंजरी से कहना चाहता था कि उसका तेल चुक गया, पर उसके गले से जैसे आवाज़ ही नहीं निकलती थी। बड़ी चेष्टा से उसने बहुत ही धीमी, फटी-सी आवाज़ में कहा—“रहे ता कहाँ रखा है! लालटेन में डालना होगा।”

मंजरी ने जैसे प्रेतलोक के बीच में वह मानव-वाणी सुनी। उसकी अन्यमनस्कता भंग हुई। घबराई हुई आवाज़ में धीरे-से बोली—“तेल

तो अब नहीं है। बोतल में जितना बचा था वह सब मैंने लालटेन में डाल दिया था।"

"तब तो बड़ी मुश्किल हुई!"—प्रायः फुसफुसाते हुए पारसनाथ ने कहा—"सारी रात अँधेरे में बितानी पड़ेगी।"

इसके बाद फिर सन्नाटा छा गया। लालटेन की बत्ती में केवल हलके नीले रंग की एक अत्यंत क्षीण प्रकाश-रेखा शेष रह गई थी। उस जुगुनू के-से प्रकाश में मृत नारी की मुखाकृति पारसनाथ को पहले से भी विकटतर ज्ञान पड़ती थी। एक रोमांचकर भय की वीभत्स छाया ने उसकी आत्मा को ग्रस-सा लिया था। पर यह होते हुए भी, भय की उस चरम अवस्था में भी, एक विचित्र भौतिक रस का क्षीण आभास उसकी तत्कालीन अनुभूति के साथ मिलकर एकाकार हो गया था। कुछ क्षण बाद प्रकाश की नीली झाँई भी समाप्त हो गई, और भीतर और बाहर, दोनों के दृश्य अनंत अंधकार के साथ मिलकर एकरूप हो गए।

मञ्जरी ने घबराई हुई आवाज़ में कहा—"बहुत डर मालूम हो रहा है।" यह कहकर वह सरकती हुई पारसनाथ के पास चली आई, और अपने दोनों हाथों से उसने उसके दोनों घुटने पकड़ लिए। पारसनाथ का विचित्र हाल था। एक ओर उसे उस सुख की अनुभूति बरबस पुलकित कर रही थी; जिसकी प्रतीक्षा वह इतने दिनों तक अत्यन्त अधैर्य के साथ करता आया था, और दूसरी ओर मृत नारी के मुख का वह विकट व्यङ्गपूर्ण (काल्पनिक या वास्तविक) भाव आतङ्क से उसके रोएँ खड़े कर रहा था, जिसे कुछ ही समय पहले बुझती हुई लालटेन के क्षीण प्रकाश में उसने देखा था या देखने का भ्रम हुआ था।

वह सोच रहा था—बाहर अनन्त अन्धकार, और भीतर अनन्त अन्धकार, चारों ओर प्रलय-वर्षा का नाश-नृत्य, किसी प्राणी के

अस्तित्व का सूचक कोई शब्द कहीं नहीं, और उस मृत्यु से भी अधिक कराल कालिमा में पुते हुए अन्ध पट के भीतर एक तरुण और एक तरुणी एक-दूसरे से सटे हुए ! इतने दिनों से तृषित और क्षुधित प्राणों की उद्दाम, उच्छृंखल आकांक्षा की पूर्ण पूर्ति में तब कौन-सी रुकावट शेष रह गई है :—केवल एक ऐसी नारी का सूखे काठ के समान निस्पंद, निष्प्राण शव, जो जीवित अवस्था में ही मृतक के समान थी। वह सूखी मिट्टी से भी अधिक जड़ और निर्जीव शव आकाश-पाताल व्यापी इतने बड़े सुयोग के बीच में इतना भीषण व्यवधान, ऐसी दुर्लंघ्य दीवार खड़ी करने में समर्थ हो सकता है! यह कैसा अलौकिक आश्चर्य है।

पर इस आश्चर्य से विभ्रांत होने पर भी रह-रहकर यह अपूर्व पुलकानुभूति उसके शरीर में और मन में हर्ष के काँटे खड़े कर रही थी कि मञ्जरी ने इतने दिनों के प्रबल प्रतिरोध और कठोर संयम के बाद चरम परीक्षा के उस घोर विभीषिकापूर्ण क्षण में उसके घुटनों का सहारा पकड़कर अपने को पूर्ण विश्वास के साथ अर्पित कर दिया था। इस मार्मिक अनुभूति का रस और अच्छी तरह से ग्रहण करने के उद्देश्य से वह जेब से एक सिगरेट निकालकर जलाने लगा। दियासलाई ज्योंही 'टस-स' की आवाज़ के साथ जली त्योंही उसके प्रकाश में उसकी दृष्टि न चाहने पर भी बरबस एक बार फिर खटिया पर पड़े हुए मृत शरीर पर पड़ी। उसके मुख का पतली झिल्ली की तरह चीमड़ मांस, शून्य के किसी निश्चित बिंदु पर गड़ी हुई उघड़ी आँखें, खोखले गाल, खुला हुआ मुँह और नुकीली ठुड्डी, सब मिलकर पहले से भी अधिक भयावना रूप धारण किये हुए थे। पारसनाथ ने उस ओर से आँख हटाकर हड़बड़ी के साथ सिगरेट जलाई, और दियासलाई के शेष जले हुए टुकड़े को बुझाकर बड़ी तेजी से बाहर बरामदे की तरफ़ फेंक दिया। इसके बाद वह कश लेने लगा। कश लेने से सिगरेट का जलता हुआ

घिरा निपट अँधेरे में किसी भुत की भूनी आँख की तरह दहक उठता था।

भय, भ्रांति और गुदगुदी की उस अवस्था में वह बहुत देर तक एक के बाद दूसरी सिगरेट जलाकर पीता चला गया। मञ्जरी उसके दाहिने घुटने पर सिर रखे निश्चल अवस्था में लेटी हुई थी। उसकी भाप के समान तप्त साँसों की गरमी का अनुभव वह अपने शरीर पर कर रहा था।

रात इतनी लम्बी मालूम होती थी जैसे अनंत काल तक उसका अन्त ही नहीं होगा। वर्षा का वेग घटने का कोई आसार नहीं दिखाई दे रहे थे। पारसनाथ सोच रहा था कि कहीं से किसी जीवित मानव के कंठस्वर की भनक भी उसके कानों में पड़ती तो भूतलोक के जिस जादू की स्तब्धता उसके चारों ओर अटल रूप से छाई हुई थी वह टूट जाता। दूर कहीं साढ़े का सूचक एक घन्टा बज उठा। वह ठीक अनुमान न लगा सका कि ढाई बजा या साढ़े तीन। उस घन्टे के बजने के साथ ही पास ही कहीं से 'टन-टन टनन' की आवाज़ सुनाई दी। उसने अनुमान लगाया कि संभवतः कोई लुहार हथौड़े से लोहा पीट रहा है। उस शब्द को सुनकर उसके मन में एक आश्चर्यजनक साहस और आशा का-सा संचार हुआ। उसे ऐसा विश्वास होने लगा जैसे वह आवाज़ वास्तव में भौतिक जादू के मूल पर चोट पर चोट मार रही है।

उस आवाज़ के सहारे उसने उसी अवस्था में प्रायः पौने दो घंटे बिता दिए। धीरे—बहुत धीरे—वर्षा का वेग कुछ कम होता हुआ-सा जान पड़ा। प्रकाश का क्षीण—अति क्षीण—आभास भी अच्छेद्य अंधकार को बड़ी ही कठिनाई से भेदकर किसी अदृश्य शून्य लोक से उतर कर व्यक्त होता हुआ-सा जान पड़ा। मञ्जरी रात-भर की घोर परिभ्रांत मानसिक अवस्था के बाद उसी अवस्था में पारसनाथ के घुटने

के सहारे सिर टेककर, बरबस गहरी नींद में सो गई थी। पारसनाथ की थकान उससे कहीं अधिक होने पर भी वह यथास्थित बैठा ही रहा। उसके घुटने दर्द करने लगे थे, पाँवों में झुनझुनी चढ़ गड़ गई थी, तथापि इस भय से वह रंचमात्र भी हिला-डुला नहीं कि कहीं मञ्जरी की नींद उचट न जावे।

सोलहवाँ परिच्छेद

जब काफ़ी देर हो गई और दिन चढ़ आया, तो उसने मञ्जरी को जगाया। मञ्जरी हड़बड़ाती हुई उठ बैठी, और दोनों हाथों से आँखें मलने लगी। वर्षा का ज़ोर बहुत घट गया था। पारसनाथ ने कहा—"मैं पास-पड़ोस के आदमियों को ख़बर देकर सत्कार का प्रबंध करता हूं। तुम बैठी रहो, मैं थोड़ी देर में आता हूं।"

यह कहकर वह छाता लेकर बाहर गया। मुहल्ले में किसी से परिचय न होने पर भी उसने दो-चार दरवाज़े खटखटाए। फल यह हुआ कि प्रायः पाँच-छः आदमी श्मशान-यात्रा के लिये तैयार हो गए। एक अनुभवी व्यक्ति को साथ लेकर पारसनाथ ने अवसर के उपयुक्त, आवश्यक चीज़ें ख़रीदीं। इस चक्कर में पूरे दो घंटे लग गए। इसके बाद अर्थी तैयार करके, मृतक का शरीर उस पर रखकर, उपयुक्त वस्त्रों और फूल-मालादि से उसे सजाकर, मंजरी को स्तब्ध और विभ्रान्त अवस्था में यथासंभव सान्त्वना देने की चेष्टा करके पारसनाथ दूसरे श्मशान-यात्रियों के साथ राम-नाम की महिमा का नारा लगाता हुआ मृतक के अंतिम संस्कार के लिये चल दिया। मंजरी मृतात्मा की अदृश्य स्मृतिछाया के साथ उस नीरव हाहाकार-भरे मकान में अकेली पत्थर के आँसू बहाती हुई पड़ी रही।

बहुत देर बाद—युगों की एकांत प्रतीक्षा के बाद—जब पारसनाथ श्मशान से लौटकर आया, तो मंजरी ने देखा कि उसके खिन्न मुख पर एक ऐसी दिल दहलानेवाली क्लांत छाया घिरी हुई थी कि मालूम होता था जैसे वर्षों प्रेतों के बीच में जीवन बिताकर वह किसी तरह जान छुड़ाकर मनुष्य-लोक में आ पहुँचा है। श्मशान-यात्रा की थकावट एक तो योंही भयंकर होती है, तिस पर सारी रात मृतक पर पहरा देते हुए उसने जागरण में बिताई थी, और उसके भी ऊपर कल सुबह से उसने कुछ नहीं खाया था। यह सब होते हुए भी उसकी थकित दृष्टि से एक स्थिर निश्चय और आत्म-विश्वास का भाव व्यक्त हो रहा था। आते ही उसने कहा—"सबसे पहले भोजन का प्रबंध करना होगा। तुम भी भूखी हो, और मैं भी भूखा हूँ। उसके बाद दोनों मिलकर सलाह करेंगे कि कहाँ जाना होगा, क्या करना होगा।"

मंजरी केवल एक अतिशय करुणापूर्ण उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देखकर चुप हो रही।

पारसनाथ ने कहा—"इस वक्त खाना घर पर नहीं बन सकता। मैं बाज़ार से लाता हूँ, बड़ी भूख लगी है।"

मञ्जरी फिर भी चुप रही, और उसी विकल दृष्टि से ससंकोच उसकी ओर देखती रही, पारसनाथ बाज़ार चला गया। प्रायः बीस मिनट बाद एक बड़े दोने में पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ, मिठाई आदि लेकर वापस आया।

मञ्जरी ने सोचा था कि वज्र की-सी जो आकस्मिक चोट उस पर पड़ी है, उसके बाद खाने-पीने की-सी तुच्छ बातों का कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता। वास्तव में इस वक्त तक वह इस विषय को बिलकुल ही भूली हुई थी। पर अब उसे अनुभव हुआ कि उस परम महत्त्व-

पूर्ण तथ्य को अधिक समय तक भुलाया नहीं जा सकता। कैसे ही भयंकर दुःख का पहाड़ क्यों न टूट पड़े, सारे संसार में प्रलय क्यों न आ जाय, पर पेट का प्रश्न उन सब स्वर्गमर्त्य-व्यापी महाप्रश्नों को तुच्छ करके ज्वलंत सत्य के रूप में उन सबके ऊपर चढ़ बैठता है। पारसनाथ उसके सामने खाद्य-सामग्री रखकर स्वयं भी वहीं पर पलथी मारकर बैठ गया। मंजरी कुछ देर तक अपने-आपको धोखा देने के इरादे से हाथ खींचे रही, पर जब पारसनाथ ने सुदृढ़ शब्दों में आग्रह किया—बल्कि आदेश दिया—तो उसने सुस्त हाथों से छोटे-छोटे कौर तोड़कर खाना शुरू किया।

जब दोनों खा-पी चुके, तो पारसनाथ बोला—"मेरा एक प्रस्ताव है। सोच-समझकर उस पर अपनी राय दो। मैं यह कहना चाहता हूँ कि तुम आज ही यह मकान छोड़कर मेरे साथ चली चलो। यह जरूर है कि मेरा मकान इससे भी गंदी जगह पर है, और वहाँ ठीक तरह से रहने की कोई विशेष व्यवस्था नहीं है, पर फिर भी नयी परिस्थिति में इसके सिवा और कोई चारा मैं नहीं देखता। खूब सोच-समझकर उत्तर दो कि तुम्हारी क्या राय है?"

मंजरी दाहिने घुटने पर अपना गाल टेककर सिर झुकाये बैठी थी, और निरुद्देश्य भाव से अपने पाँव की उँगलियों की ओर देख रही थी, अत्यंत क्षीण और अस्पष्ट स्वर में उसने उत्तर दिया—"जैसा आप कहें।"

पारसनाथ को आशा नहीं थी कि इतने सहज में तत्कालीन विकट समस्या का समाधान हो सकेगा। श्मशान से लौटते समय वह रास्ते-भर इस संबंध में तरह-तरह की बातें सोचता आया था कि मञ्जरी दुस्सह व्यथापूर्ण भावुकता अथवा मोह-मग्नता के कारण न जाने 'त्रिया-हठ' का कौन-सा भयंकर रूप धारण करेगी—आत्महत्या कर

लेगी, या घुट-घुट कर मरना चाहेगी, अथवा समाज और संसार से विद्रोह करके, होटल के वीभत्स जीवन को पूर्ण रूप से, खुल्लमखुल्ला, अपनाने को दौड़ पड़ेगी ! वह इस प्रकार सहज-शांत भाव से उसका आनुगत्य स्वीकार करने को राज़ी हो जावेगी, इस बात की कल्पना उसने नहीं की थी। जब उसने मंजरी का संकोचपूर्ण, संक्षिप्त, किन्तु बुद्धि और विचार द्वारा दृढ़ और निश्चित उत्तर सुना तो वह पिछली रात की और उसके बाद तमाम दिन की सारी थकावट एकदम भूल गया। वह खूब अच्छी तरह समझ रहा था कि एक बहुत बड़े और कठोर उत्तरदायित्व-पूर्ण कर्तव्य का भार उसने लिया है, पर मंजरी की सहज स्वीकृति ने कर्तव्य के उस मनों-भारी बोझ को फूल से भी अधिक लघु और सहज-साध्य बना दिया।

उसी क्षण बाहर जाकर उसने एक ताँगा तय किया और उसे गली के पास खड़ा करवाके जब वापस आया तो मंजरी से तैयार होने के लिये कहा। मंजरी प्रकट में अत्यन्त धीरता के साथ उठी। पारसनाथ ने कहा कि इस समय केवल बिस्तर और बक्स ले चलने से काम चल जावेगा—बाक़ी चीज़ें बाद में ले जानी होंगी। यह कहकर उसने स्वयं मंजरी का बिस्तर बाँधना शुरू कर दिया। मंजरी चुपचाप बक्स में कपड़े और दूसरी आवश्यक चीज़ें रखने लगी। जब दोनों काम पूरे हो गए, तो पारसनाथ एक कुली को भीतर बुला लाया, और उससे बिस्तर और बक्स ताँगे पर रखने के लिए कहा। मकान में बाहर से ताला लगाकर दोनों गली से बाहर निकलकर ताँगे पर जा बैठे।

रास्ते-भर दोनों चुप रहे। बीच-बीच में मंजरी अपनी उदास, गंभीर और साथ ही कौतूहलपूर्ण दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखती थी, पर पारसनाथ की आँखों की ढिठाई से सकुचाकर मुँह फेर लेती थी।

जब पारसनाथ के मकान की गली के पास ताँगा पहुँचा, तो दोनों उतर पड़े। ताँगेवाले का किराया चुकाकर पारसनाथ ने एक मजूर को पुकारा और उसके सिर पर सामान रखकर मंजरी का हाथ पकड़कर उसने गली के भीतर प्रवेश किया। गंदी गलियों से यद्यपि मंजरी का यथेष्ट परिचय था, तथापि जिस गंदगी के बीच आज वह आ पड़ी थी, वह कुछ दूसरी ही क़िस्म की थी, इस बात का अनुभव वह मन-ही-मन करने लगी। उसे पग-पग पर सँभलकर दोनों ओर की नालियों से अपने कपड़े और जूते बचाकर चलना पड़ रहा था। कुछ दूर आगे चलकर उसे नाक बंद करनी पड़ी। टोले-मुहल्ले की औरतें और बच्चे उसे बड़े ग़ौर से देख रहे थे।

मकान का दरवाज़ा खुलने पर जब मंजरी ने भीतर क़दम रखा तो नाली की सड़ाँद से भी अधिक विकट गंध ने जैसे उसकी नाक पर आकस्मिक रूप से आक्रमण किया। अभी दिन नहीं डूबा था और बाहर पूर्ण प्रकाश था। पर पारसनाथ के मकान के भीतर, गलीनुमा रास्ते में, ऐसा घोर अन्धकार छाया हुआ था कि हाथ से हाथ नहीं सूझता था। मंजरी एक बार किसी चीज़ से ठोकर खाकर गिरते-गिरते बची। पारसनाथ ने दियासलाई जलाई। उसके सहारे वे लोग सहन में पहुँचे। वहाँ से जीने पर चढ़कर ऊपरवाले बरामदे पर जा पहुँचे। मंजरी ने देखा कि बाहर की तंग और गंदी गली में चारों ओर का रुद्ध वातावरण जिस क़दर दम घोटनेवाला मालूम होता था, ऊपर, पिछवाड़ेवाले चौड़े बरामदे से, उसी परिमाण में सब तरफ़ खुला हुआ, बाधा-बंधन-हीन दृश्य नज़र आता था। चारों ओर के कच्चे मकान पारसनाथ के मकान की तुलना में बहुत छोटे और सिमटे हुए से दिखाई देते थे, इसलिये हवा और रोशनी का प्रवेश वहाँ बेरोक-टोक होता था। बाहर गली में उसके अन्तर के विषाद की भयङ्कर कालिमा पर जो गाढ़तर काला रंग चढ़ गया

था वह ऊपर आने पर कुछ-कुछ धुल-सा गया। सामने, प्रायः एक फ़र्लांग की दूरी पर, एक नीम के पेड़ पर असंख्य बगुला बैठे हुए थे; ऐसा मालूम होता था जैसे किसी पहाड़ पर पड़ी हुई बर्फ़ से भी अधिक सफ़ेद जाल बिछ गया हो। उस पेड़ के पास ही एक मंदिर का चूड़ा डूबते हुए सूर्य की सुनहली आभा से चमक रहा था। उस पर झलकता हुआ प्रकाश मंजरी को, न मालूम क्यों, एक अपूर्व, रहस्यमयी आशा से काँपता हुआ-सा लग रहा था। अगल-बगल और सामने की दीवारों से सटे हुए मकानों के छप्परों के बीच से स्थान-स्थान पर धुँए के बादल उठते हुए दिखाई देते थे। रात-भर और दिन-भर की आत्मशोषी थकान के बाद मंजरी को उस नये वातावरण का एक साधारण से साधारण दृश्य अकारण ही सुखद और आशाप्रद-सा लग रहा था। उसे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे चौबीस घण्टों के भीतर, मृत्यु के सहस्र योजनव्यापी महासागर में डूबती-उतराती हुई, वह अचानक, अप्रत्याशित रूप से फिर एक बार जीवन के तट पर आ पहुँची हो। वह तट मानचित्र के ठीक किस स्थान पर है, वह भयंकर हिंसक जीव-जन्तुओं से युक्त किसी दुर्गम जङ्गल के पास उतरी है, या किसी ओर-छोररहित रेगिस्तान के पास, इस बात का कोई पता अभी उसे नहीं मिला था। केवल एक ही अनुभूति इस समय उसके मन-प्राण को छाये हुए थी—वह यह कि वह जीवन के ठोस धरातल पर आ पहुँची है, जिसकी आशा उसने एक प्रकार से छोड़ दी थी। प्रत्येक छोटी से छोटी बात भी उसे जीवन के केन्द्र की ओर खींचने में समर्थ हो रही थी। यहाँ तक कि खपरैल से छाई छतों पर से उठनेवाला धुँआ भी उसे विशेष महत्वपूर्ण मालूम हो रहा था। उत्तर की दीवार से लगे हुए मकान से अश्लील गाली-गलौज और झगड़े-फ़साद का क्रम शुरू हो गया था। और कोई समय होता तो मंजरी निश्चय ही इस तरह की बातें सुनकर सहम जाती। पर आज

उसने अनन्त अन्धकारमय मृत्युलोक में निवास करनेवाली अशरीरी-प्रेत-छायाओं के बीच से किसी प्रकार मुक्ति पाकर जीवन के छोर पर नये देश में और नये काल में पाँव रक्खा था इसलिए प्रत्येक घटना, प्रत्येक बात और प्रत्येक दृश्य उसे एक दम नया, और कौतूहलपूर्ण लग रहा था।

पारसनाथ ने अपने ही कमरे की एक तरफ़ उसके लिये खटिया लगा दी और बिस्तर बिछा दिया। दोनों अपने-अपने बिस्तर पर लेट गए। मंजरी ऐसी भयङ्कर थकावट मालूम कर रही थी कि चुपचाप लेट जाने के सिवा और किसी काम की कल्पना ही उसके मन में नहीं उठ पाई। कुछ देर तक वह लेटे-लेटे तरह-तरह की अस्पष्ट, अर्थहीन भ्रामरी कल्पनाओं में निमग्न रही। उसके बाद गहरी नींद में घोड़े बेचकर ऐसी बेख़बर सोई कि फिर दूसरे दिन धूप निकलने पर ही आँखें खुलीं।

सत्रहवाँ परिच्छेद

प्रायः तीन सप्ताह तक नये स्थान में मंजरी का मन बहुत डाँवा-डोल रहा। न वह किसी काम में ठीक तरह से जी लगा पाती थी, न ठीक तरह से कोई बात सोच पाती थी। इसमें संदेह नहीं कि वह नियमित रूप से खाना बनाकर पारसनाथ को खिलाती थी, और जिस दिन पारसनाथ होटल में खाना खाकर आता उस दिन वह स्वयं भी नहीं खाती थी। पारसनाथ मंजरी के यहाँ से बर्तन वगैरह सभी चीज़ें उठाकर ले आया था; जिससे एक छोटी-मोटी गिरस्ती का पूरा आडंबर जुट गया था। चाय भी महरी के भरोसे न छोड़कर मंजरी स्वयं बनाती थी। झाड़ू देने, बर्तन माँजने और कमरा ठीक तरह से सजाने,

आदि बातों के संबंध में वह बीच-बीच में महरी को हिदायत देती रहती थी। फिर भी वे सब काम वह मरे मन से, निद्रा-विचरण की-सी अवस्था में, करती थी। वह बहुत कम बोलती थी और पारसनाथ के आवश्यक प्रश्नों का बहुत ही संक्षिप्त उत्तर देकर रह जाती थी। पारसनाथ अत्यंत धैर्यपूर्वक, प्रत्येक विषय में उसका रुख देखकर, उससे बातें करता था, और बीच-बीच में उपयुक्त अवसर देखकर अत्यन्त शिष्टता, शालीनता के साथ आंतरिक स्नेह-भरे शब्दों में उसे दिलासा देने की चेष्टा करता रहा। मंजरी उसकी बातें सुनती थी, उन पर विचार करने की चेष्टा करती थी, पर फिर अपने भीतर के सीमाहीन अंधकार में मग्न होकर अपने को बिलकुल दबा और छिपा देने का प्रयास करती थी।

प्रायः तीन सप्ताह बाद एक दिन मंजरी की मनोदशा में एक ऐसा अनोखा, अप्रत्याशित और मूलगत परिवर्तन आया कि वह स्वयं विस्मय से विमूढ़ रह गई। वर्षा-ऋतु के बाद की प्रथम पूर्णिमा के दूसरे दिन की बात है। संध्या का समय था। धीरे-धीरे अँधेरा छाने लगा था। पारसनाथ किसी आवश्यक काम से बाहर गया हुआ था, और एक घंटे बाद लौट आने की सूचना दे गया था। मंजरी चूल्हे में तरकारी चढ़ा चुकी थी, और उसपर पानी छोड़कर, तनिक विश्राम का अवसर पाकर ऊपर बरामदे पर लोहे की एक कुर्सी पर बैठी हुई थी और सामने पूरब की तरफ़ से आकाश का दृश्य देख रही थी।

कुछ समय बाद पूर्व क्षितिज के ऊपर उज्ज्वल सोने के रङ्ग का चंद्रमा धीरे-धीरे उठता हुआ दिखाई दिया। नीम की सघन पत्तियाँ उसे ढकने के प्रयत्न में विफल सिद्ध हो रही थीं। पड़वा के प्रायः पूर्ण गोलाकार चंद्रोदय का वह दृश्य मंजरी को अकस्मात् एकदम नया और अपूर्व-परिचित सा लगा। वह बहुत देर तक एकटक उसकी ओर

देखती रही, जैसे वह उसके तीन वर्ष के नीरस और अनंत निराशा से पूर्ण, अर्धमृत जीवन की चरम परिणति के बाद आज अचानक अप्रत्याशित रूप से एक नया और निराला संदेश लेकर आया हो। देख-देखकर मंजरी अघाती नहीं थी। नव-जीवन-वाहक उस आकाश-दूत की दो सुंदर सरस आँखें अत्यंत स्निग्ध और मधुर दृष्टि से उसकी ओर देख रही थीं। वह सिर से लेकर पाँवों तक अपनी नस-नस में एक विचित्र पुलक की सिहरन का अनुभव करने लगी। उसका हृदय एक अनोखे उन्माद की गुदगुदी से फड़कने लगा, और उसकी आँखें एक विकल सुखानुभूति से गीली हो आईं।

सहसा एक तारा न जाने किस रहस्यमय लोक से टूटकर आनन्द-वाण की तरह तीव्र प्रकाश से झलमलाता हुआ उसकी दृष्टि से ओझल हो गया। चारों ओर के कच्चे मकानों से उठे हुए अदृश्य धुएँ से उसकी आँखों में जिस कड़वेपन की जलन का अनुभव हो रहा था, वह भी उसकी उस समय की मार्मिक हर्षानुभूति के साथ मिलकर एकाकार हो गई थी, और इन दोनों प्रकार की अनुभूतियों से निकले हुए आँसू एक रूप में मिलकर अविरल धारा से उसके गालों से होकर बहते जाते थे। इतने दिनों से जिस अतलव्यापी, दुर्दमनीय दुर्बलता से उसका मन दबता चला जाता था, और एक अथाह दलदल में फँसे हुए व्यक्ति की तरह, उबरने की चेष्टा करने पर अधिक वेग से निरंतर नीचे को धँसता जा रहा था, उसे जैसे अचानक टेक मिल गई। अपने बचपन से लेकर वर्तमान समय तक के जीवन-इतिहास के जिन पन्नों को वह इतने दिनों तक एक मज़बूत डोरे से बाँधकर मन के किसी अगम अंधकारमय कोने में बंद रखे हुए थी, और अत्यंत अप्रिय और डरावनी, भूत-प्रेतों की तरह काली-काली स्मृतियों के जगने के भय से उन्हें छूने तक का साहस नहीं करती थी, वे अकस्मात् किसी मायावी-स्पर्श से बंधन-मुक्त होकर, आग की लपटों के समान

जलते हुए अक्षरों से जगमगाते हुए, रात में उड़नेवाले भिन्न-भिन्न आकृतियों के, रंगे बिरंगे और प्रकाशमय गुब्बारों की तरह, एक-एक करके उसकी मानसिक आँखों के सामने से होकर उड़ने लगे। एक-एक गुब्बारे में जैसे उसके विगत जीवन के प्रतिपल की जलन और तपन का चित्रमय इतिहास अंकित था। पर चाहे कैसी ही भयंकर और घोर दुःखपूर्ण स्मृतियाँ उनमें अंकित क्यों न हों, इस समय वे मञ्जरी के प्रायः अतींद्रिय पुलकानुभव को बढ़ाने में ही सहायक सिद्ध हो रहे थे। वह ऐसा महसूस करने लगी कि इतने वर्षों से वह जिस व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक हीनता की अनुभूति से, अनजान में या अनजान में, अत्यन्त निर्ममता के साथ पीड़ित होती आई थी, उसकी अतल में जड़ जमाई हुई कील, जैसे फूटे हुए फोड़े के गद्गद प्रवाह के साथ, बाहर को निकल आई। उसके अवचेतन मन की किसी गुप्ततम गुहा में दबी हुई आत्मरक्षा की स्वास्थ्यकर प्रवृत्ति जैसे किसी जादूगरनी की सोने की छड़ी के स्पर्श से जाग उठी, और उसके कानों में यह मन्त्र गुनगुनाने लगी—"तुम्हें अपने पिछले जीवन के समस्त जटिल बन्धनों को तोड़कर, कुटिल काँटेदार तारों के आलजाल से उलझी हुई दुःखद गाँठों को खोलकर, आगे बढ़ना होगा। पग-पग पर पिछली स्मृतियों को कुरेदते रहने से तुम केवल जड़ मृत्यु के अन्धकूप में सड़ती रहोगी। तुम्हारे चिर-कष्टमय जीवन का जो एकमात्र सहारा—माँ का स्नेह-अञ्चल—तुमसे छिनकर, काल की प्रबल आँधी के झोंके से उड़कर, अनन्त शून्य में विलीन हो गया है, उसके लिये रोते रहने से निर्वाण के कराल काल-गर्भ में चिरकाल तक घुलते रहने के सिवा कोई लाभ तुम्हें नहीं होगा। इसलिये उस कँटीली स्मृति को जड़ से नष्ट करके तुम्हें आगे बढ़ना होगा। जिस व्यक्ति ने तुम्हारी चरम संकट की स्थिति में तुम्हारे लिये अपना हाथ बढ़ाया है, उसके प्रति इस क़दर उदासीन रहना निश्चित विनाश के गर्त की ओर पग रखना है। चारों

ओर के अंधेरे-घुप में प्रकाश की रेखा लेकर जो व्यक्ति टूटते हुए तारे की तरह तुम्हारे जीवन में अकस्मात् आया है, उसे हर हालत में तुम्हें अपनाना होगा, यदि तुम यथार्थ जीवन से कुछ भी सम्बन्ध जोड़ना चाहती हो तो! सम्भव है, उस टूटते हुए तारे ने जिस जीवन पथ की ओर संकेत किया है, उस मार्ग में चलने से अनिश्चित भविष्य में जीवन का कोई निश्चित प्रकाशमय लक्ष्य सामने आ जाय!"

यह देववाणी अथवा अन्तरात्मा की चेतावनी ठीक इसी रूप में, इन्हीं शब्दों में उसके आगे व्यक्त हुई हो, ऐसा नहीं। पर इस आशय के एक अस्पष्ट, अपरिस्फुट आभास ने उसके चित्त की इतने दिनों की जड़ अवस्था को एक छोर से दूसरे छोर तक हिला दिया, और जीवन, समाज और व्यक्तियों के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण ही एकदम बदल दिया।

इतने में नीचे किवाड़ खटखटाने का शब्द हुआ। आज की उस नयी, संजीवनी पुलकानुभूति की मधुर कंपकँपी में बल खाती हुई, वह लालटेन हाथ में लेकर दरवाज़ा खोलने गई। किवाड़ खुलते ही पारस-नाथ ने भीतर प्रवेश किया। अपने पीछे दरवाज़ा बन्द करते हुए बोला—"मुझे लौटने में देर तो नहीं हो गई!"

बड़े नाज़ से मुँह फुलाती, और कृत्रिम मान की अव्यक्त मुसकान मुख पर झलकाती हुई मञ्जरी बोली—"देर तो आप करते ही हैं! मेरे साथ अधिक समय तक रहना आपको अच्छा लगता है नहीं, इसलिये किसी न-किसी बहाने टले रहना चाहते हैं!"

पर उसकी आँखों से पता चलता था कि जो बात वह कह रही है उसकी सचाई पर स्वयं उसे विश्वास नहीं है। आज उसके हाव-भाव और बात करने के ढङ्ग में पारसनाथ ने एक ऐसा आमूल परिवर्तन पाया कि उसका कोई सम्भव या असम्भव कारण उसकी समझ में नहीं

आ रहा था। पर कारण समझ में न आने पर भी मंजरी का वह बदला हुआ रुख देखकर उसके हृदय में एक ऐसी मीठी वेदना से भरी गुदगुदी उठने लगी कि अपना वह हर्ष-गद्गद भाव छिपाना उसके लिये कठिन हो गया।

मंजरी लालटेन दिखाती हुई भीतर की ओर चलने लगी और पारसनाथ उसके पीछे-पीछे चलता हुआ पुलकित स्वर में बोला—"नहीं मंजरी, बात ऐसी नहीं है। तुम्हारी यह धारणा बड़ी भारी भूल से भरी हुई है। तुमसे दूर भागने की इच्छा मेरे अनजान में—स्वप्न में भी—कभी मेरे मन में नहीं समा सकती। फिर भी मैं मानता हूँ कि मैं तुमसे थोड़ा बहुत कतराता अवश्य हूँ। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं इच्छा से ऐसा करता हूँ। मेरे कतराने का कारण केवल यह है कि अपने प्रति तुम्हारा मनोभाव मैं अभी तक ठीक तरह से नहीं समझ पाया हूँ। इसके अलावा मैं स्पष्ट देखता आया हूँ कि आजकल तुम अपने ही मनोभावों में डूबे रहना पसन्द करती हो। मेरे सब समय निकट रहने से कहीं तुम्हारी इस एकांतमग्नता में विघ्न न पहुँचे, इस डर से मैं बीच-बीच में तुम्हें अकेली छोड़कर चला जाता हूँ। पर मैं आज यह पहली बार महसूस कर रहा हूँ कि तुम्हारे मनोभाव के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा करके मैं बड़ी ग़लतफ़हमी में रहा।"

लालटेन लेकर मंजरी रसोई के कमरे में पहुँची, और पारसनाथ भी वहीं गया। लालटेन खूँटी पर टाँगकर मंजरी एक थाली में कुछ आटा लेकर गूँदने बैठ गई। पारसनाथ भी एक पीढ़े पर बैठ गया। आटा गूँदते हुए मंजरी ने उसी सरस मधुरता से आँखें घुमाते हुए कहा—"आपकी बात से यही प्रकट होता है कि आप मुझसे प्रेम नहीं करते, बल्कि डरते हैं।"

इसके पहले कभी उसने इस तरह खुलकर, स्पष्ट शब्दों में कोई बात मुँह से नहीं निकाली थी। पारसनाथ को ऐसा लगा कि मञ्जरी के मौन-विषाद की जो छाया इतने दिनों तक उसके भी मन पर अपने गाढ़े काले आभास का पर्दा डाले हुए थी उसे सहसा जैसे किसी ने बीच से फाड़कर चीरकर फेंक दिया। अपने स्वर में आवश्यकता से अधिक कोमलता लाने की चेष्टा करता हुआ वह बोला—"अगर तुम विश्वास करो तो अपने मन की सच-सच बात तुम्हें बताऊँ!"

"बताइए,"—धीरे से मञ्जरी ने कहा।

"तो सुनो। मैं तुम से प्रेम भी करता हूँ और डरता भी हूँ। ये दोनों बातें इस हद तक एक दूसरे से मिली हुई हैं कि एक को दूसरे से अलग करना कठिन है। फिर भी एक बात पर तुम विश्वास कर लो। वह यह कि तुमसे जो मैं डरता हूँ उससे तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम में कोई कमी आने के बजाय और अधिक गहराई और गंभीरता आ गई है—कम-से कम मैं ऐसा समझता हूँ।"

मञ्जरी अत्यंत तीखी दृष्टि से परीक्षक की तरह पारसनाथ की ओर देख रही थी, जैसे उसके मन के भीतर की सही-सही बात मालूम करने का प्रयास कर रही हो। जब पारसनाथ रुक गया, तो उसकी आँखों के कुछ-कुछ म्लान भाव से पारसनाथ को ऐसा लगा कि बात का ठीक-ठीक स्वरूप उसके आगे स्पष्ट नहीं हुआ। वह सिर नीचे की ओर करके साने हुए आटे को पूरी ताकत से दबाकर गूँदने लगी। कुछ देर तक दोनों मौन रहे! तरकारी भक-भक शब्द से पक रही थी, और आवश्यकता से अधिक पक चुकी थी। मञ्जरी ने अनमन होने के कारण अभी तक उतारा नहीं था।

कुछ समय बाद पारसनाथ अपनी बात के सिलसिले में कहने लगा—"मुझे कभी-कभी स्वयं इस बात पर आश्चर्य होता है कि

मैं तुमसे डरता क्यों हूँ। अपने जीवन में मैं कभी किसी भी स्त्री से, किसी भी अवसर पर, किसी भी कारण से नहीं डरा। अगर सच पूछो—सच पूछो—तो मैं स्त्रीमात्र से अत्यंत घृणा करता आया हूँ और उसे सैकड़ों डंक, हजारों तीखे पंजे और लाखों विषैले कीटाणुओं से युक्त, एक घोर घातक और हिंसक जीव के तौर देखता आया हूँ..."

मंजरी ने आटा गूँदना छोड़ दिया और वह आँखें फाड़-फाड़कर अत्यंत भीत और चकित दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखती रह गई। पारसनाथ की प्रज्वलित आँखों में और तमतमाए हुए मुख पर लालटेन की जली हुई बत्ती और चूल्हे की आग की लपटों का प्रकाश पड़ने से उनसे एक अनोखी रहस्यमयी भौतिक प्रतिच्छाया निखर रही थी। उसे देख-देखकर मञ्जरी के मन में घबराहट अवश्य उत्पन्न हो रही थी, पर साथ ही वह इस बात पर भी ध्यान दे रही थी कि पारसनाथ का ऐसा सुंदर, सतेज रूप इसके पहले उसके देखने में कभी नहीं आया। पारसनाथ का वह ज्वलंत सौंदर्य उसे जितना ही आश्चर्यजनक लग रहा था उतना ही उन्मादक भी।

पारसनाथ उसी आवेग के साथ, जैसे अपने-आप से कहता चला गया—"मेरे बिखरे हुए जीवन के घोर पीड़ित क्षणों में सारी स्त्री-जाति के विरुद्ध कभी-कभी ऐसी भयंकर प्रतिहिंसा की कल्पना मेरे मन में जगी है जिस पर इस समय स्वयं मुझे विश्वास नहीं होना चाहता। वह दिन, वह स्थान और वह समय भी मुझे स्पष्ट याद आ रहा है जब दार्जिलिंग की किसी एक एकांत सड़क पर अकेले टहलते हुए उस विचित्र प्रतिहिंसा का एक ऐसा विकट, वीभत्स और राक्षसी रूप मेरी मानसिक आँखों के आगे नंगा होकर नाचने लगा कि सोच-सोच कर मैं अभी सिहर उठता हूँ। मैं यह इच्छा करने लगा कि सारी नारी-जाति एक विराट् अग्नि-सागर में डूबकर विनष्ट हो जाय, और

उसका अस्तित्व कहीं किसी भी रूप में शेष न रहे। कैसी भयंकर, कैसी दिल दहलानेवाली नारकीय कल्पना है यह! ज़रा सोचो तो सही!"

मञ्जरी ने आटा गूँदना छोड़ दिया था। पारसनाथ के तमतमाए हुए मुख और जलती हुई आँखों की भीतिकता ने पहले से भी अधिक लोमहर्षक रूप धारण कर लिया था। मंजरी खोई, भरमाई हुई-सी, सन्न अवस्था में एकटक उसकी ओर देख रही थी। उसकी सहज सहानुभूति से भरी दृष्टि पारसनाथ के मुख के हिंसक भाव की ओट में छिपी हुई एक ऐसी विशेषता पर गड़ गई थी, जो उसे सबसे अधिक आश्चर्य में डाल रहा था। वह किसी एक अज्ञात संस्कार की प्रेरणा से इस बात पर ग़ौर कर रही थी कि पारसनाथ की उस हिंसकता के नीचे किसी एक अव्यक्त कोने में एक मर्मघाती पीड़ा झलक रही है। पर न तो उस दानवी-हिंसा का कोई कारण उसके सामने आ रहा था, न उस अव्यक्त वेदना का।

पारसनाथ क्षणभर के लिये चुप रहा, और मर्मघाती दृष्टि से, अनमने भाव से, मञ्जरी के अवनत सिर की ओर देखता रहा। फिर बोला—"मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरी इस भयंकर नाशकारी और समाजघाती कल्पना की बात सुनकर तुम मुझसे घृणा करने लगोगी। आज मैं स्वयं अपनी इस ध्वंसक मनोवृत्ति की हीनता से भलीभाँति परिचित हो गया हूँ। पर इस बात की कल्पना से मेरे भीतर कोई चीज़ रह-रहकर टीस मारने लगती है कि कभी किसी कारण से नारी-जाति के प्रति मेरे विद्वेष की आग बढ़ते-बढ़ते प्रलय की बाढ़ की तरह फैल गई थी। कभी एक दिन, एक क्षण के लिये भी, मैंने स्त्री-जाति के खिलाफ़ कुंभीपाक से भी हज़ारगुना अधिक लोमहर्षक नरक की कल्पना की है, यह सोच-सोचकर बीच-बीच में मेरा हृदय हहर उठता है और मुझे ऐसा अनुभव होने लगता है कि मैं निश्चित रूप से

पागल हो जाऊँगा। यह तो मैं नहीं कह सकता कि आज वह आग बुझकर राख बन गई है—नहीं, अभी उसके बहुत-से अंगारे शेष हैं, हालाँकि राख से ढक गए हैं। पर इतना ज़रूर है कि उनसे तब तक कोई ख़तरा नहीं है जब तक मैं उन्हें स्वयं न दहकाना शुरू करूँ। जानती हो मञ्जरी, मेरी वह सर्वभक्षी आग अपने-आप इस हद तक ठंडी क्यों पड़ गई ! जिस दिन मैंने पहले-पहल तुम्हें होटल में देखा उस दिन मुझे कुछ ऐसा भान हुआ कि मेरे जीवन के ओर-छोरहीन, धधकते हुए रेगिस्तान में बरसाती हवा का एक झोंका बह चला, और तर बादलों की एक अस्पष्ट रेखा जलते हुए क्षितिज के एक कोने में दिखाई दी। उसके बाद वह रेखा दिन-पर-दिन घनी होती गई और ऊपर, रेतीली धूल से धुँधले आकाश में, फैलती चली गई। तुम्हारी माँ की मृत्यु की रात में वे बादल हम दोनों के गाढ़ मिलन के आँसुओं के रूप में पहली बार बरसे।" यह कहते हुए पारसनाथ की आँखें सजल हो आईं और आँसू के अस्फुट कण कोयों में चमकने लगे।

मंजरी सहसा उठ खड़ी हुई, और हाथ धोकर, साड़ी के पल्ले से पोंछकर, पारसनाथ के एकदम निकट चली गई और घुटने टेककर बैठ गई। उसके बाद उसने बायाँ हाथ उसके गले में डालकर, अपनी अधमुँदी आँखों को उसकी आँखों से सटाकर, अचानक एक अनोखे आवेश से पारसनाथ को बच्चों की तरह चुमकारा और बार-बार उत्कट मोह से चुमकारती चली गई। उसकी आँखों से उस काली रात की ही तरह आँसुओं की गंगा-जमुनी धाराएँ विह्वल वेग से ढलक रही थीं और पारसनाथ के गालों को तर कर रही थीं। जब उसका आवेश कुछ शांत हुआ, तो सहज वेदना की पूर्ण दृष्टि को पारसनाथ की गीली आँखों पर गड़ाकर, उसकी गर्दन को अपनी बाँहों से और अधिक कसकर जकड़ती हुई, पुचकार भरी आवाज़ में धीरे से बोली—"आप बहुत ही दुःखी हैं, बहुत ही ! मुझसे कई गुना अधिक !"

पारसनाथ का दाहिना हाथ मंजरी की पीठ पर स्थापित था। वह अनमने भाव से कभी उसकी पीठ को धीरे से थपथपा रहा था, कभी सहलाता था। उसने अपनी लम्बी साँस दबाने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए कहा—"तुम ठीक ही कहती हो, मंजरी! मैं सचमुच बहुत ही दुःखी, बड़ा ही दयनीय हूँ। तुम्हारे दुःख का कारण तुम्हारी अनाथ अवस्था है। तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं, भाई नहीं है, बहन नहीं है, अपना कहने को कोई भी संसार में शेष न रहा। तुम्हारे दुःख का मूल कारण यह है। यह एक बहुत बड़ा कारण है, मैं मानता हूँ। पर मैं सनाथ न होने पर भी अनाथ हूँ, सब-कुछ होने पर भी मुझे एकदम रीता रह जाना पड़ा है। संसार के खुले आँगन में, समाज की भरी सभा के बीच में, मेरे लिये कहीं कोई स्थान नहीं रह गया है; इसलिये इस बन्द गली के घोर नरक में जीवन बिताने के लिये मुझे बाध्य होना पड़ा है। पिछले सात वर्षों से मैं जहाँ भी रहा हूँ, इसी प्रकार के नारकीय वातावरण में सड़ने के लिये मजबूर हुआ हूँ। इस प्रकार दिन-रात नरक में रहने के कारण मैं मनुष्य-समाज के प्रति विद्रोह, प्रतिहिंसा और घृणा की आग को सुलगाता चला गया हूँ। जिस दिन मुझे पहले-पहल मालूम हुआ कि मैं अपनी माँ के प्रेमी का पुत्र हूँ न कि उसके पति का, उस दिन जो विस्फोट मेरे भीतर हुआ उसने मेरे जीवन के स्वप्नों और आदर्शों को उलट दिया। तब से कैसी-कैसी भयंकर मानसिक उलझनों और विकृतियों के तूफ़ान के बीच से होकर मुझे गुज़रना पड़ा है, इसकी कल्पना तक तुम नहीं कर सकोगी।"

मंजरी के आँसुओं की गति सहसा एकदम रुक गई। उसकी आँखें गीली होने पर भी उसकी भ्रान्त दृष्टि जैसे बिलकुल खुल गई थी। उसने फुसफुसाते हुए कहा—"यह आप क्या कहते हैं!"

"मैं ठीक ही कहता हूँ, मंजरी। स्पष्ट ही मेरी बात से तुम्हें भयं-

कर धक्का पहुँचा है, और ऐसा होना स्वाभाविक है। तुम्हें केवल धक्का ही नहीं पहुँचा होगा, बल्कि इस बात से मेरे प्रति तुम्हारी समवेदना भी घृणा में बदल सकती है। पर अगर मैं अपने मर्म की उस पीड़ा को तुम्हारे आगे भी व्यक्त न करूँ जो मुझे प्रतिदिन, प्रतिपल काठ के भीतर छिपे हुए कीड़े की तरह काट रही है, तो संसार में दूसरा कौन ऐसा व्यक्ति है जिसके आगे मैं अपना जी इस तरह खोल सकता हूँ? मेरी अंतरतम बात सुनने के बाद अब तुम्हें पूरा अधिकार है कि तुम मुझसे घृणा करो। मैं तुम्हें केवल यह बता देना चाहता था कि मैं घृणा के ही योग्य हूँ, किसी का प्रेम और समवेदना पाने योग्य नहीं।

"उफ़! उफ़! तुम बड़े अभिमानी हो!" कहकर मंजरी ने फिर एक बार आवेश में आकर उसकी गीली आँखों को चूम लिया और अपने गाल से उसके आँसुओं को पोंछने लगी।

"तुम क्या, मंजरी, यह जानने पर भी कि मैं अपनी माँ के पति का पुत्र नहीं हूँ, तुम मुझे घृणा के योग्य नहीं समझतीं?"

"नहीं, नहीं, क़तई नहीं! आप किसी भी हालत में घृणा के योग्य नहीं हैं। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि आप बहुत ही दुःखी हैं, बहुत ही! और, कोई भी दुखी आदमी घृणा के योग्य नहीं हो सकता, चाहे वह कितना ही हीन क्यों न हो।" यह कहकर वह एक बार उसकी बाँई आँख और फिर दाहिनी आँख से निकलनेवाले आँसुओं को गाल से पोंछने लगी। कुछ देर तक दोनों उसी अवस्था में मौन बैठे रहे। उसके बाद मंजरी उठ खड़ी हुई और चूल्हे से तरकारी उतारकर पराठे तैयार करने के काम में जुट गई।

अठारहवाँ परिच्छेद

खा-पी चुकने के बाद पारसनाथ अपने पलँग पर जाकर लेट गया। पासिन आकर बर्तन माँजने लगी, और मंजरी उसे काम बताने के उद्देश्य से नीचे ही रह गई। जब पासिन चली गई, तो भीतर से दरवाज़ा बंद करके मंजरी भी ऊपर चली गई। पारसनाथ दीवार की ओर मुँह करके लेटा हुआ था, सोया नहीं था। मंजरी ने लालटेन बुझाकर उसे धीरे से एक कोने में रख दिया। उसके बाद बहुत ही धीमी आवाज़ में, अत्यंत कोमल और मधुर स्वर में बोली—"सो गए क्या?"

पारसनाथ ने करवट बदली और कहा—"नहीं तो यों ही लेटा हुआ था।"

मंजरी धीरे से उसी पलँग पर बैठ गई जिस पर पारसनाथ लेटा हुआ था, और अपनी लंबी-लंबी, कोमल और अनुभूतिशील उँगलियों से धीरे-धीरे उसके सिर के घुँघराले बालों को सहलाने लगी। इसके कुछ ही समय बाद वह सहसा उसी पलँग पर लेट गई, और पारसनाथ को अपनी दाहिनी बाँह से जकड़कर उससे लिपट गई। आज पहली बार वह पारसनाथ के साथ लेटी थी। यह सोच सोचकर पारसनाथ हैरान था कि जो नवयुवती इतने दिनों तक इस क़दर संकोचशील रही कि दिन-भर में मुश्किल से दस-पाँच अस्फुट वाक्य मुँह से निकाल पाती थी, वह आज अकस्मात् इस हद तक ढीठ कैसे बन गई कि अपने आप आकर उससे लिपट गई! यह कैसे संभव हो गया! अपनी पतित आत्मा की निपट नीचता की बात सुनाकर उस रहस्यमयी के अंतर के किस सुकोमल स्थान को उसने अपने अनजान में स्पर्श कर दिया, जहाँ से घृणा के बजाय करुणा और समवेदना का अनंत स्रोत मुक्त होकर

फूट पड़ा ! उसे ऐसा लगा कि अपने इतने दिनों तक के घोर विकृत, निष्क्रिय और अवारा जीवन में आज पहली बार उसे एक ऐसी सफलता मिली है जो सच्चे अर्थों में महत्वपूर्ण कही जा सकती है। मंजरी के लिपटने से उसे जो रोमांच की अनुभूति हो रही थी वह केवल शारीरिक ही नहीं थी, उसका हृदय, बुद्धि और समस्त आत्मा भी रोमांचित हो रही थी।

उस रात से मंजरी के साथ उसका पति-पत्नी का-सा संबंध स्थापित हो गया। उस संबंध से दोनों के जीवन की प्रगति, अनुभूति और दृष्टि-कोण में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन के चिह्न साफ झलकते हुए दिखाई दिए। पारसनाथ के भीतर के जिन फोड़ों ने नासूर का रूप धारण कर लिया था उनके घाव जैसे भरने लगे हों—उसे ऐसा अनुभव होने लगा। अपने पिछले जीवन की सब ग्लानियों को वह भूलने-सा लगा, और एक ऐसी शांत, संयत, स्वस्थ और सबल अनुभूति का-सा आभास उसके मन की ऊपरी सतह पर छाने लगा जो उसके लिये एकदम नयी थी।

मंजरी को ऐसा महसूस हो रहा था कि उसके इतने वर्षों के टूटे-फूटे और बिखरे हुए जीवन के आकाश के ऊपर जो एक धुंध-सा चारों ओर छाया हुआ था वह फट गया है, और एक कोने से हटता चला जा रहा है। उस फटे हुए स्थान के भीतर से अपने भावी जीवन के लक्ष्य की निश्चित-सी झाँकी उसे दिखाई देने लगी थी।

पारसनाथ पहले से भी अधिक स्फूर्ति और कर्मण्यता के साथ चित्रकारी के काम पर जुट गया। पहले उसके मन में इस बात की ग्लानि सब समय बनी रहती थी कि उसकी कला के सच्चे रूप की क़दर कोई नहीं करता और जो थोड़ी बहुत पूछ होती है वह केवल उसके बाजारू चित्रों की ही होती है; अब उस बात की तनिक भी

ग्लानि उसके मन में शेष नहीं रही, और वह धड़ल्लेसे बाजारू चित्र अधिक से अधिक संख्या में तैयार करके सस्ते से सस्ते दामों पर उन्हें बेचने लगा। ग्लानि न होने का सबसे बड़ा कारण यह था कि जो कर्तव्य उसके सामने आ गया था उसकी महत्ता उसके आगे सुस्पष्ट हो गई थी। उस कर्तव्य को किसी भी उपाय से पूरा करने में जो सुख था, कला की बेकदरी का दुःख उसके आगे नाचीज़ था। मंजरी का परिपूर्ण प्रेम-जनित आत्म-समर्पण पाकर वह अपने इतने दिनों तक के मलिन और भ्रष्ट जीवन को सार्थक समझने लगा था।

मंजरी को ऐसा बोध होने लगा था जैसे वर्षों तक भूल से भरी, उलझी हुई, अस्वाभाविक और अवास्तविक परिस्थितियों के बीच जीवन बिताने के बाद उसके जीवन का क्रम अचानक किन्हीं दैवी हाथों से सुलझ पड़ा है, और वह सहज, स्वाभाविक और ठीक परिस्थितियों के बीच में अपने-आप, बिना किसी चेष्टा के, किसी रहस्यमय नियम के क्रम से आ पड़ी है। पारसनाथ ने स्त्री-जाति के संबंध में अपनी जिस हौलनाक, प्रचंड हिंसापूर्ण राक्षसी अंतःप्रवृत्ति के अस्तित्व का वर्णन उसके आगे किया था, उससे उसके मन में न तो तनिक भय का संचार हुआ था, न पारसनाथ के खिलाफ प्रतिक्रिया के रूप में किसी प्रकार की अप्रिय भावना ही उसके मन में जगी थी। बल्कि यह सोचकर उसे आश्चर्य हो रहा था कि पारसनाथ की उस खूंखार मनोवृत्ति का परिचय मिलने पर उसके मन के नीचे इतने दिनों तक दबा हुआ प्रेम किसी भूकंप के कारण, चट्टान के भीतर से फौवारानुमा सोते की तरह, तल से सतह तक उमड़ उठा, और बाहर निकल आया। पारसनाथ को उसने जिस दिन पहले-पहल होटल में देखा था, तभी से उसके प्रति वह अपने मन में एक निराले आकर्षण का अस्पष्ट अनुभव-सा करने लगी थी। पर उस अनुभूति को उस समय उसने अपने मन में इसलिये विशेष महत्व नहीं दिया था कि उस

अस्फुट वेदना की कोई सार्थकता तक उसकी समझ में नहीं आ रही थी। तब उसने सोचा था कि डाकगाड़ी से कई गुना अधिक तेज़ी से चलनेवाले जीवन की प्रगतिशील यात्रा के बीच में न जाने कैसी-कैसी परिस्थितियाँ कैसे-कैसे व्यक्तियों को स्टेशनों के प्लेटफ़ार्मों पर क्षणकाल के लिये सामने लाकर खड़ा कर देती हैं; उन्हीं में से एक व्यक्ति वह—पारसनाथ— भी है। पर दूसरे दिन जब पारसनाथ ने अकेले में, होटल के एकांत कमरे में, उसे बुलाया, तो मंजरी को ऐसा लगा कि वह नव-परिचित व्यक्ति स्टेशनों के प्लेटफ़ार्मों पर खड़े रहने वाले साधारण यात्रियों से भिन्न है, और अपनी एक अलग विशेषता रखता है। उसके शील से, बात से, व्यवहार से मंजरी ऐसा अनुभव करने लगी कि वह व्यक्ति उसके लिये नया नहीं है; जैसे पिछले जीवन के किसी भूले हुए क्षण में वह एक बार पहले भी उससे मिल चुकी है—केवल मिली ही नहीं है, बल्कि उसका काफ़ी घनिष्ठ सम्बंध भी उससे रह चुका है। पर कहाँ! किस क्षण में! किस जन्म में! किस लोक में! दूसरे दिन जब पारसनाथ ने फिर उसे होटल में बुलाया और अपने भीतर की किसी अत्यंत मार्मिक गुप्त पीड़ा का आभास उसे दिया, तो वह उसके और भी निकट आने को महसूस करने लगी। पर फिर भी इस प्रकार की कोई आशा, आकांक्षा या विश्वास उसके मन में उत्पन्न नहीं हुआ कि वह नव-परिचित सुन्दर और सुशील युवक उसकी जीवन-परिधि का केन्द्र बन सकता है।

उसके बाद जिस दिन पारसनाथ उसके मकान का पता लगाकर उसके पास पहुँचा, उस दिन पहले-पहल उसके अंतर्मन को यह सूचना मिली कि वह युवक उसके जीवन के अत्यंत निकट आ गया है, और उस निकटता के परिणाम-स्वरूप वह अपने जीवन की डोर से उसके जीवन को बाँधे बिना न रहेगा। जिस गठजोड़े की कल्पना का आभास उस दिन उसके भीतरी मन को मिला था उसकी

यथार्थता उस कालरात्रि में संभव हुई जब वह और पारसनाथ अखंड वर्षा की प्रलय-लीला के बीच में, निर्जन और एकांत घर में, उसकी माँ के मृत शरीर की निगहबानी कर रहे थे। चारों ओर अँधेरा और मौत का एकच्छत्र राज्य देखकर उन दोनों के अतल में सोया हुआ पशु-संस्कार—जीवन की ओर खींचनेवाला संस्कार—जैसे एक-साथ जाग पड़ा था, और दोनों उस घुप अंधकार में टटोलते हुए जीवन की क्षीण से क्षीण प्रकाश-रेखा को भी पकड़ने के लिये अधीर हो उठे थे। उस अधीरता का ही परिणाम था कि दोनों अपने अनजान में, मृत्यु के लहराते हुए तूफानी समुद्र के ज़ोर में, एक दूसरे को व्याकुल भाव से जकड़कर, भागते हुए जीवन का उड़ता हुआ पल्ला पकड़कर, आत्मरक्षा करने में समर्थ हुए थे। माँ के मृत शरीर के रूप में मूर्तिमान मौत को साक्षी मानकर मंजरी ने पारसनाथ का जो बाहुबंधन स्वीकार किया था उसकी चरम परिणति जब उस नये मकान में आने के प्रायः एक महीने बाद हुई, तो उसने उस नये अनुभव को अत्यंत स्वाभाविक रूप में ग्रहण किया। उसके कौमार्य की अनुभूति का जो आकस्मिक खंडन हुआ उससे किसी प्रकार का धक्का उसे जान में या अनजान में नहीं पहुँचा। पर उससे एक पुलक-भरे विस्मय की आकुलता अवश्य उसके भीतर उत्पन्न हुई। उसे ऐसा लगा कि उसके पिछले जीवन की संकीर्णता ने जो एक भयंकर काला पट अलंघ्य दीवार की तरह उसके चारों ओर खड़ा कर रखा था, और उसके मन में यह धारणा जमा रखी थी कि उसके परे केवल मृत्युमयी मरुभूमि का दिगंत प्रसार और अनंत कालरात्रि के सिवा और कुछ नहीं है, वह जैसे अचानक अपने आप फट गया, और उस दरार के उस पार विपुल जीवन का खुला हुआ विस्तार अनेक रंगों और रूपों में उसकी मानसिक आँखों के आगे झलकने लगा। वह सोचती कि इतने दिनों तक जीवन का इतना बड़ा फैलाव उससे एकदम छिपा रहा, यह कैसे संभव हुआ! और जिस

आँखें गड्ढों के भीतर एकदम धँसी हुई, गालों की हड्डियाँ बाहर को निकली हुई, नाक मरोड़ी हुई, और ठुड्डी का पतला-सा सिरा नीचे झूलता हुआ-सा। ऐसा जान पड़ता था जैसे कोई घोर प्रतिहिंसा-परायण प्रेतात्मा नरक की अंध गुहा के अतल और अगम-अंधकार के किसी छिद्र से पहली बार बाहर की ओर झाँक रहा हो।

नंदिनी ने जब देखा कि पारसनाथ चित्र का मज़ाक उड़ाने के बजाय अत्यंत गंभीर मुद्रा से उसे देख रहा है, और उसमें तल्लीन-सा हो गया है, तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कुछ क्षण वह स्तब्ध भाव से उसकी ओर देखती रही, उसके बाद अचानक उठ खड़ी हुई और पारसनाथ के हाथ से चित्र को छीनती हुई परिहास के स्वर बोली—"इस प्रकार अपनी छवि पर आप ही मुग्ध होना किसी
ी उचित नहीं है!"

र जैसे आधीरात के घोर दुःस्वप्न से चौंक उठा। उसकी
ी तक भ्रांति का भाव वर्तमान था। उसी दृष्टि से वह
की ओर देखता हुआ सोचने लगा—अपने अवचेतन
ोमहर्षक अंतर्दृष्टि की अज्ञात प्रेरणा से वह उस प्रकार
समर्थ हुई। वह जानता था कि चित्रकला
रुआ नहीं है, पर कैसा ही नौसिखिया
कि का रेखाचित्र अङ्कित करता हुआ
आ रूप नहीं दिखावेगा—सब नहीं
अवश्य ही उसमें अवश्य स्पष्ट या
जावेंगे। पर नंदिनी ने जो चित्र खींचा
ाथ की बाहरी आकृति की किसी भी
ुसपर तारीफ़ की बात यह थी कि
ुदृढ़ और सुपरिस्फुट थी कि इस बात

पर विश्वास नहीं होना चाहता था कि वह किसी अनाड़ी चित्रकार की कृति है। आज पहली बार नंदिनी वास्तविक कला की एक भेदभरी कृति तैयार करने में समर्थ हुई थी—पारसनाथ को ऐसा लगा।

वह सहसा उठ खड़ा हुआ और मेज़ के पास जाकर उससे जुड़े हुए शीशे पर उसने अपना मुँह देखा—यह जानने के लिये कि नंदिनी के रेखाचित्र से मेल खानेवाले किसी भी भाव या रेखा की झलक उसके मुख पर दिखाई देती है या नहीं। पर कहीं कोई भी चिह्न उसने ऐसा नहीं पाया जो उस चित्र की किसी भी रेखा से मिलता हुआ हो। धीरे-धीरे उसके गंभीर मुख पर हँसी की अस्पष्ट आभा झलक उठी, और कुछ ही समय बाद वह अस्पष्ट आभा स्पष्ट से स्पष्टतर होती गई।

उसी रहस्यमयी मुसकान के साथ नंदिनी की ओर देखकर कहा—"आपकी आँखों से 'ऐक्स'-किरणों का-सा प्रकाश हुआ मालूम होता है। आपने कभी 'ऐक्स'-किरणों की लिया गया कोई फोटो देखा है?"

"जी नहीं।"

"उन किरणों के लिये मनुष्य के शरीर के अस्तित्व ही नहीं रहता। उस चमड़े के भीतर के नंगे रूप का फोटो लेने में वे आपने भी शायद अपने अनजान में, किरणों की सहायता से, मेरे भीतरी सफलता पाई है।"

नंदिनी उसकी बात को अच्छी कर हँस पड़ी; बोली—"ऐक्स-किरणों पता नहीं था कि मेरी 'अन्तर्दृष्टि' में

काली दीवार को वह लोहे के चट्टान से भी अधिक कठोर और दृढ़ समझे बैठी थी वह एक दिन अचानक जैसे किसी तिलस्माती करामात से इतनी आसानी से हट गई ! जादू-लोक की कौन परी इतने दिनों तक—प्रायः बीस वर्षों तक—उसे भूत-जगत् के काले तिलिस्म के संकीर्ण घेरे में बाँधकर इतने बड़े, इस कदर फैले हुए, सहज और वास्तविक जीवन के विस्तार को उसकी आँखों की ओट में रखे रही ? यह प्रश्न ज्योंही उसके मन के ऊपर—सतह पर—उभर आता, त्योंही उसके अज्ञात मन के भीतर एक अनोखा भयावना और अनिश्चित उत्तर तल से उठकर अनेक तरंगों से टकराता हुआ, बहुत-से अस्पष्ट चक्र बनाता हुआ, ऊपर उठ आता। कौन थी वह परी ? इसके उत्तर के रूप में जैसे कोई पलटे में उसके कानों में फुसफुसाने लगता—"क्या वह परी तुम्हारी अंधी माँ नहीं थी ?" वह चौंक उठती और उस भयंकर उत्तर को अतल में दबाने की चेष्टा करती हुई अपने-आप से कहती—"माँ ! नहीं, नहीं, किसी भी हालत में नहीं ! वह बेचारी अपने अंतर का सारा स्नेह जीवन-भर केवल मेरे ही लिये सुरक्षित रखे रही। उससे अधिक करुणामयी और स्नेहशीला माता की कल्पना मैं स्वप्न में भी नहीं कर सकती। बेचारी दुःखिनी माँ ! अच्छा ही हुआ जो जल्दी मर गई, नहीं तो न जाने अभी क्या-क्या भयंकर दुःख, कष्ट और विपत्तियाँ उसे झेलनी पड़तीं। मरकर वह मुक्त हो गई !" और फिर तत्काल वही शैतान निष्ठुर व्यंग और निर्मम परिहास के बतौर उसके भीतर के कानों में फुसफुसाने लगता—"और साथ ही तुम्हें भी मुक्त कर गई ! स्नेह के जिस कठोर बंधन में वह तुम्हें बाँधे हुए थी वह तुम्हारे जीवन की गति को चारों ओर से रोके हुए था और भीतर ही भीतर तुम्हारे अनजान में तुम्हारी अंतरात्मा का रस सोख-सोखकर तुम्हें निष्प्राण, सूखे झाड़ में परिणत करने पर तुला हुआ था। यह अच्छा ही हुआ कि उसकी मृत्यु ऐसे समय हो गई जब तुम्हारे भीतर थोड़ी-सी हरियाली

शेष थी। अब उपयुक्त खाद और पानी मिल जाने से वह हरियाली फिर से लहलहाने लगी है। अब उसके सूखने का कोई डर नहीं है।" अपने अंतर के उस मुँहफट शैतान का मुँह वह बार-बार बंद करने की चेष्टा करती रहती। पर किसी प्रकार सफल नहीं हो पाती थी। अंत में उसके भीतर की एक अज्ञात स्वस्थ चेतना ने उसे सुझाया कि उस निर्मम सत्य को खुले हृदय से स्वीकार कर लेने में ही उसका कल्याण है; और धीरे-धीरे उसके सचेत मन ने उस कठोर सत्य को स्पष्ट स्वीकार कर लिया—बड़े ही भयंकर द्वन्द्व और मर्मघाती पीड़न के बाद।

उस स्वीकृति का बहुत स्वास्थ्यकर प्रभाव उसके मन पर पड़ने लगा। उसका बीस वर्ष का विगत जीवन जिन विचित्र भ्रमों, भ्रांतियों और आशंकाओं के बीच में बीता था, जो उसके जान में या अनजान में, प्रतिपल उसे अपने नुकीले हिंस्र के-से पंजों से जकड़े रहते थे, वे अकस्मात् जैसे मंत्रबल से तिरोहित होनेवाले भूतों की तरह विलीन हो गए। जीवन के संबंध में उसका दृष्टिकोण ही एकदम बदल गया, और अब प्रत्येक गंदी से गंदी और भयंकर से भयंकर बात में भी उसे आशा का प्रकाश और प्राणों की सजीव गति दिखाई देती थी।

संध्या को पारसनाथ बाहर चला जाता था, और मंजरी घर पर अकेली रह जाती थी। पर उस विजातीय-से वातावरण में, चारों ओर गाली-गलौज, दंगा-फसाद, कलह और कोलाहल के बीच में, अकेले रहने पर भी उसके मन में एक क्षण के लिये भी न किसी प्रकार के भय की भावना उत्पन्न होती थी और न कभी सूने एकाकीपन की ही अनुभूति जगती थी। उसे ऐसा लगता था जैसे वह एक विशाल परिवार के बीच में सहज-स्वाभाविक स्थिति में रहने लगी है। चूँकि यह सत्य उसके आगे प्रकाशित हो गया था कि कलह और कोलाहल पारिवारिक जीवन के अनिवार्य अंग हैं, इसलिये वह संध्या के निपट अकेलेपन की

अवस्था में भी, चारों ओर की गंदी गलियों की बौछार और झगड़े-झंझटों के वीभत्स विस्फोटों के बीच भी, जीवन के सहज और घरेलू रूप का-सा अनुभव करती थी।

बीच-बीच में कोई-कोई संध्या ऐसी भी बीतती थी जब चारों ओर के पड़ोस में स्तब्ध शांति-सी छाई रहती; केवल खपरैलों से ऊपर को उठता हुआ धुँआ यह सूचित करता था कि वह स्थान निर्जन नहीं है। ऐसे अवसर पर काम से क्षणिक अवकाश पाकर वह पिछवाड़े के चौड़े बरामदे पर एक टूटी कुर्सी पर बैठ जाती, और सामने कुछ ही दूर पर खड़े नीम और इमली के पेड़ों की चोटियों पर, डूबते हुए सूर्य के पीले प्रकाश का झिलमिल झलकना देखती। उन पेड़ों पर बसेरा लेनेवाले बगुलों द्वारा तानी हुई सफेद छतरी का दृश्य देख-देखकर वह अनमनी-सी किसी एक ऐसे अज्ञात सुख में कुछ समय के लिये विलीन हो जाती जो स्पष्ट होते होते रह जाता था।

इस तरह मंजरी के अंतस्तल में जीवन के संबंध में भय की जो भावना वर्षों तक घर किये हुए थी, नयी परिस्थिति में वह आश्चर्यजनक रूप से काफूर हो गई, और उसके स्थान पर एक अस्पष्ट तथापि निश्चित आशा का भाव अपना रंग जमाने लगा। पर पारसनाथ की स्थिति कुछ समय बाद बिलकुल उसका उलटा रूप धारण करने लगी। आज तक वह अपने को संसार और समाज से बहिष्कृत समझकर नारकीय वातावरण में लुका-छिपा रहने में ही अपनी रक्षा समझता था संदेह नहीं, पर उस परिस्थिति में किसी भी प्रकार के भय की भावना का लेश भी उसके ज्ञात में या अज्ञात में वर्तमान नहीं था। उसके भीतर केवल थी मानव-जाति के प्रति घृणा और समाज के विरुद्ध प्रतिहिंसा की भावना। वह एकांत प्रतिहिंसक प्रवृत्ति जीवन के संबंध में एक प्रकार की विकृत आशा और वीभत्स उत्साह से उसके मन को सब समय सजीव-सी बनाये रहती थी। वह अपने को पाताल-पुरी का

नियंता समझता था, जो ऊपर के प्रकाशमय जगत् से पराजित दशा में नीचे निर्वासित कर दिया गया हो। उस अंधकारमयी पाताल-पुरी के भूत-बैतालों को वह अपना अनुचर—या अधिक से अधिक सहचर—समझता था, जिन्हें संगठित करके वह एक बार ऊपर के मुक्त संसार पर पूर्ण प्रतिहिंसा के साथ धावा बोलना चाहता था—इसलिये नहीं कि वहाँ अपना अधिकार जमाकर अपने सभी अनुचरों के जीवन को सुंदर, प्रेममय और प्रकाशमय बनावे, बल्कि इसलिये कि अपने जले दिल के झुलसे हुए अरमानों को फिर से हरा-भरा करे और अपनी व्यक्तिगत विजय की प्रतिष्ठा से आत्मसंतोष प्राप्त करे। कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि अपनी काल्पनिक अंधपुरी में जिन यमदूतों के बीच उसका नेता बनकर वह रहता था उनके संग में चाहे और किसी भी प्रकार की प्रचण्ड पीड़ा से वह फुफकारता रहता हो, पर भय नाम की कोई चीज उसके पास तक फटक नहीं सकती थी।

किन्तु जब से मञ्जरी से उसका घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया, तब से उसके मन की हलचल के क्रम में एकदम उलट-फेर हो गया। मन के भीतर के नासूर के जिस दर्द से वह इतने दिनों तक दिन-रात भीतर ही भीतर कराहता चला आता था, उसे गया भूल, और उस रीते स्थान को भय ने भरना शुरू कर दिया। मञ्जरी से प्रेम करके उसने अपने जीवन में पहली बार नारीत्व—बल्कि मनुष्यत्व—के प्रति अपना हार्दिक सम्मान प्रकट किया था। पर अब उसे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे उसकी इस बुत-परस्ती को कुफ्र समझ कर उसके अंतरलोक की प्रजा—कल्पना-जगत् के भूत-बैताल—भयंकर रूप से विद्रोही होकर उसे परिपूर्ण विनाश की धमकी देने लगी है: जैसे उसके नरक ने पहली बार भय के सहस्रों बीजों को उगाने का निश्चय-सा कर लिया हो। अज्ञात और अव्यक्त शंकाएँ उसे चारों ओर से विकट भौतिक आकार धारण करके घेरने लगीं। वह प्रतिपल उन्हें दबाने की कोशिश

करता रहता, पर प्रतिपल वह दबाये गये रबर की गेंदों की तरह ऊपर को उछल-उछल उठती थीं।

एक दिन रात में जब दोनों खा-पीकर ऊपर सोने के कमरे में गए, तो पारसनाथ दीवार से सर अड़ाकर अधलेटी अवस्था में सिगरेट जलाकर पीने लगा। मंजरी भी आराम करने की मनोदशा में उसी पलँग पर जा बैठी और पारसनाथ की ओर मुँह करके ठीक उसी तरह दीवार पर सिर अड़ाकर, दाहिने हाथ पर गाल टेककर लेट गई। लालटेन सामने आले पर रखी हुई थी। उसका प्रकाश यद्यपि मंद कर दिया गया था, फिर भी असंख्य छोटे-छोटे हरे रंग के कीड़े और पतिंगे उसे चारों ओर से घेरे हुए थे। सिगरेट का धुँआ उड़-उड़कर मंजरी की नाक पर और मुख पर आक्रमण कर रहा था। प्रारंभ में उस धुँए की गंध से उसका सिर भिन्नाने लगता था, और उसे उबकाई आने लगती थी। पर धीरे-धीरे, पारसनाथ के ओठों की निकटता का अनुभव करते-करते, सिगरेट की गंध की आदी वह इस हद तक हो गई कि अपने जीवन में जितनी भी प्रकार की गंधों का अनुभव उसने किया था उन सबसे अधिक तमाखू की वह अनोखी, तेज़ और कड़वी गंध प्रिय मालूम होने लगी थी!—यह केवल इसलिये कि उस गंध से वह एकमात्र व्यक्ति घनिष्ठ रूप से संबंधित था जिसे वह आंतरिक हृदय से चाहने लगी थी। उस गंध ने उसके ऊपर ऐसा ज़बर्दस्त प्रभाव डाल दिया था कि जब पारसनाथ पास में न भी होता तब भी उसे अपने चारों ओर जली हुई सिगरेट के महकने का-सा अनुभव होता रहता। आज भी वह उस प्रिय गन्ध का रसानुभव करने की इच्छा से पारसनाथ के मुँह के अत्यन्त निकट अपना मुँह किये हुए थी। पारसनाथ को यह बात मालूम नहीं थी कि मंजरी उस गन्ध को इस क़दर पसन्द करने लगी है। उसने सहज भाव से कहा—"मेरे सिगरेट ख़तम करने तक तुम ज़रा हटकर बैठ जाओ, नहीं तो धुँए से तुम्हारा जी ख़राब हो जायगा।"

मञ्जरी ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को तानकर, तिरछी दृष्टि में मार्मिक मुस्कान झलकाते हुए, स्निग्ध, सरस स्वर में कहा—"मेरा जी खराब होने की तनिक भी चिन्ता न करो: धुँआ उड़ाए जाओ। मुझे अच्छा लगता है।"

"सच ! तब लो, आज तुम भी एक सिगरेट फूँको। बहुत दिनों से मेरी इच्छा रही है कि तुम्हें सिगरेट पीते देखूँ !"

"हटो ! तुम भी कभी-कभी बड़ी अजीब बात करते हो।" कहकर मञ्जरी अर्द्धस्फुट कण्ठ से खिलखिला उठी।

आज पहली बार पारसनाथ ने उसे खिलखिलाते हुए सुना और देखा। उसे उस दिन की याद आई जब प्रायः चार मास पूर्व मञ्जरी को उसने पहली बार होटल में देखा था। उसका उस दिन का अत्यन्त गम्भीर रूप और अत्यन्त करुण और रोनी-सी सूरत देखने के बाद उसके लिये स्वप्न में भी इस प्रकार की कल्पना कर सकना सम्भव नहीं था कि वह कभी सहज-स्निग्ध भाव से मुस्करा सकती है। उस दिन के बाद धीरे-धीरे घनिष्ठ परिचय हो जाने पर भी वह कभी एक दिन के लिये भी इस सम्भावना पर विश्वास नहीं कर पाया था कि वह किसी भी हालत में खिलखिला सकती है। अर्द्धव्यक्त और सलज्ज मुसकान की झलक उसके मुख पर पारसनाथ ने कभी-कभी अपवाद-रूप से अवश्य देखी थी, पर खिलखिलाता हुआ रूप कभी नहीं देखा। और आज ? वह सोचने लगा कि समय कभी-कभी कैसे आश्चर्यजनक करिश्मे दिखाता है ! केवल चार मास में इतना बड़ा परिवर्तन कैसे सम्भव हो गया ! असल में चार भी कहाँ, डेढ़ महीना कहिए ! क्योंकि मंजरी के स्वभाव में जो-जो भी अद्भुत, आमूल परिवर्तन पारसनाथ के देखने में आए थे वे सब उसकी माँ की मृत्यु के बाद ही। और मज़ा यह कि जिस प्रकार के परिवर्तनों की आशंका पारसनाथ ने की थी, इधर मंजरी

के प्रत्येक व्यवहार में उसका एकदम उलटा रूप देखने में आ रहा था। नहीं तो उस लड़की से माँ की मृत्यु के डेढ़ ही महीने बाद इस प्रकार खिलखिलाने की आशा कैसे की जा सकती है, जिसका सारा जीवन माँ के आँचल की छाया के नीचे बीता हो और जो स्वभाव से गंभीर-प्रकृति हो !

कुछ भी हो, उसका खिलखिलाना पारसनाथ को केवल आश्चर्य-जनक ही नहीं, बल्कि बहुत सुखकर भी लगा। कुछ क्षण तक वह मन में अत्यंत मधुर पुलक का अनुभव करता हुआ पहले से अधिक स्फूर्ति में सिगरेट का धुँआ उड़ाता रहा। उसके बाद सहसा अकारण भय की उसी अनुभूति ने भूत की तरह उसे धर दबाया जो इधर कुछ दिनों से जान में या अनजान में समय-असमय उसके पीछे पड़ी रहती थी। उसकी सारी मानसिक दशा ही एकदम बदल गई। पर मंजरी को उसके इस भाव-परिवर्तन का तनिक भी आभास नहीं मिल पाया था। वह पहले की ही तरह बड़े नाज़ के साथ मंद-मधुर, संयत मुसकान मुख पर झलकाती हुई संकेतपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी।

पारसनाथ सिगरेट का शेष टुकड़ा बाहर फेंककर दीवार से अच्छी तरह पीठ अड़ाकर, जमकर बैठ गया और अचानक बोल उठा—"मुझे अक्सर यह सोचकर आश्चर्य होता है, मंजरी, कि मनुष्य के आसपास का वातावरण उसके अनजान में, चोरी-छिपे, बेमालूम ढंग से उसके मन पर, उसकी आत्मा पर, अदृश्य कीटाणुओं की तरह किस सफ़ाई से अपना प्रभाव जमा बैठता है। मनुष्य चाहे कितना ही सावधान क्यों न रहे, कैसे ही आत्मविश्वास का कवच क्यों न पहने हो, वातावरण में फैले हुए उन अदृश्य कीटाणुओं से किसी भी हालत में बच नहीं सकता। एक साधारण-सा—बहुत ही साधारण—दृष्टांत यही लो न, कि तुम्हारे समान सात्त्विक-स्वभाव लड़की (होटल वाले तुम्हें चाहे कैसी ही दृष्टि से क्यों न देखते रहे हों, पर मैं जानता

है कि तुम्हारी प्रकृति आश्चर्यजनक रूप से सात्त्विक रही है)—मैं कहना चाहता था कि तुम्हारे समान लड़की भी, जिसके जन्मगत संस्कार कट्टर रूप से सात्त्विक रहे हों, इस नारकीय वातावरण में रहने से इतने कम अर्से में इस क़दर बदल सकती है, इस बात पर सहज में विश्वास नहीं होना चाहता !"

मंजरी के हँसमुख पर अकस्मात् एकदम काला और घना अँधेरा छा गया। उसे ऐसा लगा कि जिस सुन्दर और प्रिय गंधयुक्त फूल को वह बड़े आराम से अपने हृदय में छिपाये हुई थी उसके भीतर से अचानक, किसी ज़हरीले कीड़े ने बाहर निकलकर ऐसे अवसर पर उसके मर्म पर डंक मार दिया जब कि वह क़तई उसके लिये तैयार न थी।

उसने धीरे से कहा—"मैं तुम्हारा मतलब कुछ समझी नहीं। 'इस प्रकार बदल सकती है' से तुम्हारा आशय क्या है, मैं कुछ अन्दाज़ न लगा पाई।"

उसकी आवाज़ से कुछ भारीपन का आभास पाकर पारसनाथ सँभल गया। अपने स्वर में अकारण खीझ और व्यंग के बदले तनिक करुणा का पुट लाने की चेष्टा करता हुआ वह बोला—"तुम कहीं मेरी सीधी-सी बात का अर्थ कुछ और न लगा लेना! मेरा आशय केवल यह था कि अर्थ के अभाव और सामाजिक असंगति के कारण हम दोनों जिस नरक में रहने को बाध्य हुए हैं वह अपना अस्वास्थ्यकर प्रभाव जान में या अनजान में हम लोगों पर स्वभावतः कम या अधिक मात्रा में छोड़ता चला जा रहा है। मैं मज़ाक में जो उदाहरण तुम्हें देने जा रहा था वह सिगरेट के धुएँ की गंध से संबंध रखता है। यह स्पष्ट है कि तुम केवल इस गंध की आदी ही नहीं हुई हो, बल्कि वह तुम्हें बहुत भाने लगा है। यहाँ आने के पहले तुमने कभी इस बात की कल्पना भी नहीं की होगी कि सिगरेट की जलायँध के प्रति तुम्हारे मन

में कभी इस प्रकार मोह-सा उत्पन्न हो सकेगा। हम लोग परिस्थितियों की विवशता के कारण सच्चे अर्थों में नरक के कीड़े बन गए; मंजरी! इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है। इसमें न तुम्हारा दोष है, न मेरा। नहीं, मैं ग़लत कह रहा हूँ। मैं बहुत कुछ अंशों में अपनी वर्तमान अवस्था के लिये दोषी हूँ (हालाँकि कोई भी आदमी अपनी भीतरी इच्छा से नरक को नहीं अपनाना चाहेगा, यह बात तुम स्वीकार करोगी), पर तुम तनिक भी दोषी नहीं हो—यह इसलिये कि तुमने अपनी इच्छा को मेरी इच्छा से लीन कर दिया है। पर किसी की इच्छा या अनिच्छा का प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है कि इच्छा से हो चाहे अनिच्छा से, जहाँ एक बार नरक का जीवन हम लोगों ने स्वीकार कर लिया वहाँ आत्मरक्षा की विकृत मनोवृत्ति उस नरक की बीभत्सता के प्रति एक प्रकार की घृणित ममता का-सा भाव हमारे भीतर जगाने लगती है। यह मनोभाव, यह मीठी-मीठी मोहकता बड़ी ही घातक है, मञ्जरी! मैं बहुत दिनों बाद इस सत्य से परिचित होने लगा हूँ। नहीं तो पहले मुझे भी यह नरक बहुत प्रिय था। पर इधर अब कुछ दिनों से इस कल्पना से भी मेरा दिल दहल उठता है कि मैं इतने दिनों तक बड़ी प्रसन्नता से इस भयंकर वातावरण के बीच रहा। आज मेरा रोआँ-रोआँ इस नरक से छुटकारा पाने के लिये बेचैन हो उठा है। मुझे ऐसा लगने लगा है कि उस रौरव के सब अदृश्य संरक्षक जैसे चारों ओर से मेरा गला दबाने पर तुले हों और मेरा दम घोटकर मुझे मार डालना चाहते हों।"

पारसनाथ का लंबा आत्म-उद्गार सुनकर मञ्जरी के मुख का घुप अँधेरा बहुत-कुछ छूट गया, पर फिर भी उसके चेहरे पर गंभीरता पूर्ण मात्रा में बनी रही। बल्कि उस गंभीरता ने और अधिक गहरा और भावपूर्ण रूप धारण कर लिया। उसके मुख का भाव देखकर पारसनाथ को ऐसा भान होने लगा कि जीवन की गहराइयों के संबंध में

उसके—मंजरी के—अंतस्तल के अनुभव कुछ कम गंभीर और मर्म-स्पर्शी नहीं है, हालाँकि विश्वविद्यालय की एक अपरिपक्व छात्री से अधिक मननशील जीवन बनाने की सुविधा उसे नहीं मिल सकी है।

उसी गंभीर मुद्रा के साथ मंजरी ने कहा—"आपके साथ यहाँ आने पर मेरे मन में यह विश्वास जम चुका है कि नरक की ज़मीन पर ही स्वर्ग की स्थापना हो सकती है। नरक से घबराकर भाग निकलने से ही अगर कोई यह समझे कि वह नारकीय भावनाओं से छुट्टी पा जावेगा, तो इससे बड़ी भूल जीवन में दूसरी नहीं हो सकती। क्या तुम यह सोचते हो कि नरक बाहरी दुनिया की कोई चीज़ है? ग़लत बात है। अपने भीतर नज़र डालो, वहाँ तुम्हारे ही शब्दों में भयंकर कुंभी-पाक भभक रहा है और रौरव के घिनौने कीड़े कुलबुला रहे हैं। बाहर तो केवल उस भीतरी नरक की अँधेरी छाया व्यक्ति को डराना चाहती है। नासमझ बच्चों की तरह छाया से कतराकर असली चीज़ को अपने भीतर वहन करता हुआ अगर कोई आदमी सातवें स्वर्ग में भी जावे तो निश्चय ही वह उस स्वर्ग को भी अपने भीतर के पाप-जगत् की छाया से घोर अंधकारमय बना देगा। और, जो स्वर्ग नरक की यथार्थता पर स्थापित नहीं है, वह झूठा है: यह आत्मकामियों के संकीर्ण मन की मरीचिका है। नरक ज्वलन्त यथार्थ है। जो व्यक्ति इस यथार्थ को यथार्थवादी उपायों द्वारा ही स्वर्ग का रूप देने में समर्थ होगा केवल वही कल्याण को अपना सकता है।"

पारसनाथ स्तब्ध दृष्टि से मंजरी की ओर देख रहा था। उसे ऐसा लगा रहा था कि जिस मञ्जरी के मुँह से इस प्रकार के गहन विचार-मूलक शब्द निकले हैं वह कोई दूसरी ही मञ्जरी है; वह वह मञ्जरी नहीं है जिसकी परम संकोचशीलता, संयत स्निग्धता और साथ ही गुरचुर स्वभाव की गहरी और सुदृढ़ छाप उसके मन पर पड़ चुकी है।

कुछ क्षण तक दोनों चुप रहे, उसके बाद पारसनाथ बोला—"मुझे तुम्हारे मुँह से इस तरह की गंभीर बातें सुनकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है, मञ्जरी ! तुमने कब, कहाँ और किससे ये सब बातें सीखी हैं ! तुम्हारे कोर्स की किसी भी किताब में निश्चय ही इस तरह के विचार नहीं पाये जा सकते। तुम्हारी उम्र बीस-इक्कीस वर्ष से अधिक नहीं होगी। इतनी कम उम्र में जीवन के इस तरह के गहरे और पक्के अनुभव तुम्हें हुए होंगे, इस बात पर भी सहज में विश्वास नहीं होता। इसमें संदेह नहीं कि कड़वे अनुभव तुम्हें काफी हो चुके हैं, पर जिस तरह के मार्मिक विचार तुमने अभी प्रकट किए हैं उनके लिये बहुत अधिक कड़वाहट और तीखेपन के अनुभव की आवश्यकता है। अपनी दुखी, अन्धी और भोली-सी माँ से तुमने इस तरह के विचार पाए होंगे, इस बात पर भी विश्वास नहीं होना चाहता। तब बात क्या है?"

"मेरा यह अनुमान है कि अपनी 'दुखी, अंधी और भोली-सी' माँ से ही मैंने इस तरह के विचार पाए हैं। भाग्य के षडयंत्र से उस पर इस तरह मार-पर-मार पड़ती चली गई कि अपने अनजान में वह मनुष्य-जाति से भयंकर रूप से घृणा करने लग गई थी—मेरा यह निश्चित विश्वास है। कोई भी बाहरी आदमी ऊपरी नजर से देखने पर उसे सीधी-सादी, भोली, और शांत-स्वभाव समझता। और सच बात तो यह है कि वह स्वभाव से सरल और शांत थी भी। पर परिस्थितियों के फेर और कुदरती मार ने धीरे-धीरे उसके भीतरी स्वभाव को इस कदर बदल डाला कि स्वयं मुझे आश्चर्य के साथ ही दुःख भी होने लगा। केवल मनुष्य-जाति के प्रति ही उसके मन में घृणा पैदा नहीं हो गई थी, बल्कि मुझे कभी-कभी यह संदेह होने लगता है कि जब अंत में उसकी आँखों का प्रकाश भी जाता रहा तो अपने अनजान में देवता[illegible] भी वह क्रुद्ध हो गई थी। पर इसका यह अर्थ कदापि [illegible] देव-अर्चना, पूजा, ध्यान आदि से उसने हाथ एकदम [illegible]

नहीं, वह अंत तक देवताओं की प्रार्थना करती रही, और गंगा-स्नान के महत्त्व पर उसका मरते दम तक विश्वास रहा। देवताओं को न कोसकर वह अपने भाग्य को और अपने पूर्वजन्म के कर्मों को कोसती थी। पर यह सब होने पर भी श्रद्धा-भक्ति के संबंध में उसका भीतरी मन डाँवाडोल होने लगा था। बीच-बीच में उसके जले दिल के उद्‌गारों से यह बात मेरे आगे स्पष्ट हो जाती थी। मनुष्यों के प्रति घृणा और देवताओं के प्रति आक्रोश की प्रतिक्रिया यह देखने में आई कि उसने अपने अन्तर का सारा स्नेह-प्रेम मुझ पर केन्द्रित करना शुरू कर दिया......"

पारसनाथ अपने संपूर्ण मन और सारी आत्मा से तल्लीन होकर सुन रहा था, और मञ्जरी के अस्वाभाविक रूप से तमतमाये हुए चेहरे पर अपनी ठगी-सी आँखों को गड़ाए हुए था। उसने सहसा मञ्जरी की बात बीच ही में काटते हुए कहा—"ज़रा मैं एक बात जानना चाहता हूँ, मञ्जरी। तुमने अभी जो कहा कि तुम्हारी माँ ने मनुष्य-जाति के प्रति घृणा की प्रतिक्रिया के कारण अपने अन्तर का स्नेह तुम पर केंद्रित कर दिया, यह बात मैं ठीक से समझ न पाया। अपनी इकलौती लड़की के प्रति कोई भी माँ अपने हृदय का सारा प्रेम निछावर कर देगी, इसमें प्रतिक्रिया का सवाल कहाँ से आ गया?"

"तुम ठीक कहते हो—कोई भी माँ अपनी इकलौती बेटी को जी-जान से चाहेगी, इसमें आश्चर्य की बात कुछ भी नहीं है। पर माँ मुझे केवल चाहती ही नहीं थी, बल्कि अपने स्नेह के हज़ारों बंधनों से मुझे इस तरह जकड़ने पर तुली हुई थी कि उस स्नेह के पिंजड़े से ... ी तीली को तोड़कर एक भी कदम इधर-उधर रखने की सुविधा ... हीं देना चाहती थी। मैं यद्यपि स्वयं अपनी इच्छा से उस ... र बंद रहना चाहती थी—माँ से एक क्षण के लिये भी

अलग रहने से मुझे दुःख होता था—पर बीच में उसके दो-एक अस्फुट
को अन्त तक पूर्ण रूप से निभा ले जाना आगे स्पष्ट हो जाती थी...'
विश्व-ब्रह्मांड में एक मैं ही सब कुछ थी, पर मेरे एक-एक वाक्य के साथ
कुछ थी, पर एक बात ऐसी थी जो मेरी दृष्टि में मातृ ऐसा लगा कि आज
महत्त्व नहीं रखती थी; जिसके लिये कोई भी त्याग मेरी न बोलते रहने
नहीं था—कालेज की पढ़ाई मैं किसी भी हालत में छोड़ना नहीं
चाहती थी। छुटपन से मेरे मन में, न जाने कैसे, यह मूर्खतापूर्ण
महत्त्वाकांक्षा घर किये बैठी थी कि मैं एक बहुत बड़ी डाक्टरनी बनूँगी।
मुझे तो कभी-कभी यह भ्रम होने लगता है कि मैं पेट से ही यह
अनोखी अकांक्षा लेकर पैदा हुई थी। आज मैं खूब अच्छी तरह
जानती हूँ कि इस तरह की इच्छा को मन में पालने से बढ़कर बेवकूफी
दूसरी कोई नहीं हो सकती......"

"क्यों ? इसे तुम बेवकूफी क्यों समझती हो ?"

"इसलिये कि उस इच्छा की पूर्ति की कोई सुविधा मेरे पास नहीं
है। पर नहीं, असल कारण यह भी नहीं है। सच बात यह है कि आज
मैं जान गई हूँ कि मेरे जीवन की सार्थकता कहाँ पर है। तुमसे घनिष्ठता
होने के पहले कभी स्वप्न में भी मैं नहीं सोच सकती थी कि......पर
किस बात से मैं किस बात पर आ गई हूँ। मैं कह रही थी कि कालेज
की पढ़ाई के प्रति मेरा मोह माँ के प्रति मेरी ममता से किसी कदर कम
नहीं था। माँ से यह बात छिपी नहीं रह गई थी, इसलिये भीतर ही
भीतर उसके पीड़न और ईर्ष्या की जलन का अंत नहीं था। मैं स्पष्ट
देखती थी कि उसका विवेक मेरी पढ़ाई का विरोध कतई नहीं कर पाता
था, पर उसका हृदय इस बात के प्रति भयंकर विद्रोही हो उठा था। फल
यह दिखाई देता था कि उसके भीतर भयंकर द्वन्द्व मचता रहता था।
उसका हृदय चाहता था कि सारी दुनिया चाहे जहन्नुम में जाय, हम

, भी हो, पर मैं चौबीसों घंटे उसके हृदय
छाया में बैठी रहूँ, और वह सब समय
.सर पर और पीठ पर हाथ फेरती रहे। जरा सोचो
ो यह सब कुछ सोखनेवाली प्यास कैसी भयंकर
.न जानेवाली कैसी भूख है! मैं आज स्पष्ट स्वीकार करती हूँ कि उसके इस अति स्नेह-भार से मैं कभी-कभी उकता उठती थी। फिर भी उसके सर्वग्रासी प्रेम की प्रतिच्छाया मेरे मन पर पड़े बिना न रही। उठते-बैठते, सोते-जागते, यहाँ तक कि कालेज की पढ़ाई के समय भी, जान में या अनजान में, केवल माँ की ही चिन्ता का भूत मेरे मन पर धरना दिये रहता था। माँ चाहती भी शायद यही थी—कि मैं अगर सब समय उसके निकट न भी रह पाऊँ, तो कम से कम उसके पीछे उसकी चिंता में घुलती अवश्य रहूँ! मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी कालेज की साथिनों से—जिन्हें उसने कभी एक दिन के लिये भी नहीं देखा था—वह मन ही मन भयंकर रूप से ईर्ष्या करने लगी थी। केवल मेरी संगिनियों से ही नहीं, और भी न जाने किन-किन काल्पत व्यक्तियों से मेरे संबंध में उसके मन में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगी थी। जब से उसकी दोनों आँखों की रोशनी जाती रही, तब से उसके भीतर उस अनोखी ईर्ष्या ने बढ़ते-बढ़ते भयावना रूप धारण कर लिया था। चूँकि अब वह प्रत्यक्ष कुछ भी देख सकने में समर्थ न थी, इसलिये उसके मन में एक विशेष संदेह के भूत ने घर कर लिया—न जाने किन-किन व्यक्तियों, किन-किन कल्पित छायामूर्तियों से घनिष्टता बढ़ाकर, उसके स्नेह-बंधन से मुक्त होकर मैं उसके अंधेपन का लाभ उठा रही हूँ, और अपने सारे तनमन और आत्मा से उसके घनघोर स्नेह का पूर्ण प्रतिदान देने से कतरा रही हूँ। इस कल्पना से जो असहनीय पीड़ा, जो भयंकर जलन उसे दिन-रात, भीतर ही भीतर, बुरी तरह बेचैन करने लगी थी, उसे वह यद्यपि मुझसे भरसक

छिपाने की चेष्टा करती थी, पर बीच-बीच में उसके दो-एक अस्फुट शब्दों से उसके अंतर की सारी ज्वाला मेरे आगे स्पष्ट हो जाती थी...'

मञ्जरी की भावमग्न आँखों की मोहकता एक-एक वाक्य के साथ उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली जाती थी। पारसनाथ को ऐसा लगा कि आज तमाम रात उसी आवेश और तल्लीनता के साथ निरंतर बोलते रहने पर भी वह एक पल के लिये भी नहीं उकतावेगी। आज पहली बार उसने मञ्जरी के अखंड मौनव्रत को इस प्रकार की अटूट वाग्धारा के रूप में बदलते हुए पाया। उसके मौन की अवधि जितनी ही लंबी और ढीली रही, उसकी प्रतिक्रिया भी वैसी ही प्रबल, तेज़ और तीखी होकर सामने आई। पर इस बात से भी अधिक आश्चर्य पारसनाथ को मञ्जरी की बातों के ढंग से हो रहा था। अपनी माँ के उत्कट और एकांत स्नेह का विश्लेषण करके वह अपनी जिस मार्मिक अनुभूति का परिचय दे रही थी वह सचमुच सन्नाटे में डालनेवाली थी। इसके अलावा उसकी बातों से पारसनाथ की आँखों के आगे उस काली रात का वह भयावना दृश्य फिर एक बार सजीव और समूर्त हो उठा जिसे उसका सचेत मन बड़ी मुश्किल से इतने दिनों बाद भुला पाया था—बाहर के गर्जित प्रलय और भीतर के स्तब्ध सन्नाटे के बीच में खटिया पर पड़ी हुई वह चीमड़ और जर्जर प्रेतछाया! वह भाग्य के सैकड़ों क्रूर उत्पातों की चोटों से सिकुड़ी-सिमटी हुई नारी का वीभत्स शव रूप—शैतान को मुँह चिढ़ाता हुआ और दुर्भाग्य को विकट व्यंग की लोमहर्षक दृष्टि से ललकारता हुआ!

वह बोला—"तब तो वह निश्चय ही मुझसे भी ईर्ष्या करती रही होगी?"

मञ्जरी ने उसी अनमनी, दर्द भरी और भ्रांत दृष्टि से देखते हुए कहा—"कुछ असंभव नहीं है। मरने के कुछ दिन पहले से न जाने

किस प्रकार की अनोखी, बेसिर-पैर की कल्पनाएँ और बेमतलब की आशंकाएँ उसके मन को चारों तरफ़ से झँझोड़ने लगी थीं? उसकी बातों से उसके मन की कोई भी बात साफ़-साफ़ मालूम न होने पर भी इतना मैं निश्चित जान गई थी कि उसके भीतर कुछ विचित्र द्वन्द्वों और उलझनों की भयंकर खींचातानी चल रही है।"

सहसा पारसनाथ को उस क्षण की याद आई जब उस प्रलय की रात में वे दोनों अज्ञात रूप से एक-दूसरे के एकदम निकट आकर अत्यंत करुण और भाव-गद्गद अवस्था में आँसुओं से एक-दूसरे के गालों को तर कर रहे थे। उस चरम मोह में आत्म-विस्मृत मनोदशा में, लालटेन के क्षीण प्रकाश में, सहसा उसने मृत नारी के मुँह पर एक विकट व्यंग-भरी प्रतिहिंसात्मक मुसकान झलकती हुई देखी थी। उस भयंकर भ्रमपूर्ण अथवा यथार्थ दृश्य ने जिस लोमहर्षक भय का संचार उस समय पारसनाथ के मन में किया था, उससे कई गुना अधिक तीव्रता से उसी भय ने आज पारसनाथ को फिर एक बार धर दबाया। उस समय वह उस 'भोली और अंधी' स्त्री की ईर्ष्या से तनिक भी परिचित नहीं था, और उसकी मृत अवस्था में उसके मुख पर जिस अनोखी भयावनी मुसकान का आभास उसे (वास्तव में या भ्रम से) दिखाई दिया था उसके मूल कारण की जानकारी उसे नहीं थी। पर आज जब मञ्जरी ने अपनी माँ के अंतर्मन के द्वन्द्वों, संघर्षों और उलझनों का स्पष्ट रूप उसके सामने रखा तो वह चौंक उठा, और उसे ऐसा लगा जैसे उस मृत नारी के मुख की उस भौतिक मुसकान का अर्थ उसके आगे आतिशबाज़ी के अक्षरों में स्पष्ट हो गया है। वह अपने भय की भावना को दबा न सका और खाट पर से उचक उठा। आले के पास जाकर उसने लालटेन की क्षीण रूप से जलती हुई बत्ती को तेज़ कर दिया। उसके तेज़ करते ही छोटे-छोटे हरे-हरे कीड़ेनुमा पतिंगों की संख्या बेहद बढ़ने लगी। वे सैकड़ों—बल्कि

हज़ारों—की तायदाद में आकर लालटेन के चारों ओर कुहरे का-सा जाल तानने पर तुले हुए थे।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

बत्ती तेज़ करने के बाद पारसनाथ फिर खाट पर आकर बैठ गया, और एक और सिगरेट निकालकर उसने जलाई। पूरब की ओर जो मुसलमान परिवार रहता था, वहाँ पति-पत्नी के बीच कुहराम मचना शुरू हो गया था। पारसनाथ यह सोचकर मन-ही-मन कुढ़ रहा था कि मानव-जीवन के चित्रपट पर प्रतिफलित होने वाले सब फिल्मों में घृणा, प्रतिहिंसा, भय और असंतोष के रंगों के अतिरिक्त और कोई दूसरा रंग खिलता हुआ उसकी नज़र में क्यों नहीं आता! एक लंबी साँस लेते हुए उसने कहा—"तुमने अपनी माँ के जीवन का बहुत ही भयंकर चित्र उतारकर मेरे सामने रखा है, मञ्जरी!"

मञ्जरी दीवार से पीठ सटाकर दोनों पाँवों को समेटकर बैठ गई थी। अनमने भाव से उसने कहा—"हाँ, माँ का जीवन बहुत ही भयंकर मानसिक पीड़न में बीता था। उसके भीतर के उस दिल दहलानेवाले दर्द और जलन की प्रतिक्रिया मुझपर भी होने लगी थी। एक तो अंधी, परवस और निस्सहाय माँ की वह चरम मानसिक पीड़ा, तिसपर घोर आर्थिक कष्ट, और तिसपर भी बी. एस-सी. की पढ़ाई ख़तम करने की मेरी परम उत्कंठा—इन तीन प्रकार की चिंताओं ने मुझे बुरी तरह धर दबाया। माँ जिस ज्वाला से परेशान हो रही थी, उसने छूत की बीमारी की तरह मुझपर भी आक्रमण किया। पर मुझ पर उसकी प्रतिक्रिया दूसरे ही रूप में हुई। जब हमारी आर्थिक दुर्गति चरम सीमा को पहुँच गई, और मुझे होटल के जीवन को ऊपरी तौर से अपनाने

बाध्य होना पड़ा, तो मेरे भीतर मेरे अनजान में नरक ने अपना जाल फैलाना शुरू कर दिया। तब इस बात का पता मुझे नहीं था, पर आज यह बात मेरे आगे स्पष्ट हो रही है। नरक-लोक की घृणा, भय और गंदगी ने अपनी जटिल जड़ें मेरे भीतर जमानी शुरू कर दीं। अगर मैं अपने भीतर के उस नरक से न कतराकर उसे यथार्थ रूप में स्वीकार कर लेती, और उस नरक की ज़मीन की ही मिट्टी से स्वर्ग स्थापना की कल्पना कर लेती, तो शायद मेरे मन पर उसकी प्रतिक्रिया उतने बुरे रूप में न हुई होती। कुछ भी हो, माँ की मृत्यु के बाद आज उस सत्य का महत्व मेरी समझ में आने लगा है। अब कोई भी नरक चाहे कैसे ही भीषण-रूप में मेरे सामने क्यों न आए, वह मुझे निश्चित कर्तव्य-पथ से डिगा नहीं सकेगा। फिर भी, माँ की ममता की याद मुझे अब भी बीच-बीच में दर्द की फाँस से बेचैन कर देती है। अपने अंतिम दिनों में वह बड़ी ही मार्मिक मानसिक पीड़ा से कष्ट पाती रही, बड़ी ही भयंकर अंतर्ज्वाला में जलती रही। मैं उसे किसी भी रूप में कोई सांत्वना नहीं दे पाई, बल्कि उसकी चिंता की आग को और अधिक दहकाने का कारण बनी रही! बेचारी ने जीवन में बहुत ही दुःख पाया!"

यह कहते हुए मञ्जरी की आँखों से बूँद-बूँद करके आँसू नाक के दोनों किनारों से होकर नीचे ढरकने लगे। जब वह आँसू ढरका रही थी, तो भीतर से किसी अँधेरे कोने से एक आवाज़ उसके कानों में यह फुसफुसा रही थी—"यह विह्वलता तुम्हारे लिए बिलकुल अच्छी नहीं है। तुम्हें जीवन में टिके रहने के लिये बहुत ही कठोर, बहुत ही निर्मम होना होगा!"

मञ्जरी के आँसुओं के साथ पारसनाथ की भ्रांति भी जैसे बह चली—कम-से-कम उसे उस समय ऐसा ही लगा। अपने बाएँ हाथ

से मंजरी की कमर पकड़कर दाहिने हाथ से उसके आँसू धीरे से पोंछते हुए वह बोला—"तुम्हारा स्वभाव बहुत ही विचित्र है, मंजरी! एक तरफ़ तुम इस हद तक रूखी हो कि घंटों पत्थर की मूर्ति की तरह जड़ और अचल बैठी रहती हो; दूसरी तरफ़ इतनी अधिक संवेदनशील हो कि ज़रा-सी बात से, साधारण-सी स्मृति से, तुम अपने आँसुओं में स्वयं डूब जाती हो और दूसरों को भी डुबा देती हो। एक ओर तुम बेहद सयानी और समझदार मालूम होती हो, और दूसरी ओर निपट अबोध और भोली। एक ओर तुम्हारे अखंड मौन के टूटने की कोई संभावना ही नहीं दिखाई देती, दूसरी ओर तुम्हारा वाग्धारा का अटूट प्रवाह रोके नहीं रुकना चाहता। तुम्हारी प्रकृति के इस अनोखेपन के कारण ही मैं तुम पर सौ जानों से फ़िदा हूँ।" यह कहकर उत्कट प्यार से दाँतों को पीसते हुए उसने मंजरी को दोनों बाहों से जकड़कर आवेश के साथ छाती से लगा लिया। पास-पड़ोस में चारों ओर सन्नाटा छा गया था। मुसलमान-दंपति का लड़ना-झगड़ना भी ठंडा पड़ गया था। ज्योंही उसने मंजरी के ओठों से अपना मुँह लगाया त्योंही अचानक किसी चीज़ के खटकने की आवाज़ सुनकर उसे बिजली का-सा धक्का लगा। उसकी दृष्टि अपने-आप लालटेन की ओर गई। एक बड़ा-सा पतिंगा आकर लालटेन की चिमनी पर अपना सिर पटक रहा था। एक ज़रा-से शब्द से इस क़दर चौंक उठने का कारण जब पारसनाथ ने अपने मन के भीतर खोजना शुरू किया, तो अपनी भरमाई हुई-सी मानसिक आँखों के आगे उसने अपने और मंजरी के बीच में उसकी मृत माता की प्रेत-छाया को खड़ा पाया—भयंकर ईर्ष्या से जली-भुनी हुई, उत्कट प्रतिहिंसा से बौखलाई हुई! यह जानते हुए भी कि उसके मन का निरा भ्रम है, उस लोमहर्षक भ्रम के प्रभाव से को मुक्त करने में वह सफल नहीं हो पाता था। मंजरी को से पकड़े हुए वह कुछ देर तक शून्य दृष्टि से लालटेन

रह गया। मंजरी ने कुछ घबराकर पूछा—"बात क्या है ! तुम इस तरह क्यों देख रहे हो !"

क्षण-भर के लिए पारसनाथ उसी अवस्था में अनमने भाव से उस आले की ओर देखता रहा, जहाँ लालटेन रखी हुई थी। एक छिपकली आकर हरे-हरे कीड़ेनुमा पतिंगों को चख रही थी। पारसनाथ आधे मन से उसे देख रहा था, और आधे मन से कुछ दूसरी ही भ्रांति और भय के भँवर में गोते खा रहा था। दूसरे क्षण उसने मंजरी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—"कुछ नहीं : छिपकली को देख रहा था।"

मंजरी खिलखिला उठी। उसने कहा—"मैं तो डर गई थी।"

पारसनाथ ने अपने अंतर के कल्पना-जगत् से उभरी हुई अनोखी और भयावनी भ्रांति को बलपूर्वक भाड़ने की चेष्टा करते हुए फिर एक बार मंजरी को बाँहों से जकड़कर छाती से लगा लिया, और मीठे दुलार और पुचकार-भरी आवाज़ में कहा—"तुम तो कहती थीं कि 'मुझे डर नहीं लगता।' "

"वाह, यह कैसे हो सकता है ! मैंने ऐसा कब कहा ? मैंने तो केवल यह कहा था कि जिस नरक के वातावरण से तुम भाग निकलना चाहते हो उससे कतराकर छुटकारा नहीं पाया जा सकता, बल्कि उसे यथारूप स्वीकार करने से ही उसपर विजय पाई जा सकती है।"

"तुम्हारा यथार्थवाद जीवन की गहरी दार्शनिकता की नींव पर खड़ा है। मैं इसे अपना बड़ा भारी सौभाग्य समझता हूँ कि तुम्हारे समान फ़िलासफ़र लड़की के घनिष्ट संपर्क में मैं आ सका।"

मंजरी मंद-मधुर मुस्कराती हुई, पारसनाथ के घुंघराले बालों पर कोमल-कोमल उँगलियाँ फेरती हुई बोली—" चलो, बड़ा या। मैं फ़िलासफ़र और तुम चित्रकार—यह संयोग विधि । अगर समय आने पर अख़बारों में यह हेड-लाइन छप

जाय कि 'फ़िलासफ़र लड़की से चित्रकार का विवाह', तो अच्छा विनोद रहेगा।"

'विवाह' शब्द सुनते ही पारसनाथ का मुँह अत्यंत गम्भीर हो आया, यहाँ तक कि उसपर एक हलकी-सी कालिमा पुत गई। पता नहीं क्यों, यह शब्द वर्षों से उसके अंतर्मन के लिये एक हौवा बना हुआ था। बहुत दिनों से वह उसे भूला हुआ था। इसलिये जब आज मंजरी ने अचानक उसका उल्लेख किया तो भीतर ही भीतर उसका खून सूखने-सा लगा। कुछ क्षण तक चुप रहकर वह मरे मन से, निर्जीव स्वर में बोला—"अच्छा मंजरी, एक बात मैं तुमसे बहुत दिनों से पूछने की इच्छा रखता हूँ। आज तक पूछने का ठीक मौक़ा ही नहीं मिला। आज तुमने स्वयं इस बात की चर्चा चलाकर मुझे उस सम्बंध में प्रश्न करने का अवसर दिया है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम क्या सचमुच यह आवश्यक समझती हो कि हम दोनों का विवाह हो जाय—मेरी बात को पहले ठीक से समझ लो। मेरा आशय यह है कि क्या तुम वैवाहिक विधान को—उसके सामाजिक रूप को—अनिवार्य रूप से महत्वपूर्ण मानती हो? क्या बिना सामाजिकता की मुहर के दो हृदयों का सच्चा प्रेम तुम्हारी दृष्टि में कोई अर्थ नहीं रखता?"

"अर्थ क्यों नहीं रखता!"—आवेश के साथ मंजरी बोली—"दो हृदयों का सच्चा प्रेम किसी भी हालत में किसी भी परिस्थिति में अपने-आप में महत्त्वपूर्ण है, इस बात को कोई भी सहृदय और समझदार व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता। पर इस पर 'समाज की मुहर' लगने से उसकी महत्ता एक सुंदर, शालीन और व्यवस्थित रूप धारण कर लेती है। मेरा तो यह विश्वास है कि मनुष्य ने सभ्यता और संस्कृति के विकास से जितने भी सामाजिक नियमों का आविष्कार किया है उन सब में विवाह की व्यवस्था श्रेष्ठ है। मैं यहाँ

तक अनुमान करती हूँ कि भविष्य में भी मानव-समाज चाहे कितना ही अधिक उन्नत और प्रगतिशील क्यों न बन जाय, किसी भी हालत में वह विवाह-विधान को तोड़ने की बात नहीं सोच पावेगा। यह हो सकता है कि वह उसे और अधिक उन्नत और सुघड़ रूप देने की चेष्टा करे, पर उसे तोड़ेगा किसी भी हालत में नहीं—चाहने पर भी नहीं !"

विवाह के प्रति मञ्जरी का इस क़दर पक्षपात देखकर पारसनाथ का जी घबरा उठा और तेज़ कुनैन के-से स्वाद से कड़वा हो गया। अपने चेहरे पर अत्यन्त विरस और विकृत भाव प्रकट करके, चोरों की-सी सूरत बनाकर, कुछ-कुछ लकियाता हुआ-सा वह बोला—"सच पूछो तो मैं विवाह-प्रथा को ढोंगियों और सफ़ेदपोश बदमाशों की प्रथा समझता हूँ। जहाँ सच्चा प्रेम नहीं है, जहाँ दो पक्षों के पार्थिव स्वार्थ की क़ानूनन् रक्षा का प्रश्न ही सबसे बड़ा प्रश्न है, वहीं विवाह की आवश्यकता है। इस प्रकार की प्रथा मनुष्य को केवल सामाजिक विधि-निषेधों का दास या कठपुतला बनाने के सिवा और कोई भी उपयोगिता नहीं रखती। जो सामाजिक विधान व्यक्ति को पूरी स्वतंत्रता नहीं देता वह जाय चूल्हे में—उसकी तनिक भी परवा करना किसी भी समझदार व्यक्ति का काम नहीं है।"

मञ्जरी के मुख पर घबराहट और भ्रान्ति के चिह्न देखकर वह सँभल गया। बोला—"मेरी बात का यह अर्थ न लगाना कि मैं तुमसे विवाह नहीं करूँगा। तुम अगर विवाह को आवश्यक समझती हो तो मैं अवश्य विवाह करूँगा। पर एक बात है। अभी मेरी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। स्थिति सँभलते ही मैं जल्दी से जल्दी इस सामाजिकता की पूर्ति कर सकूँगा, ऐसी आशा रखता हूँ।"

मञ्जरी ने कहा—"यह बात बिलकुल भी ज़रूरी नहीं है कि विवाह बड़े आडम्बर और टीमटाम से हो।"

"फिर भी आख़िर दो-चार आदमियों को न्योता देना ही होगा, दो-तीन जोड़े कपड़े ख़रीदने और सिलाने होंगे, दो-एक गहने (चाहे नक़ली ही क्यों न हों) मोल लेने ही होंगे। इसी तरह और भी दो-चार ख़र्चे निकल ही आवेंगे।"

"अंदाज़ से कुछ बता सकते हो कि तुम्हारी स्थिति कब तक इस क़ाबिल हो जावेगी।"

मंजरी के इस साधारण-से प्रश्न से पारसनाथ का चेहरा सहसा आश्चर्यजनक रूप से म्लान हो आया। उस पर एक ऐसी अनोखी, घनी वेदना की कालिमा पुत गई कि मंजरी देखकर चकित रह गई। ऐसा मालूम होता था जैसे वह अब रो ही देगा। उसके मुख का वह भाव देखकर मंजरी का हृदय करुणा से बरबस भींग गया। उसने अत्यंत कोमलता से पारसनाथ की गर्दन पर हाथ रखकर बड़े ही स्निग्ध और सरस स्वर में कहा—"क्या मेरी किसी बात से तुम्हारे मन पर चोट पहुँची है? अगर मुझसे अनजान में कोई भूल हुई हो तो मुझे क्षमा कर दो!

पारसनाथ बहुत ही धीरे से एक अनोखी दर्द-भरी आवाज में बोला—"नहीं, तुमसे कोई भूल नहीं हुई है। पर मैं बड़ा ही अभागा हूँ, इसलिये अक्सर मेरे हित की बात भी मेरे लिये उलटी सिद्ध हो जाती है। तुम्हारी बात के महत्व को मैं अच्छी तरह महसूस कर रहा हूँ। विवाह के विरुद्ध मैं जो तर्क कर रहा था, उसके दो कारण हैं। एक तो मेरी विरोधी बात करने की भौंड़ी आदत, दूसरे मेरी आर्थिक विवशता, जिसके कारण मुझे पग-पग पर ग्लानि, अपमान और संकोच का सामना करना पड़ता है। मैं सच कहता हूँ, मंजरी, आर्थिक विवशता ने मेरे जीवन की मूल गति को ही अत्यन्त निष्ठुरता से रूँध डाला है। मुझे कभी-कभी ऐसा मालूम होने लगता है कि मेरे

भाग्य के भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के तत्वों ने मिलकर मेरे विरुद्ध एक अत्यन्त विकट भयावना चक्र रच डाला है। उस चक्र ने मुझे इस बुरी तरह उलझा डाला है कि मैं एक भयंकर बेबसी का अनुभव करने लगा हूँ। भाग्यचक्र के उस कठोर पेचकश के दबाव से मेरी इच्छा-शक्ति ही जैसे निर्जीव पड़ गई है। अपनी वर्तमान मानसिक और भौतिक परिस्थितियों से ऊपर उठने के लिये मैं बार-बार छटपटाने की चेष्टा करता हूँ, पर छटपटाने में भी अपने को असमर्थ मालूम करने लगता हूँ। बीच बीच में बरबस अपने मन की इस दशा को भुलाने की कोशिश करता रहता हूँ। पर जरा-सी ठेस से वह दबी हुई पीड़ा टीस मारकर जाग उठती है। विवाह की बात प्रारम्भ से ही मेरे भीतरी मन में कुलबुला रही थी। मैं इस समय तक अपने-आपको धोखा देता हुआ उसे भुलाए हुए था। पर आज उसकी चर्चा उठते ही जैसे मेरे भीतरी घाव के मर्मस्थान को किसी ने खरोंच दिया, और उस मूल पीड़ा के साथ उसकी सहायक और भी सैकड़ों सोई हुई पीड़ाएँ जग उठी हैं। क्षमा तुम्हें मुझे करना होगा, मंजरी! तुम्हारे स्वभाव की स्नेहशीलता, विश्वास-परायणता और धैर्य का पता मुझे लग गया है। इसलिये मैं तुमसे एक आन्तरिक प्रार्थना करना चाहता हूँ। क्या तुम मुझे वचन दे सकती हो कि मेरी उस प्रार्थना को तुम निष्फल नहीं जाने दोगी?"

मंजरी इस बीच पारसनाथ की ठुड्डी पर इस तरह हाथ फेर रही थी जैसे वह एक प्यारा-प्यारा, नन्हा-सा, मासूम बच्चा हो। मधुर पुचकारभरे स्वर में उसने कहा—"इस कदर अधीर होना तुम्हें नहीं सुहाता। इस तरह की बात कहकर तुम मुझे लज्जित क्यों करते हो? भला मैं किस प्रार्थना के योग्य हूँ! अगर तुम्हारे प्रति मेरे मन में प्रेम न भी जगा होता, तो भी मैं मरते दम तक तुम्हारी इस महान् कृपा और सदाशयता को न भूलती कि मेरी चरम विपत्ति और अनाथ और

असहाय अवस्था में तुमने मुझे अपने पास आश्रय दिया है। मेरी दुःखिनी माँ के अंतिम दिनों में तुमने जिस लगन से उसकी सेवा की है, जिस सच्ची सहृदयता से तुमने मेरी रखवाली की है, वह क्या किसी भी हालत में भुलाने की बात है ! हीन से हीन व्यक्ति भी कृतज्ञता के उस बंधन को सुखपूर्वक स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता। यह जानते हुए भी तुम डरते हुए संकोच के साथ कहते हो कि 'मैं तुमसे एक आंतरिक प्रार्थना करना चाहता हूँ!' (यहाँ पर मञ्जरी का गला सहसा भर आया) कभी-कभी तुम बड़ी निष्ठुर बात कह जाते हो।" यह कहकर उसने दोनों बाँहों से बड़ी मज़बूती के साथ पारसनाथ का कंधा जकड़ लिया, और उसके गाल से अपने गाल को इस तरह धीरे से रगड़ने लगी जैसे हिरनी अपने नव-परिचित प्रेमी हिरन के सिर से अपना सिर रगड़ती है।

पारसनाथ भाव-विह्वल होकर बोला—"नहीं मञ्जरी, मैं सच्चे हृदय से तुम्हें श्रद्धा और सम्मान के योग्य समझता हूँ, और तुम्हारे स्वभाव की शालीनता और चरित्रबल की तुलना जब मैं अपने से करता हूँ तो अपने को किसी हद तक हीन और ओछा पाता हूँ, इस बात की कल्पना भी शायद तुम नहीं कर सकोगी। मैंने तुम्हारे सङ्कट के अवसर पर तुम्हें 'आश्रय' देकर रत्ती भर भी कृपा तुम पर नहीं की है, मेरी बात पर तुम विश्वास कर लो। तुम्हारे चरित्र-बल की दृढ़ता ऐसी वास्तविक और आश्चर्यजनक है कि वह किसीके 'आश्रय' की रंचमात्र अपेक्षा नहीं करती। बल्कि तुम्हीं ने मुझे अभय देकर अपने इतने निकट आने की अनुमति दी, इससे मैंने अपने को कितना अधिक गौरवशाली समझा है, यह मैं क्या बताऊँ। जो भी हो, जो बात मैं कहना चाहता था वह तो रह ही गई। मैं तुमसे यह प्रार्थना करना चाहता हूँ, मञ्जरी, कि तुम अभी कुछ समय तक विवाह की बात बिलकुल भूल जाओ। कम से कम साल भर तक के लिये इस

बात को स्थगित रहने दो। मैं चाहता हूँ कि अभी कुछ समय तक हम दोनों नरक के बीच में नरक के कीड़े ही बने रहें। मुझे विश्वास है कि साल-भर बाद मैं अपनी आर्थिक स्थिति को बहुत-कुछ सुधारने में समर्थ हो सकूँगा। तब नरक के इस निवास से बाहर निकलकर, समाज के बीच में पाँव रखकर विवाह करने में बड़ी सहूलियत होगी। बोलो, तुम्हें क्या मेरा यह प्रस्ताव मंजूर है? क्या मुझ पर तुम इतना विश्वास करती हो कि साल-भर तक प्रसन्नता से, धैर्य और साहस के साथ, वर्तमान अस्वाभाविक परिस्थिति को स्वाभाविक रूप से निबाहते जाना स्वीकार करोगी? बोलो!"

कुछ क्षणों तक मञ्जरी के मुख पर गंभीर चिंता की छाप अंकित हो गई थी। पर शीघ्र ही उसके मुख का वह भाव स्वाभाविक मुद्रा में बदल गया। उसने सहज-स्नेह भरी आवाज़ में कहा—"मुझे तुम पर पूरा विश्वास है, जिसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि विवाह न होने पर भी मैं तुम्हारे साथ विवाहिता स्त्री से भी अधिक विश्वास और सहज अधिकार के साथ रहने लगी हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि हम दोनों का विवाह हो जाना मैं परम आवश्यक समझती हूँ, पर अगर अभी तुम्हें यह बात सुविधाजनक नहीं मालूम होती तो मैं साल भर क्या दो साल तक भी बड़े धैर्य और विश्वास के साथ उस सम्बन्ध में चुप रह सकती हूँ।" यह कहकर वह फिर एक बार पारसनाथ के घुँघराले बालों को अपनी प्रेम-पुलकित उँगलियों से धीरे से सहलाने लगी।

पर पारसनाथ के भीतर न जाने क्या होने लगा था। मंजरी के उस स्नेह स्पर्श से उसके मन में और शरीर पर भयंकर विरसता और उत्कट ग्लानि के कारण तीखे ज़हरीले काँटे खड़े हो रहे थे। अपनी उस नयी और अप्रत्याशित अनुभूति के कारण उसे बड़ी मानसिक पीड़ा हो रही थी, और उसके लिये वह अपने आपको कोस रहा था।

पर प्रबल चेष्टा करने पर भी वह किसी भी उपाय से उस अरुचिकर अनुभूति से छुटकारा नहीं पा रहा था। न चाहने पर भी उसके मन में यह इच्छा होती थी कि एक सबल झटके से मंजरी के स्नेह-पाश से अपने को छुड़ाकर, अपने भीतर के और बाहर के दम घोटनेवाले वातावरण से मुक्त होकर कहीं भाग निकले; किसी ऐसे अज्ञात, शून्य, एकाकी और निपट निर्जन स्थान में जा पहुँचे जहाँ न किसी व्यक्ति का बंधन हो न समाज का, न निज का दबाव हो न पराये का;—हो केवल अनंत सूनापन और इच्छा की बाधाहीन, अटूट और उन्मुक्त गति।

अकस्मात् ऐसी भयंकर वीतरागता उसमें कैसे आ गई, कुछ देर तक इसका कोई कारण स्वयं उसकी समझ में नहीं आ पाया। केवल वीतरागता ही नहीं, एक अनोखे भय और ग्लानि का मिश्रित भाव उसकी छाती पर जैसे बरबस चढ़ बैठा था। आज जितनी भी बातें मञ्जरी से हुई थीं उन सबका एक ऐसा सम्मिलित प्रभाव उसके मन और मस्तिष्क पर पड़ा जो उसे बड़ा ही भयावना लग रहा था। अपनी दुर्भाग्य-पीड़िता, अंधी माँ की जिस विकट ईर्ष्या-परायणता का हौलनाक वर्णन मञ्जरी ने किया था, उसने पारसनाथ का दिल पहले ही दहला दिया था; तिसपर जब उसने विवाह की चर्चा चलाई, तो उसकी मानसिक आँखों के आगे सारी स्थिति एक दूसरे ही रूप में आ खड़ी हुई। प्रारंभ में जिस रोमांटिक भावना अथवा कोरी भावुकता की प्रेरणा से वह अत्यंत प्रबलता के साथ मञ्जरी के प्रति आकर्षित हुआ था उसने उसके अनजान के उसके मन में किसी एक गहरे स्तर पर अपना रंग जमाना आरंभ कर दिया था। उसके अनजान ही में बात बढ़ते-बढ़ते बहुत दूर तक पहुँच चुकी थी। और, आज जब अचानक उसके अवचेतन मन के ऊपर का पर्दा फटा, तो उसने अत्यंत भयभीत होकर देखा कि मञ्जरी के संसर्ग में बहुत ही घनिष्ठ और मार्मिक रूप में आने पर भी उसकी मूल प्रकृति में विशेष अंतर नहीं आ सका है—हालाँकि

मूल प्रकृति के ऊपरी स्तरों पर उस संसर्ग का बड़ा जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है। जिस भगोड़ी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर दार्जिलिंग की पहाड़ी लड़की को ऐन मौके पर धोखा देकर वह भागकर चला आया था, वही दबी हुई प्रवृत्ति आज अकस्मात् उसके मन के तल में उमड़ती-घुमड़ती हुई ऊपर को उठती हुई मालूम हो रही थी। 'विवाह' शब्द ने उसकी प्रकृति के लिये जैसे भयंकर हौवा का रूप धारण कर लिया था। पर वर्षों से इस बात का कारण खोजने की बहुत चेष्टा करने पर भी वह उसकी पकड़ में नहीं आता था।

फिर भी इस बार अपने स्वभाव के एक विशेष परिवर्तन पर उसका ध्यान गया। वह यह कि पहाड़ी लड़की को जिस आसानी से छोड़कर वह भाग निकला था, मञ्जरी को उस आसानी से वह छोड़ नहीं पावेगा, यह बात वह निश्चित रूप से समझ गया था। मञ्जरी ने वास्तव में अपने सुदृढ़ चरित्रबल के आधार पर प्रतिष्ठित सहृदय और मार्मिक प्रेम को पारसनाथ के मन की इस हद की गहराई तक पहुँचा दिया था कि उससे सहज ही में पिंड छुड़ाना उसे असंभव-सा लग रहा था।

"पर क्या उससे पिंड छुड़ाना ही होगा!"—मञ्जरी के स्नेह-स्पर्श की विरसता का अनुभव करता हुआ वह सोचने लगा—"क्या यह मेरा कर्तव्य नहीं है कि मैं उस लड़की से विवाह करके अपने प्रेम को स्थायी और सामाजिक रूप दूँ, जिसने यह जानकर भी कि मैं जारज हूँ, मेरे प्रति अपनी प्रेम-भावना में तनिक भी सिकुड़न नहीं आने दी, बल्कि उसे और अधिक फैला दिया? उससे विवाह करके जीवनव्यापी संबंध स्थापित कर लेना केवल मेरा कर्तव्य ही नहीं है, बल्कि वह मेरे लिये, मेरी नारकीय आत्मा के लिये, कल्याणकारी भी है। अपने विशृंखल जीवन में स्थिरता लाने का एक सुयोग मेरे सामने आया है; यदि अपने विकृत स्वभाव की चरम हीनतावश उसे भी मैं गवा बैठा

तो फिर त्राण का कोई भी उपाय कहीं, किसी भी रूप में, मेरे लिये नहीं रह जायगा। इसलिये मुझे यह बंधन स्वीकार करना ही होगा, चाहे इस समय मुझे वह कैसा ही विरस और अप्रीतिकर क्यों न लगता हो।"

यह सोचते ही उसने आश्चर्य के साथ अनुभव किया कि जिस विरसता और ग्लानि की भावना ने अभी कुछ ही समय पहले उसे बुरी तरह से धर दबाया था, वह उसी तरह, जैसे किसी जादू के मंत्र से, अपने आप काफ़ूर भी हो गई। मंजरी के प्रति प्रेमाकर्षण की जो अनुभूति उसे बासी और निर्जीव लगी थी, उसने सहसा अंतस्तल के भाव-जगत् के किसी इंद्रजाली पारस के स्पर्श से फिर से ताज़ा और नये जीवन के स्पंदन से फड़कता हुआ रूप धारण कर लिया। वह अचानक उठ खड़ा हुआ और मंजरी के एकदम निकट चला गया। इसके बाद आंतरिक उल्लास से तरंगित होकर उसने मंजरी को अत्यंत दृढ़ आलिङ्गन-पाश में जकड़ लिया।

बीसवाँ परिच्छेद

चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था; केवल बीच-बीच में पासवाले इमली के पेड़ पर बसेरा लेनेवाले बगुलों के बच्चे किसी अज्ञात आशंका से एक अनोखे और रहस्यपूर्ण स्वर में चहचहा उठते थे।

कुछ क्षणों तक दोनों चरम भावमग्न अवस्था में एक दूसरे के बाहु-बंधन में जकड़े रहे। अचानक पारसनाथ किसी कारण से चौंक पड़ा, और मोह-मग्न मंजरी के बाहु-बंधन से अपने को छुड़ाकर उचककर उठ बैठा। मंजरी ने बड़ी घबराहट के स्वर में पूछा—"क्या हुआ?" पारसनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। मंजरी भी उठ बैठी और अत्यंत

चिन्तित और व्याकुल भाव जताते हुए उसने फिर प्रश्न किया—"आखिर क्या बात हुई, बताते क्यों नहीं !"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं !"—अत्यन्त क्षीण स्वर में पारसनाथ ने उत्तर दिया। ऐसा मालूम होता था जैसे गले के भीतर के किसी अँधेरे कोने में छिपे हुए अधखुले छिद्र से वह आवाज़ आ रही हो।

मंजरी ने चारपाई से उठकर लालटेन जलाई। लालटेन के प्रकाश में उसने देखा, पारसनाथ की आँखों में एक अनोखी घबराहट और भ्रांति का-सा भाव छाया हुआ था। उसने फिर पूछा—"ज़रा बताओ तो सही, कि तुम अचानक क्यों चौंक उठे ?"

पारसनाथ ने शून्य की ओर देखते हुए कहा—"मुझे योंही भ्रम हो गया था। तुम अब अपनी खटिया पर सो जाओ। मैं भी लेट जाता हूँ। बत्ती चाहे जली रहने दो।"

मंजरी का कौतूहल और अधिक बढ़ गया था, और वह फिर एक बार पूछना चाहती थी कि बात असल में क्या हुई; पर पारसनाथ उसकी ओर से मुँह फेरकर इस ढङ्ग से लेट गया, जैसे स्पष्ट जता देना चाहता हो कि उसके किसी भी प्रश्न का उत्तर देने की मानसिक स्थिति उसकी नहीं है। विवश होकर मंजरी भी अपनी खटिया पर जाकर लेट गई। पर अनेक उद्भ्रांत कल्पनाओं ने चारों ओर से उसके मन और मस्तिष्क को इस तरह छा दिया कि बहुत देर तक उसे नींद न आई।

असल में पारसनाथ को अकस्मात् एक ऐसा रहस्यमय अनुभव हुआ, जो इधर कुछ दिनों से उसके जान में या अनजान में, समय-असमय, अस्पष्ट, छायात्मक रूप से उसे परेशान कर रहा था। जब वह मंजरी को एकांत भावमग्न अवस्था में अपनी छाती से जकड़े हुए या तो उस अँधेरे कमरे में, अपनी बंद आँखों से निकलनेवाली

चिनगारी के प्रकाश में, उसे स्पष्ट दिखाई दिया (कम-से-कम उसे उस समय ऐसा ही लगा) कि उस अधेड़ और अंधी स्त्री की विकट और लोमहर्षक प्रेतछाया, आतंक उत्पन्न करनेवाली, बीभत्स और कुटिल व्यंगपूर्ण मुसकान मुख पर झलकाकर उन दोनों के बीच में आकर खड़ी हो गई है। मञ्जरी ने आज उसकी जिस प्रचंड ईर्ष्यापरायणता का वर्णन किया था वह भी उस गतिशील और भयावनी छायामूर्ति की मुखमुद्रा में जैसे प्रतिहिंसा के रंग में रँगी हुई, स्पष्ट उभरी हुई दिखाई देती थी। मञ्जरी की माँ की मृत्यु की जिस कालरात्रि में उसके मुख का जो प्रेत-रूप उसने देखा था, और जिसे देखकर वह एक अज्ञात, रहस्यमय भय से सिहर उठा था, आज की छायामूर्ति का रूप उससे कई गुना अधिक बीभत्स और भयंकर उसे लगा। उसे देखते ही वह उचक उठा था। उसे ऐसा जान पड़ा कि मञ्जरी को और कुछ देर तक जकड़े रहने से वह प्रेतछाया निश्चय ही उसका दम घोटकर छोड़ेगी। ध्यान देने योग्य बात यह है कि उसका विवेक निश्चित रूप से यह जानता था कि वह रोमांचकारी छाया-मूर्ति उसके शंकित मन की भ्रांति के समूर्त रूप के सिवा और कुछ नहीं है। पर उसके विवेक के इस निश्चित विश्वास से उसके भ्रांत और भीत मन को तनिक भी तसल्ली नहीं मिल रही थी।

जब वह मञ्जरी के कौतूहल और आशंका का निवारण किये बिना ही कंबल से नाक-मुख ढककर, गुड़मुड़ी बाँधकर, चुपचाप लेट गया, तो भी बहुत देर तक वही भयावनी छाया उसकी आँखों की बन्द पुतलियों के आगे समूर्त, सजीव रूप में क्षण-क्षण में मुद्राएँ बदलती हुई-सी चलती-फिरती रही। वह उस छायाचित्र को मिटाने के लिये ज्यों ज्यों अपनी पलकों से पुतलियों को दबाता था त्यों-त्यों वह हौलनाक प्रेतछाया अधिकाधिक स्पष्ट रूप से उभरती हुई जान पड़ती थी। बीच-बीच में वह कंबल के भीतर ही पलकों को उघाड़ देता था—इस आशा

से कि आँखों की पुतलियों के उपड़े रहने से यह छायामूर्ति संभवतः अपने-आप विलीन हो जायगी। पर यह उपाय भी व्यर्थ सिद्ध हो रहा था। एक बार उनकी इच्छा हुई कि करवट बदले और मुख पर से कंबल हटाकर लालटेन के प्रकाश में आँखें खोले। पर इस भय से कि ऐसा करने से मञ्जरी को कैफ़ियत देनी होगी और उसके प्रश्नों का उत्तर देने को बाध्य होना पड़ेगा, उसे न मुँह खोलने का साहस होता था न करवट बदलने का। वह उसी स्थिर अवस्था में लेटा हुआ उस अनोखी, दिल दहलानेवाली, और दम घोटनेवाली भूतभावना से छुटकारा पाने के लिये बुरी तरह से छटपटाने लगा। आँखें बन्द किये हुए उसे ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे असंख्य छोटे-छोटे — बहुत ही छोटे—पीले-पीले प्रकाश-कण अनंत अन्धकारमय शून्य के बीच में टिमटिमा रहे हैं, और उन पुञ्जीभूत ज्योतिष्कणों के बीच में वह कभी न हटनेवाली प्रेत-छाया अपने चीमड़, पंजेनुमा हाथों की लंबी-लंबी, पतली-पतली उँगलियों के तीखे और नुकीले नाखूनों से उसे नोचने के लिये निरंतर आगे को बढ़ी चली जा रही है। ऐसा जान पड़ता था कि वह अकेली नहीं है, बल्कि उसके चारों ओर असंख्य छाया,अनुचर और अनुचारियाँ, भूत-बैताल, यक्ष और यक्षिणियों की तरह मँडरा रहे हैं।

"पागल! पागल! क्या यह अनोखी भ्रांति मुझे पागल किये बिना न मानेगी!"—उसी स्थिर अवस्था में लेटा-लेटा पारसनाथ सोचने लगा—"क्या सचमुच मेरा दिमाग़ इतना कमज़ोर पड़ गया है कि इन छायामूर्तियों से किसी तरह अपना पिंड नहीं छुड़ा पाता? यह तो स्पष्ट है कि ये सब छायामूर्तियाँ मेरी शंकित और भ्रांत कल्पना की उपज के सिवा और कुछ नहीं हैं, तिस पर भी ये सजीव और साकार रूप धारण करके इस बुरी तरह मेरे पीछे पड़ी हुई हैं—यह मेरे रोगी मन की अनोखी धुन है!"

एक ओर वह स्वकल्पित छायामूर्तियों की गति-विधि को बड़े ग़ौर से देख रहा था, दूसरी ओर आकाश और पाताल से संबंध रखनेवाली तरह-तरह की चिंताएँ कर रहा था। पूरे दो घंटे तक उसके मन की यही स्थिति रही। उसके बाद उसकी थकित आँखें झपने लगीं, और वह गहरी नींद में सो गया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन सुबह जब पारसनाथ जगा, तो उसे अपने चारों ओर का वातावरण श्मशान की तरह एक मृत्युमयी छाया से घिरा हुआ मालूम हुआ। उसके अंतराल में प्रेतलोक के विचित्र छायात्मक जीवों का अनोखे ढंग से कुलबुलाना और फुसफुसाना निरंतर एक तार में और एक गति में चल रहा था। शरत्काल की पीली धूप भी उसे मृत्यु-किरणों के प्रकाश की परछाँई की तरह लग रही थी। ऐसा जान पड़ता था जैसे भय-भ्रांति से भरे मृत्यु-जगत् के भौतिक चरों ने मानव-जगत् के संपूर्ण जीवन-चक्र को एक अदृश्य मरण-माया से छा दिया है, और पृथ्वी पर समस्त जीवन-तत्वों को जड़, निष्प्राण और निश्चेतन बना दिया है।

वह बिस्तर पर लेटे-लेटे छत की कड़ियों की ओर शून्य दृष्टि से ताक रहा था और उस चरम अवसाद और निपट उदासी के रंग में रँगी हुई अनुभूति से ग्रस्त होकर ऐसा निश्चेष्ट बन गया था कि बार-बार बिस्तर पर से उठने की ठानने पर भी उठ नहीं पाता था। जैसे किसी ने लोहे की मोटी जंज़ीर से कसकर उसके पाँव बाँध दिए हों। जब मंजरी एक कप में चाय लेकर आई तो उसके मुख पर सकरुण और सहृदय मुसकान की मृदु-मंद झलक देखकर पारसनाथ के मन

में एक अजीब बेचैनी समा गई, जिसका कारण स्वयं उसके मन के में कुछ नहीं आया। एक प्रबल झटके से अपनी निश्चेष्ट लगा। उसके को झाड़कर वह उठ बैठा, और मंजरी के हाथ से प्याला छीन लिया, और स्व घूँट करके पीने लगा।

मंजरी ने धीरे से, कुछ डरी हुई-सी आवाज़ में कहा—"आज तुम्हारा चेहरा एकदम उतरा हुआ है, क्या बात है! तबीअत तो ठीक है?"

उसकी ओर न देखकर, चाय पीते हुए पारसनाथ ने अस्पष्ट स्वर में उत्तर दिया—"बिलकुल ठीक है।"

"कल रात तुम्हें अचानक क्या हो गया था?"

पारसनाथ ने चाय पीते हुए एक बार मञ्जरी की ओर देखा। सहसा उसका ध्यान एक ऐसी बात पर गया, जो प्रत्यक्ष होने पर भी, न जाने क्यों, आज तक उसकी आँखों की पैनी दृष्टि से छिपी रह गई थी। वह इस कदर भयभीत हो उठा कि प्याला शेष चाय सहित उसके हाथ से नीचे गिरते-गिरते रह गया। आज तक मञ्जरी के भाव-सौंदर्य की तेजस्विता ने उसकी मुखाकृति की विभिन्न रेखाओं की विशेषताओं को एक सम्मिलित रूप देकर पारसनाथ की आँखों में चकाचौंध सा लगा रखा था। आज अचानक एक अनोखी, अस्वाभाविक प्रेरणा के फलस्वरूप उसने देखा कि मंजरी के उस सचेत भाव-सौंदर्य के अंतराल में, उसके कपाल, भौंह, नाक, ओठ और ठुड्डी की रेखाओं में, उसकी मृत माता के उसी जर्जर और चीमड़ मुख का साम्य वर्तमान है, जिसके बीभत्स छायात्मक रूप ने इधर कुछ दिनों से, और विशेष कर कल रात से, उसकी (पारसनाथ की) छाती को चमगीदड़ की तरह जकड़ रखा है!

उसकी आँखों में एक लोमहर्षक भौतिक भय की प्रतिच्छाया

ञ्जरी बेहद घबरा गई। अत्यंत करुण और मार्मिक वेदना ...भा ने जैसे उसके मुख पर नील पोत दिया। प्रायः रोनी-सी सूरत बना उसने कहा—"तुम्हें कल से क्या हो गया, बताओ! चुप हुआ, बोलो! बोलो!" उसके स्वर में दारुण भय और मर्मच्छेदी पीड़ा के अलावा स्नेह-रस पुचकार और सकरुण दुलार का भाव भी वर्तमान था। पारसनाथ कुछ क्षणों तक चाय पीना छोड़कर, चाय का प्याला निश्चेष्ट भाव से हाथ में लिए उसी भीत दृष्टि से एकटक मंजरी की ओर देखता रहा। उसके बाद शेष चाय को, जो काफ़ी ठंडी हो चुकी थी, एक घूँट में समाप्त करके तश्तरी-सहित प्याला नीचे रख दिया, और बिना कुछ बोले, अनमने भाव से, अपनी धोती के पल्ले से हाथ और मुँह पोंछने लगा। मञ्जरी उसकी बग़ल में बैठ गई, और बायाँ हाथ उसके गले में डालकर और दाहिने हाथ को धीरे से उसके गालों पर फेरती हुई अत्यंत व्याकुल विह्वल भाव से बोली—"इतने घबराये हुए क्यों हो, बोलो! बोलो!" उसकी आँखों से गरम-गरम आँसू अटूट लड़ी के रूप में बहने लगे थे। पारसनाथ ने फिर एक बार बड़े ग़ौर से उसकी ओर देखा। आंतरिक वेदना का जैसा मर्मघाती रूप उस समय मञ्जरी के चेहरे से व्यक्त हो रहा था वह असाधारण था। पारसनाथ ने कभी इस बात की कल्पना नहीं की थी कि मञ्जरी के समान अभिमानिनी, शांत और संयत-स्वभाव नारी अपनी निपट व्याकुलता और चरम विह्वलता को इस हद तक मुक्त रूप से व्यक्त कर सकती है। उसका वह चरम समवेदनात्मक रूप एकदम अप्रत्याशित, आश्चर्यजनक और अपूर्व था। उसे देख-देखकर पारसनाथ को ऐसा अनुभव होने लगा कि मञ्जरी के मर्म के अतल से उमड़े हुए आँसुओं की खरधारा के प्रवाह के साथ जैसे उसके हृदय का सारा भय, समस्त भ्रांति तीव्रगति से बहती चली जा रही है। भूत के झाड़े जाने के बाद भूतग्रस्त व्यक्ति का मन जिस प्रकार हलका और स्वस्थ हो उठता है,

पारसनाथ के मन की भी ठीक वही दशा होने लगी। अपने मन के उस आत्मिक भाव-परिवर्तन पर उसे स्वयं आश्चर्य होने लगा। उसके मन की आँखों से जैसे किसी ने भ्रम का चश्मा उतार कर फेंक दिया, और मंजरी का सहज-सहृदय, करुण और कोमल रूप सरल और स्वाभाविक वेष में उसके सामने उभर उठा। उस रूप में उसकी माँ की विकृत प्रेतात्मा की छाया का लेश भी कहीं नहीं दिखाई देता था।

"इतनी बड़ी भ्रांति के चक्कर में पड़ा हुआ था मैं! ऐसी भयंकर मानसिक दुर्बलता का शिकार बन गया हूँ मैं! इस दुर्बलता पर मुझे हर हालत में विजय पानी ही होगी—यदि मैं परिपूर्ण विनाश से आत्म-रक्षा करना चाहता हूँ तो!"

यह सोचकर पारसनाथ मंजरी की पीठ पर हाथ रखकर सान्त्वना के स्वर से बोला—"मुझे कुछ भी नहीं हुआ, मंजरी! तुम इस क़दर क्यों घबरा उठी हो! मेरे पेट में अचानक दर्द उठ गया था। अब बिलकुल ठीक हो गया है। चिंता की कोई बात नहीं है।" यह कह-कर वह बड़े प्यार से मंजरी की पीठ थपथपाने लगा। उसकी इस बात से मंजरी के भीतरी मन से संदेह का काँटा दूर नहीं हुआ, पर ऊपरी मन को बहुत कुछ तसल्ली मिल गई। आँसू पोंछने के बाद जब वह कुछ स्थिर हो गई, तो गद्‌गद् स्वर में बोली—"मैं तो बेतरह डर गई थी! तुम अपने पेट का इलाज किसी डाक्टर से क्यों नहीं कराते? इधर कुछ दिनों से तुम्हारा स्वास्थ्य काफ़ी गिरा हुआ मालूम होता है।"

"मैं आज डाक्टर के पास जाऊँगा। इस समय तुम मेरे लिये खिचड़ी बना दो। खा-पीकर मैं चल दूँगा।"

मंजरी धीरे से उठी और नीचे चली गई।

बाईसवाँ परिच्छेद

खा-पीकर पारसनाथ बाहर निकला। तरह-तरह की चिंताएँ करता हुआ, निरुद्देश्य भाव से पैदल टहलता हुआ, एक खुले स्थान में जा पहुँचा। वहाँ धूप खाने के इरादे से एक स्थान पर लेट गया। वहाँ एकांत शांति छाई थी। आस-पास में कहीं कोई आदमी नज़र नहीं आता था। केवल एक व्यक्ति, जो सूरत-शक्ल और पोशाक-पहनावे से मुसलमान मालूम होता था, सामने कुछ दूरी पर एक ताड़ के पेड़ की छाया के नीचे उसी की तरह लेटा हुआ था।

लेटे-लेटे पारसनाथ ने अपनी तत्कालीन मानसिक दशा पर विचार करना चाहा। तरह-तरह की, बेसिर-पैर की, ऊटपटाँग कल्पनाएँ उसके मस्तिष्क में कूद-फाँद मचाने लगीं। इसके बाद न बहुत तेज़, न बहुत मीठी धूप की गरमी से उसका शरीर अलसाने लगा, और कुछ समय बाद उसकी आँख लग गई। रात में उसे अच्छी तरह से नींद नहीं आई थी। इसलिये प्रायः एक घंटे तक वह सोता रहा; जब जगा तो सारा बदन धूप से तर रहा था, और मुख पर पसीने की बूँदें चमक रही थीं। अधिक गरमी न सह सकने के कारण वह उठ बैठा, और थोड़ी देर बाद वहाँ से उठकर चल दिया।

अनिश्चित पगों से, निरुद्देश्य अवस्था में वह चला जा रहा था। कहाँ जा रहा है, और किस ओर उसे जाना है, इसकी कोई चेतना उस समय उसके चिंताग्रस्त मन पर नहीं थी। उस निर्जन दुपहरी में कल रात की विभीषिका अलसाई हुई सी उसके अंतस्तल में सो रही थी, संदेह नहीं; पर बीच-बीच में उसके खर्राटे लेने की अस्पष्ट आवाज़ उसके सचेत मन के कानों में अस्पष्ट स्वर में गूँज उठती थी। और वह गूँज ऊपर निर्मल, नील आकाश में मँड़रानेवाली चीलों की तीखी

आवाज़ के साथ मिलकर एक निराले ही ढङ्ग की उदासी और घबराहट की अनुभूति से उसे रह-रहकर पीड़ित कर रही थी।

निर्जन सड़क से होकर चलता हुआ वह सोच रहा था—"मरते दम तक क्या इसी तरह के विचित्र-विचित्र भयों, भ्रांतियों और दुश्चिंताओं से मेरे जीवन का आकाश छाया रहेगा! जीवन भर क्या मैं शंकित और भीत मनसे इसी तरह निरुद्देश्य भटकता फिरूँगा! मुझे क्या हो गया है? क्यों मेरा मन इस कदर दुर्बल और अस्वस्थ हो गया है? क्यों मैं तरह-तरह की अर्थहीन और कारण-रहित उलझनों से सब समय जकड़ा रहता हूँ? क्यों मंजरी के समान स्वस्थ-हृदय और सबल-प्रकृति नारी का प्रेम पाकर भी उस प्रेम को पूर्ण रूप से अपनाने, और अपने भटके हुए जीवन में एक स्थिर निश्चित गति लाने में असमर्थ सिद्ध हो रहा हूँ! कौन ऐसी अज्ञात, भौतिक, प्राकृतिक या अप्राकृतिक शक्ति है, जो उसे अपनाने से मुझे बार-बार रोकती है, और बार-बार मुझे नरक के गहन से भी गहनतर स्तर की ओर बरबस घसीटे लिए जाती है! क्या वास्तव में कोई बाहरी शक्ति मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रचती चली जाती है, या मेरी नारकीय आत्मा के ही भीतर ऐसी कोई अज्ञात विकृति छिपी है जो मकड़े की तरह अनोखे भयों और भ्रांतियों के जाले बुनती रहती से! उन जालों में बहुत-सी मक्खियाँ फँसकर रह गई हैं, जिनका सत्त्व चूसकर उन्हें सूखे हुए छिलकों की तरह मृत अवस्था में जाले में लटके रहने के लिये मैंने छोड़ दिया है। पर बहुत संभव है कि उसी जाल में एक दिन मैं स्वयं इस तरह उलझ कर रह जाऊँगा कि उसी में सूखकर मरने के सिवा मेरे लिये कोई रास्ता नहीं रह जायगा।"

सोचते-सोचते उसका हृदय एक बार हहर उठा। वह चला जा रहा था। कुछ समय बाद निर्जन रास्ते को पार करके वह एक ऐसे स्थान

पर पहुँच गया जहाँ एक्के-ताँगे बड़ी तेज़ी से खड़खड़ाते हुए चले जा रहे थे। फुटपाथ से होकर चलता हुआ वह कुछ समय बाद बिना कुछ सोचे हुए एक गली के भीतर जा घुसा। उस गली के भीतर कुछ आगे जाने पर उसे सहसा यह चेत हुआ कि वह अपने अनजान में नंदिनी के मकान की गली के एकदम निकट आ पहुँचा है। वह ठिठक कर खड़ा रह गया। वह इरादा करके तो वहाँ नहीं आया था! यह कैसे संभव हुआ! निश्चय ही उसका अवचेतन मन उसके अज्ञान में किसी रहस्यमय उद्देश्य की प्रेरणा से जानबूझ कर उसे वहाँ घसीट लाया था! इतनी दूर तक चले आने के बाद लौट चलना उचित होगा? एक बार हो आने में हर्ज ही क्या है!

सहसा उसे याद आया कि जो पचास रुपये उसने नंदिनी से लिये थे उन्हें अभी तक लौटाया नहीं है। उस दिन लौटाने गया था, पर नंदिनी का रुख देखकर उसे लौटाने का साहस नहीं हुआ था। यदि आज वह तंगहाल हो, और रुपया वापस माँग बैठे, तब? आज तो उसके पास लौटाने के लिये रुपया नहीं है। "पर यह मेरी नीचता और मूर्खता है जो मैं इस तरह की बात सोचता हूँ!"—उसने मन-ही मन कहा—"वास्तव में उसे रुपयों की ज़रा भी परवाह नहीं है। अगर मैं चाहूँ तो वह मुझे पचास रुपया और दे सकती है।" उसे याद आया कि उसने उस बार केवल तीस रुपये चाहे थे, पर नंदिनी ने उसे जान बूझकर अनजान-सी बनकर पचास रुपये दे दिए थे। और जब वह रुपया लौटाने जा रहा था तो उसने कहा था—"मैं क्या शायलाक हूँ या सूदखोर काबुली!" और रुपयों को देखकर उसका मुख व्यंग, क्रोध और ग्लानि की मिश्रित छाया से, म्लान हो आया था। "पर वह मुझसे चाहती क्या है? वह क्या सचमुच मुझसे प्रेम करती है? हो सकता है! कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि वह विचित्र स्वभाव की स्त्री है। उस दिन वह कैसी ढिठाई से मेरे कंधे से कंधा सटाकर

मेरा हाथ पकड़कर देखने लगी थी ! उस दिन उसके स्वभाव में कैसा अल्हड़पन, कैसी लापरवाही और साथ ही कैसी शोखी भरी हुई थी ! और जब दूसरी बार मैं उसके पास गया था तब उसकी गंभीर मुखाकृति में मूक विषाद की कैसी म्लान छाया घिरी हुई थी ! उसकी उदास आँखों से अत्यंत करुण उलाहने से भरा कैसा मार्मिक और रहस्यमय भाव व्यक्त होता था ! उसकी उस निःशब्द व्याकुलता की निपट अवज्ञा करके मैं चला आया था। और तब से आज तक इस गली की ओर मैंने झाँका तक नहीं !"

नंदिनी से जब वह पिछली बार मिला था, तब से प्रायः डेढ़ महीना बीत चुका था। वह डेढ़ महीने का अर्सा उसे डेढ़ वर्ष से भी अधिक मालूम हो रहा था,—इस बीच ऐसे गहन अनुभवों से होकर वह गुज़र चुका था। वह सोच रहा था कि न जाने इस बीच नंदिनी के स्वभाव में कैसा परिवर्तन आ गया होगा। तरह-तरह की बेसिर पैर की कल्पनाएँ उसके मन में संकोच और द्विविधा का भाव उत्पन्न कर रही थीं। पर जिस परिमाण में संकोच का भाव बढ़ता जाता था उसी मात्रा में उससे मिलने की इच्छा उसके मन में प्रबल से प्रबलतर होती जाती थी।

अंत में उसने जाने का ही निश्चय किया। वह जिस स्थान पर द्विविधा के कारण खड़ा रह गया था वहाँ से उस गली की ओर आगे बढ़ा जहाँ नंदिनी रहती थी। मकान के पास पहुँचकर उसने दरवाज़ा खटखटाया। भीतर से तीखी किन्तु मीठी आवाज से किसी ने कहा—"कौन है ?"

उत्तर में पारसनाथ कुछ न बोला। कुछ क्षण बाद उसने दुबारा दरवाज़ा खटखटाया। फिर भीतर से तेज़ और तीखी आवाज़ में किसी ने कहा—"कौन है ?" पर पारसनाथ फिर भी चुप रहा। उसे जैसे

"मैं हूँ" कहने का साहस ही नहीं होता था। यह जानने में उसे देर न लगी कि आवाज़ नंदिनी की है। थोड़ी देर बाद किसी के सीढ़ियों से होकर नीचे उतरने का शब्द सुनाई दिया। उसे सुनकर पारसनाथ बरबस मन-ही मन कह उठा—"यह पगध्वनि मैं पहचानता!" उस पगध्वनि की ताल से ताल मिलाता हुआ उसका हृदय भी धक-धक धड़कने लगा। आज की यह अनुभूति उसके लिये एकदम नयी थी। उसके पहले वह कभी नंदिनी के पास जाने पर इस कदर विचलित नहीं हुआ था। उसे आश्चर्य इस बात पर अधिक हो रहा कि उसकी उस घबराहट में एक विचित्र प्रकार के सुख की-सी अनुभूति वर्तमान थी।

दरवाज़ा खुला। नंदिनी उसके आमने-सामने खड़ी थी। प्रथम क्षण में पारसनाथ ने उसके मुख पर चरम विस्मय की भ्रांति का भाव देखा। उसके बाद दूसरे ही क्षण वह भाव कोमल विषाद के एक हलके से आवरण के रूप में बदल गया। और उसके बाद ही, तत्काल, वह हलका-सा शरत्कालीन बादल भी हट गया, और निर्मल-शुभ्र प्रसन्नता के प्रकाश से उसका सारा मुख प्रभासित हो उठा। एक पुलक-पूर्ण सजलता उसकी सुंदर, बड़ी-बड़ी आँखों में झलकने लगी। पारसनाथ को आज उसके मुख का सौंदर्य एकदम नया, अनुपम और अपूर्व लगा, और उसका हृदय मीठी मादकता भरी पुलक-सिहरन का अनुभव करने लगा। इतने दिनों तक नंदिनी से उसका घनिष्ठ परिचय रहा, पर इस तरह की पुलकानुभूति तो वह कभी उसके भीतर जगाने में समर्थ नहीं हुई थी! तब आज कौन-सी नयी बात पैदा हो गई? क्या नंदिनी के सौंदर्य में कोई विशेष प्रकार की भावमग्नता आ गई थी, या उसके अपने ही स्वभाव में इधर कोई मूलगत परिवर्तन आ गया था? संभवतः दोनों ही कारणों के समन्वय से उस नयी अनुभूति की सृष्टि हुई थी।

कुछ क्षण तक दोनों एक-दूसरे को देख कर ठिठके से खड़े रहे। दोनों बोलना चाहते थे, पर जैसे दोनों में से किसी का पुलक-गद्‌गद कंठ फूटना ही नहीं चाहता था। ऐसा लगता था जैसे दोनों किसी विचित्र रहस्यपूर्ण सम-अनुभूति से, अचानक एक ही क्षण, एक ही रूप में, मोहच्छान्न-से हो उठे हैं।

पहले नंदिनी के मुँह से आवाज़ निकली। उसने नमस्कार के रूप में हाथ जोड़ते हुए क्षीण, गद्‌गद और अस्फुट स्वर में कहा—"आइए, पधारिए!"

"पधारिए" शब्द द्वारा शायद नंदिनी के अनजान में एक गुप्त व्यंग का आभास व्यक्त हो उठा—पारसनाथ ने इस बात पर ग़ौर किया। पर वह कुछ बोला नहीं, और भीतर प्रवेश करके सीढ़ियों से होकर ऊपर चलने लगा। नंदिनी भीतर से दरवाज़ा बन्द करने के बाद ऊपर गई। पारसनाथ को खड़ा देखकर नंदिनी ने क्षीण स्वर में कहा—"विराजिए।" उसकी आँखों में संकोच, वेदना और प्रसन्नता के भाव एक साथ व्यक्त हो रहे थे। पारसनाथ एक सोफा पर बैठ गया। नंदिनी भी पासवाले कौच पर धीरे से बैठ गई। कुछ देर तक दोनों एक-दूसरे के मुखों पर अंकित भावों की परीक्षा करते हुए-से चुप रहे। उसके बाद नंदिनी धीरे से बोली—"इतने दिनों बाद आपको आखिर हम गरीबों का ध्यान हो ही आया।" पारसनाथ संकोच से जैसे दबा जा रहा था। सिर कुछ नीचा करके उसने कहा—"मैं आपसे बहुत-बहुत क्षमा चाहता हूँ, नंदिनी देवी! इस बीच मेरा शरीर और मन दोनों अस्वस्थ रहे। इसलिये चाहने पर भी मैं आपकी तरफ न आ सका।" नंदिनी के मन में एक बार यह पूछने की प्रबल इच्छा हुई कि आखिर आपके मन के अस्वस्थ होने का क्या कारण उत्पन्न हो गया?" पर फिर चुप रह गई। कुछ समय तक फिर एक अशोभन मौन भाव कमरे

में छा गया। उसके बाद सहसा पारसनाथ ने ससंकोच (पता नहीं, आज वह नंदिनी के आगे इस क़दर अस्वाभाविक संकोच का अनुभव क्यों कर रहा था) प्रश्न किया—"भुजौरियाजी कहाँ हैं ?"

नंदिनी ने मृदु-मृदु संकोच के साथ मंद-मन्द मुस्कराते हुए कहा—"वह दो दिन से बाहर गये हुए हैं—एक बारात के साथ।" यह कहते हुए उसके ओठों के इर्द-गिर्द एक दुष्टतापूर्ण व्यंग का क्षीण आभास झलक उठा।

पारसनाथ ने पूछा—"विवाह में !"

"म—के ठाकुर साहब के मँझले लड़के की शादी है। ठाकुर साहब ने आपके भुजौरियाजी को सबसे उपयुक्त व्यक्ति समझकर विवाह का सारा प्रबन्ध उन्हीं के हाथों सौंप दिया है।" उसकी व्यंग-पूर्ण मुसकान इस बार और अधिक तीखी हो उठी।

"अच्छा, यह बात है ! तब तो बड़ी खुशी की बात है !" यह कहकर पारसनाथ ने अपने अनजान में नंदिनी के व्यंग में योग देने का क्षीण प्रयास किया।

"आपको शायद पता न होगा, आपके भुजौरियाजी इसके पहले और भी बहुत-से राजा-रईसों की शादियों के प्रबन्धक रह चुके हैं ! उन लोगों के बीच में वह 'मैनेजर' नाम से ही प्रसिद्ध हैं। केवल शादी-ब्याहों में ही नहीं, किसी भी भोज, 'टी-पार्टी' या इसी तरह के दूसरे अवसरों पर उन्हीं को याद किया जाता है।"

"अच्छा ! मुझे यह बात मालूम नहीं थी। तो आपके पति महोदय सचमुच बड़े महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं !" यह कहते हुए पारसनाथ ने मन-ही-मन यह अनुभव किया कि आज प्रारंभ से उसे जिस अकारण संकोच का अनुभव होने लगा था, वह नंदिनी की बातों के ढंग से उसी प्रकार अकारण ही ग़ायब भी हो गया है। भुजौरियाजी की मैनेजरी

की चर्चा चलने से नंदिनी का संकोच भी अपने-आप जाता रहा, और मुक्त प्रसन्नता की एक निराली दीप्ति से उसका मुख चमक उठा था। उस प्रसन्नता की परछाँई पारसनाथ के भी मन पर और मुख पर पड़ चुकी थी।

नंदिनी बोली—"केवल यही नहीं। मैंने तो यहाँ तक सुना है कि ये महाशय (—उसका आशय स्पष्ट ही भुजौरियाजी से था—) किसी एक राजा साहब के ज़नानखाने के भी प्रबंधक रह चुके हैं, और वह ज़नाना भी ऐसा-वैसा नहीं, बड़ा ही कट्टर पर्दानशीन ज़नाना!"

अकृत्रिम आश्चर्य से पारसनाथ ने कहा—"यह आप क्या कहती हैं! यह कैसे संभव हो सकता है! आप क्या हँसी में यह बात कह रही हैं, या......."

पर नंदिनी के मुख के भाव से परिहास का कोई भी लक्षण प्रकट नहीं हो रहा था, बल्कि सहसा उसका मुख एक गहन गंभीर भाव की छाया से अंधकारमय हो गया था,—केवल आँखों और ओठों के तीखे व्यंगपूर्ण भाव की बिजली उस घने बादलों की-सी निबिड़ता के बीच में कौंध उठती थी। पारसनाथ नंदिनी की वह मुखमुद्रा देखकर एकदम सहम गया, और स्तब्ध दृष्टि से चुपचाप उसकी ओर देखता रहा।

नंदिनी ने अपने कंठ से भी गुरु-गंभीर ध्वनि निकालते हुए कहा—"मैं हँसी में नहीं, यथार्थ में कह रही हूँ। मेरे पास इस का कोई प्रमाण न होने पर भी उसकी सचाई पर मेरा पूरा विश्वास है। आप कह सकते हैं कि जब तक कोई व्यक्ति पूरा पागल ही न हो तब तक वह कैसे किसी पुरुष को अपने ज़नाने की पर्दानशीन औरतों के बीच में नियुक्त कर सकता है। पर जिन-राजा साहब की बात मैंने कही है उनके संबंध में कहा जाता है कि वह आपके भुजौरियाजी के 'पुरुषत्व' को तनिक भी खतरे के योग्य नहीं समझते थे। जिस प्रकार

सकती है। आज उसका आविष्कार करके आपने केवल भीतरी ही नहीं, मेरी बाहरी आँखें भी खोल दी हैं।"

इस बीच पारसनाथ की मुसकान अत्यन्त करुण हो आई थी। परिहास की छाया का लेश भी नन्दिनी ने उसके मुख पर नहीं पाया। अत्यंत क्लांत स्वर में वह बोला—"हँसने की बात नहीं है, नंदिनी देवी; आपने अपने अनजान में मेरे भीतर का यथार्थ रूप जैसे आईने में उतार कर रख दिया है। मालूम होता है, जिन प्रेतों और छायाओं का उल्लेख आज कुछ ही समय पहले आपने किया था, उनके संसर्ग में रहने से आपकी अनुभूति अत्यंत रहस्यमयी और मार्मिक बन गई है। उसी अनुभूति की अज्ञात प्रेरणा से आपके अनजान में आपकी भीतरी आँखों के आगे मेरा असली रूप बेपर्दा होकर प्रकट हो गया है!"

उसके मुख की मुद्रा गंभीर से गंभीरतर होती चली गई। नन्दिनी के मन में इस बार थोड़ी-सी घबराहट पैदा हो गई। उसने कहा—"आश्चर्य है कि आप एक साधारण हँसी की बात को भी गंभीर रूप में लेना चाहते हैं। मैंने आपका रेखाचित्र खींचने की बात को एक अच्छा मज़ाक समझा था। अगर मैं यह जानती कि आप उसे इतना महत्व देंगे तो मैं हर्गिज उसकी चर्चा न चलाती।"

"नहीं नहीं, मैं उसे कोई महत्व नहीं देता। मैंने भी उसे मज़ाक ही समझा है।" यह कहकर वह मुख पर सहज भाव लाने की चेष्टा करता हुआ एक कुर्सी पर बैठ गया। पर नन्दिनी ने देखा कि अभी तक एक भेदभरी चिंता की छाया उसके मुख पर से नहीं हटी है।

कुछ क्षण तक नंदिनी चुपचाप खड़ी रही और पारसनाथ के मुख के अनमने भाव पर गौर करती रही। उसके बाद उसने सहसा कहा—"मैं नीचे जाकर चाय बनाती हूँ। आप तब तक कोई किताब या अखबार उठाकर पढ़ें। मैं पाँच मिनट में आती हूँ। उसके बाद फिर सिनेमा जाने की तैयारी करेंगे।" यह कहकर वह नीचे चली गई।

पारसनाथ कुछ देर तक उसी अनमने भाव से बैठा रहा। उसके मन की ऊपरी सतह के नीचे प्रेतों और छायाओं के बीच न जाने किस प्रकार का भीषण संघर्ष चल रहा था और भयंकर कोलाहल मच रहा था! सतह पर उसका मन बिलकुल शांत था। पर वह शांति भी बड़ी भयावह थी। उससे छुटकारा पाने के इरादे से सामने एक आले पर से 'इलस्ट्रेटेड वीकली' का एक पुराना अंक उठाकर वह फिर अपनी जगह पर बैठ गया, और उसे खोलकर देखने लगा। दस-पाँच पन्ने उलटने के बाद उसने दो भूटानी युवतियों का एक चित्र देखा। दोनों स्वस्थ और प्रसन्न जान पड़ती थीं। उस चित्र को देखते ही उसे अपने कालिंपांग के जीवन की याद आई। पहले तो एक मार्मिक टीस-सी उसके भीतर उठी, पर कुछ ही क्षण बाद जब उसी सिलसिले में उसे दार्जिलिंगवाली लड़की की याद आई, तो वह टीस एक मीठी वेदना में बदल गई। उस लड़की के साथ उसने जो दिन बिताए थे वे उसे अपने जीवन के सबसे सुखकर दिन प्रतीत हुए। उन दिनों वह कालिम्पांग से ताज़ा घाव लेकर आया था, संदेह नहीं; पर उस लड़की के सुन्दर और स्वास्थ्यपूर्ण संसर्ग में रहने से वह मर्म की उस गहरी चोट की पीड़ा को भी बहुत-कुछ भूल गया था। वह सोचने लगा कि यदि उसके साथ उसने विवाह कर लिया होता तो संभवतः उसके जीवन में एक व्यवस्था आ जाती, और भय और भ्रांति से उत्पन्न जिन प्रेत-छायाओं ने इधर कुछ समय से उसके जीवन को नरक की चहारदीवारी के भीतर बाँध दिया है, तब शायद वे न रहने पातीं। ज्यों-ज्यों उस लड़की की स्मृति उसके भीतर उज्ज्वल से उज्ज्वलतर होती जाती थी, त्यों-त्यों वेदना की मिठास भी बढ़ती जाती थी। उस स्मृति के जादू के-से प्रभाव से धीरे-धीरे उसके भीतर से भय और विषाद का वह अंधकार-मय पर्दा हट गया जो इधर-कुछ समय से—विशेष करके कल रात से—उसके मन को—सारी आत्मा को—बुरी तरह जकड़े हुए था। न मालूम

क्यों, उसके भीतर एक सबल और स्वस्थ अनुभूति धीरे-धीरे घर करने लगी। एक अस्पष्ट सुख-स्वप्न का-सा छाया-भास वह अपने अन्दर महसूस करने लगा। अचानक अपनी मानसिकता में इस प्रकार के अप्रत्याशित परिवर्तन का अनुभव जब उसे हुआ, तो उसके आश्चर्य और प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। एक तुच्छ कारण से मन की दशा में कभी-कभी कितना बड़ा बदलाव आ सकता है, यह सोच-सोचकर वह हैरान हो रहा था। उसे ऐसा लगने लगा था कि जीवन का अनंत सुख बेरोक-टोक उसके आगे अपना विस्तार पसारे हुए है, जिसे एक छोटा-सा काला पर्दा इतने दिनों तक उसकी दृष्टि से ओझल किये हुए था। वह पुलकित होकर पत्र के पन्ने उलटता चला गया और अस्पष्ट सुख-स्वप्नों में निमग्न होकर अनमने भाव से उसके चित्रों को देखने लगा।

कुछ समय बाद नंदिनी एक 'ट्रे' में चाय और जलपान का सर-अंजाम लिए चली आई। पारसनाथ के मुख पर असाधारण प्रसन्नता और पुलक का भाव झलकता हुआ देखकर उसे सुख भी हुआ और आश्चर्य भी। नंदिनी को देखकर पारसनाथ का अन्यमनस्क भाव दूर हुआ। उसने कहा—"आपको बड़ा कष्ट हुआ। आपकी नौकरानी कहाँ गई? सब काम क्या आप ही को करना पड़ता है?"

'ट्रे' को बड़ी मेज़ पर रखती हुई नंदिनी बोली—"नौकरानी सिर्फ़ चौका-बर्तन करती है और रात को सोने के लिये आती है। बाक़ी सब काम मैं अपने हाथ से करती हूँ।"

"ओः! तब तो सचमुच आप बड़े कष्ट में हैं।"

"इतनी देर बाद आप मेरे कष्ट का अंदाज़ लगा पाए, यह मेरा सौभाग्य है।" यह कहते हुए नंदिनी के मुख पर एक अस्पष्ट व्यंग-भरी सकरुण मुसकान झलक उठी।

पारसनाथ तत्काल अपनी बात के बेतुकेपन से परिचित होकर

लज्जित हो उठा। आज ही, कुछ ही समय पहले, नंदिनी ने आवेग में आकर अपनी स्थिति की भयंकरता का जो लोमहर्षक वर्णन उसके आगे किया था उसे वह ऐसा भूल गया था; जैसे वह पूर्वजन्म की बात हो। अपने मन की उद्भ्रांत कल्पनाओं में वह इस कदर तल्लीन हो गया था! नंदिनी की व्यंग और वेदना-भरी मर्मोक्ति सुनकर उसकी स्मृति जग उठी, और अनमना भाव दूर हो गया। उसने हड़बड़ाते हुए कहा—"नहीं-नहीं, मेरा यह आशय नहीं था; मैं कुछ दूसरी बात कहने जा रहा था। मुझे क्षमा कीजिएगा, इस बीच मैं कुछ अनमना-सा हो गया था। खैर। आज बहुत दिनों बाद आपके हाथ की बनी चाय पीने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसके लिये आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।"

अपने अकारण उल्लास और प्रसन्नता के भाव को पारसनाथ छिपा नहीं पाता था। नंदिनी को भी उसका वह बदला हुआ भाव देखकर मन-ही मन विशेष प्रसन्नता हो रही थी। उसने पारसनाथ के आगे एक पेग-टेबिल पर एक तश्तरी में जलपान की चीज़ें और एक प्याले में चाय बनाकर रख दी; और स्वयं भी एक दूसरी टेबिल के पास बैठकर खाने और पीने लगी।

चाय पीने के बाद नंदिनी एक दूसरे कमरे में जाकर काफी देर तक सजाव-शृंगार में व्यस्त रही। जब सज-सँवरकर आई तो पारसनाथ उसे देखकर कुछ देर तक भौंचक्का-सा रह गया। उसे ऐसा लगा जैसे नंदिनी किसी इंद्रजाली उपाय से अपनी काया-पलट करके आई है। इसके पहले वह मानता था कि नन्दिनी सुंदरी है; पर उसके सौंदर्य का निखार इस आश्चर्यजनक रूप में उसके सामने आ सकता है, इसकी कल्पना उसने कभी स्वप्न में भी नहीं की थी। वह एक हरे रंग की चटकदार रेशमी साड़ी पहने थी। सिर के बीचों-बीच माँग इस सफाई

में निकाली गई थी कि न एक बाल इधर था न एक बाल उधर। उसके ऊपर सिंदूर की एक हलकी-सी गुलाबी रेखा ऊषा के अरुण राग की तरह खिल रही थी, जैसे घोर अंधकारमय जीवन के बीच में नव-जीवन का प्रकाश-पथ दिखाती हो। माँग की दोनों ओर सुसामंजस्यपूर्ण रूप से लहराते हुए बाल उसके सारे व्यक्तित्व को एक अवर्णनीय कलात्मक शालीनता प्रदान कर रहे थे। उसके मुख का गोरा रंग (शायद लोशन और पौडर आदि के प्रयोग से) निखरकर उज्ज्वलतर हो उठा था। कपाल के बीच में एक छोटी-सी गोल बिंदी सौभाग्य-सूर्य की तरह चमक रही थी। उसका सारा मुखमण्डल स्वास्थ्य, सौंदर्य और शृङ्गार से दिप रहा था। पारसनाथ विभ्रांत होकर सोचने लगा—प्रेतों और छायाओं के बीच में रहनेवाली यह नारी इतनी श्री और शोभा अपने मन के किस अँधेरे तहखाने के भीतर छिपाकर सुरक्षित रखे हुए थी?

पारसनाथ की भ्रांत दृष्टि से नंदिनी को यह समझने में देर न लगी कि उसके सजाव-शृङ्गार का बड़ा ज़बर्दस्त प्रभाव उस पर पड़ा है। अत्यंत मधुर और बनावटी संकोच-भरी मुसकान मुख पर झलकाती हुई वह बोली—"चलिए, मैं तैयार होकर आ गई हूँ। समय भी प्रायः हो चुका है।" यह कहकर उसने अपने बाएँ हाथ पर बँधी हुई घड़ी देखी और फिर कहा—"पाँच बजकर पचीस मिनट हुए हैं। पहुँचते-पहुँचते छः बज जावेंगे।"

उसी भ्रांत दृष्टि से नंदिनी की ओर देखते हुए पारसनाथ ने कहा—"चलिए।" और यह कहकर उठ खड़ा हुआ।

चौबीसवाँ परिच्छेद

जब दोनों बाहर चले आए तो नंदिनी ने दरवाज़े पर ताला लगा दिया, और उसके बाद पारसनाथ से एक ताँगा तय करने के लिये कहा। गंदी गलियों से बाहर निकलने पर जब दोनों बड़ी सड़क पर आए तो कुछ देर ताँगे के इन्तज़ार में खड़े रहे। प्रायः दस मिनट बाद एक खाली ताँगा आता हुआ दिखाई दिया। उसे तय करके दोनों उस पर सवार हो गए। पहले पारसनाथ आगे की 'सीट' पर ताँगेवाले के साथ बैठने जा रहा था, पर नंदिनी ने उससे एक प्रकार से अनुरोध किया कि वह उसी के साथ बैठे। उसकी बात मानकर वह उसके साथ पीछे वाली 'सीट' पर ही बैठ गया।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर ताँगा जब कुछ तेज़ रफ़्तार से चलने लगा तो उसके धक्के से दोनों के शरीर एक-दूसरे को स्पर्श करने लगे। नंदिनी के निकट सामीप्य से, स्पर्श से और 'एसेंस' की गन्ध से पारसनाथ की सुप्त 'रोमांटिक' चेतना जैसे युगों के बाद फिर उभर उठी। पर वह बोला कुछ नहीं। न नंदिनी ही कुछ बोलने के लिये उत्सुक जान पड़ती थी। नंदिनी पूर्व की ओर मुँह किये थी, और पारसनाथ सामने, दक्षिण की ओर। दोनों जैसे चरम मौनवाणी में एक-दूसरे के मन के कानों में व्यथा की कथा कह रहे थे। वह व्यथा क्या थी, उसका रूप कैसा था, उसका उद्गम-स्थान कहाँ पर था, इस बात की कोई ख़बर उन दोनों के सचेत मन को नहीं थी। नंदिनी केवल इतना ही जानती थी कि उसके मन में एक मीठी उदासी छाई हुई है—ऐसी प्यारी उदासी, जिसका अनुभव शायद आज उसे जीवन में पहली बार हो रहा था। उसके भीतर यह अस्पष्ट अनुभूति जग रही थी कि आज का दिन उसके जीवन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण दिन

है। जिस अर्थ-पिशाच की अधीनता उसने एक दिन न जाने किस सनक के वशीभूत होकर स्वेच्छा से स्वीकार की थी, उसके साथ प्रायः दो वर्षों से भयंकर भौतिक वातावरण की वद्धता में जीवन बिताने पर भी भीतर ही भीतर वह विद्रोह की आग सुलगती चली जा रही थी। पर उस यक्ष ने बाहर से सब छिद्र एक-एक करके इस भयंकरता से बंद कर दिए थे कि न तो उस आग की लपट ही बाहर निकल पाती थी, न धुँए के निकलने का ही कोई मार्ग रह गया था। आग और धुँए को भीतर ही भीतर पीती हुई वह जो मसोस-मसोसकर, पत्थर के आँसू बहाकर, शैतान की उस अंधगुहा में किसी तरह अपने दिन बिता रही थी। उसके अन्तर्मन को इस बात का पूरा विश्वास था कि एक-न-एक दिन शैतान का वह तिलिस्म टूटेगा ही और वह एक बार मुक्त रूप से वैसा ही बंधनहीन जीवन बिताने की सुविधा पा जावेगी जैसा पाँच वर्ष पहले बिताया करती थी। उसकी बहनों की इच्छा नहीं थी कि वह भुजौरियाजी से विवाह करे। उन्हें उस व्यक्ति का व्यवहार प्रारम्भ से ही संदेहास्पद लगने लगा था। पर उसने अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से नंदिनी को अपने काबू में कर लिया। नंदिनी के मन में यह महत्त्वाकांक्षा वर्षों से घर किये हुए थी कि किसी कुलीन और सद्गृहस्थ परिवार से सूत्र जोड़े। यही कारण था कि वह और सब बातों की तरफ़ से अंधी होकर उस 'अर्थपिशाच' के चक्कर में फँस गई थी। वास्तविकता से वह तब परिचित हुई जब वह 'अर्थपिशाच' उसे सौ सौ फंदों से लपेट चुका था। प्रारम्भ में भुजौरियाजी का बर्ताव उसके साथ बड़ा ही शिष्ट और सुहृदय रहा। वह भरसक उसकी प्रत्येक माँग की पूर्ति कर दिया करते थे, और उसे प्रसन्न रखने में यथासंभव कोई बात उठा नहीं रखते थे। उन्हें पता लगा था कि नंदिनी का झुकाव शिक्षा और संस्कृति की ओर है। जिस वातावरण में नंदिनी का पालन-पोषण हुआ था वहाँ शिक्षा और संस्कृति की छाया तक फटकने नहीं पाती थी। पर वह न जाने कौन-से

अनोखे और रहस्यमय संस्कार अपने भीतर लिए हुए पैदा हुई थी अपनी पारिपार्श्विक स्थिति की प्रायः प्रत्येक बात से उसके भीतर विरोधी भावनाएँ उठा करती थीं, और कुछ विचित्र आदर्श-मूलक स्वप्न और निराली महत्वाकांक्षाएँ न जाने उसके अवचेतन मन के किस अनजान स्थान से उठकर उसके सचेत मन पर प्रतिक्षण आघात करती रहती थीं। वह स्वयं ठीक से नहीं समझ पाती थी कि वह क्या चाहती है और क्यों चाहती है। केवल एक बात स्पष्ट और निश्चित रूप से उसके सामने आती थी कि उसे शिक्षा प्राप्त करनी होगी—अधिक से अधिक। अपने चारों ओर की अशिक्षा का बद्ध वातावरण जैसे प्रतिपल उसका दम घोटने लगता था। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर उसने दो-दो वर्ष के अंतर से दो बुड्ढे मास्टर नियुक्त किए। ताँगे पर बैठे-बैठे, हिचकोलों के कारण धक्के खाते हुए, उसे यह सोच-सोचकर हँसी आ रही थी कि उसने बुड्ढे मास्टरों को खूब नियुक्त किया! तब वह एकदम नौजवान थी (अठारह-उन्नीस वर्ष से अधिक उसकी उम्र नहीं रही होगी), और स्वभावतः उसके मन में चंचल आकांक्षा वर्तमान रहनी चाहिये थी। पर उसे किसी अज्ञात संस्कार ने जैसे उसके कानों में चेतावनी का यह मंत्र फूँक दिया था कि जवान मास्टरों की नियुक्त करने से वह दूसरे ही चक्करों में उलझने के कारण कुछ भी नहीं सीख पावेगी। इसके अलावा अपनी बड़ी बहनों का जीवन वह देख चुकी थी, जिसके फलस्वरूप अल्हड़ युवकों के विरुद्ध एक उलटी-सी धारणा उसके मन में जम गई थी। कुछ भी हो, दो बुड्ढे मास्टरों की सहायता से उसने अशिक्षा के घोर तामसिक अंधकार के बीच एक क्षण प्रकाशमय पथरेखा अपने लिये निकाल ली। उसके बाद फिर उसने कोई मास्टर नहीं रखा और स्वयं अपनी आश्चर्यजनक लगन और अक्लांत अध्यवसाय से प्रायः एक हाई-स्कूल पास लड़की के बराबर की शिक्षा प्राप्त कर ली। पर उस शिक्षा का कोई विशेष

मूल्य नहीं था। वह केवल शिक्षा के साथ खेलना था। वह शिक्षा जीवन की कोई निश्चित रूपरेखा उसके सामने रखने में समर्थ नहीं हुई, और न कोई स्थिर लक्ष्यबिंदु ही उसके आगे स्पष्ट रूप से आ सका। केवल अनंत प्रकार की उद्भ्रांत किंतु सुनहली कल्पनाएँ अस्पष्ट और धूमिल आदर्शों का रूप धारण करके उसके मन को भरमाने और भटकाने लगीं। फल यह हुआ कि वह अपने जीवन की वास्तविकता को यथारूप स्वीकार करने पर भी अपने और समाज के बीच में एक दुर्लंघ्य व्यवधान, एक वर्णनातीत वैपरीत्य और वैमनस्य का अनुभव करने लगी। उस विरोधाभास का ही यह फल था कि वह हताश-सी होकर भुजौरियाजी के साथ चली आई थी। भुजौरियाजी ने उससे कहा था कि वह कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं और उनके प्रथम विवाह की स्वर्गीया स्त्री "एक बीस बिस्वा परिवार की लड़की थी।" पर वह ऐसी "अशिक्षिता, कुरूपा, कट्टरपन्थी और अंधसंस्कारों से घिरी हुई" थी कि उनकी जान के लिये वह एक आफ़त हो गई थी। "फिर भी (—भुजौरियाजी का कहना था—) मैंने मरते दम तक उसकी पूरी सेवा-टहल की, और उसके इलाज में कोई बात उठा नहीं रखी। पर अब मैं जीवन में हर्गिज़ किसी कुलीन घराने की लड़की से विवाह नहीं करूँगा। मैं समाज से विद्रोह करना चाहता हूँ और जात-पाँत का बिलकुल भी ख़याल न करके किसी ऐसी लड़की से विवाह करना अपना (और उसका भी) जीवन सुखी बनाना चाहता हूँ जो समझदार हो, सहृदय हो, नयी शिक्षा और संस्कृति से जो अपरिचित न हो (भले ही उसने बी० ए०, एम० ए० की डिग्री न पाई हो)। मेरे आदर्श की इस कसौटी में आप हर तरह से खरी उतरती हैं।"

उन्होंने किसी एक गाँव का नाम लेकर यह भी कहा था कि वहाँ उनकी ख़ासी बड़ी ज़मींदारी है। इसके अलावा उन्होंने दो-चार फ़र्मों

का उल्लेख किया था जिनके नाम कम-से-कम सुनने में बड़े भारी-भरकम लगते थे। उन फर्मों के साथ उन्होंने अपना व्यावसायिक संबंध बताया था। नंदिनी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई थी—इसलिये नहीं कि वह अर्थ के लोभ से उनसे विवाह करना चाहती थी, बल्कि इसलिये कि वह अपनी बहनों को इस बात का एक और प्रमाण देना चाहती थी कि वह किसी ऐरे-ग़ैरे आदमी से शादी करने नहीं जा रही है।

फिर भी बहनों ने अन्त तक काफ़ी विरोध किया और नंदिनी को बारहाँ समझाया। पर कोई फल नहीं हुआ। नंदिनी अपनी कुछ अजीब-सी ख़ामख़याली को पूरा करने की ज़िद पर तुली हुई थी। बहरहाल अन्त में विवाह हो ही गया। नंदिनी की इच्छा थी कि विवाह काफी तूमतड़ाक और धूमधाम से हो। पर एक तो बहनें विशेष उत्साहित नहीं थीं, तिसपर स्वयं भुजौरियाजी किसी प्रकार के आडम्बर के पक्ष में क़तई नहीं थे, और उन्होंने चुपचाप शांत-भाव से, दो आर्यसमाजी पंडितों को बुलाकर, वैदिक विधि से विवाह-कार्य समापन किया।

विवाह हो जाने के बाद नंदिनी जब लखनऊ से भुजौरियाजी के साथ नये शहर में आकर उस गंदी, नरक से भी बदतर, गली में आकर रहने लगी, तो प्रारंभ से ही उसका मन अज्ञात रूप से आशंकित हो उठा। पर, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भुजौरियाजी का व्यवहार आरंभ में उसके प्रति बहुत शिष्ट और सौजन्यपूर्ण रहा; इसलिए कुछ समय तक उसे अपनी नयी स्थिति की यथार्थता का अनुभव ठीक तरह से नहीं हो पाया। भुजौरियाजी को अपनी स्वार्थजनित सूक्ष्म दृष्टि से यह जानने में देर न लगी कि नन्दिनी के कल्पनाप्रिय, रोमांसवादी मन का झुकाव विशेष रूप से किस ओर है। वह समझ गये थे कि ललित

कलाओं के प्रति उसका प्रेम उसकाते चले जाने से वह नये चक्रजाल में उलझी रहेगी। उन्होंने काव्य-कला और कथा-साहित्य-संबंधी नयी-नयी और रोचक पुस्तकों का ढेर उसके आगे लगा दिया, और स्वयं भी मौके-बेमौके साहित्य-चर्चा से उसका मन बहलाते रहे। पर झूठ के एक विराट काले पहाड़ को एक बहुत ही झीनी सफेद चादर से नहीं ढका जा सका। धीरे धीरे नंदिनी के आगे भुजौरियाजी का यथार्थ रूप, उनकी कुटिल स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ति का एक-एक स्तर, स्पष्ट से स्पष्टतर होता चला गया। वह जान गई कि जिस भयंकर व्यक्ति से उसका पल्ला बंधा है उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य नाना छलछद्मों से अर्थ-संचय करना है और जाल-जंजाल के अनेक गुप्त अस्त्रों को अपने ऊपरी व्यक्तित्व के पर्दे-दर-पर्दे के भीतर सब समय छिपाए रहना है। उसने बड़ी ही बारीक चालाकी से नंदिनी को अपनी पूँजी में से कई हजार रुपये इस सफाई के साथ निकाल लिए थे कि वह बाद में स्तंभित रह गई। उसे बाद में इस बात का पता लगा कि भुजौरियाजी ने जिस गाँव में अपनी जमींदारी बताई थी वह गाँव युक्तप्रांत की किसी भी तहसील या परगने के नक्शे में कहीं मौजूद नहीं है, और जिन फर्मों के भारी-भरकम नाम उन्होंने लिए थे उनमें से केवल एक नाम ऐसा था जो वास्तविक था। और उस वास्तविक फर्म से उनका व्यावसायिक संबंध केवल इस हद तक रहा कि वहाँ एक साल उन्होंने नौकरी की थी। इन सब बातों का पता चलने पर नंदिनी का दिल दहल उठा।

कुछ समय बाद जब पारसनाथ से उनका परिचय हुआ तो भुजौरियाजी ने दोनों को बेवकूफ बनाने के इरादे से ऐसा मंत्र रचा कि पारसनाथ बिना वेतन के नंदिनी को चित्रकला सिखाने के लिये राजी हो गया। तीन-चार महीने तक पारसनाथ प्रायः नियमित रूप से नंदिनी को चित्रकला सिखाता रहा, पर बाद में धीरे-धीरे उसने एक अज्ञात उदासीनतावश उसके पास जाना कुछ कम कर दिया था।

जब तक पारसनाथ का साथ नियमित रूप से रहा, तब तक नयी परिस्थिति की आतंक उत्पन्न करने वाली विभीषिका नंदिनी की आँखों के आगे कुछ बदला हुआ रूप धारण किये रही, और असहनीय नहीं मालूम हुई। पारसनाथ को देखकर, उसके शील और गुणों का कुछ परिचय पाने पर, उसे ऐसा लगा कि अपने अनिश्चित, अव्यवस्थित और प्रायः अस्वाभाविक व्यक्तित्व के जिस उद्भ्रांत कल्पनालोक में वह इतने दिनों तक जानकर या अनजान में भटक रही थी, और उस कल्पनाजगत के भीतर चित्र-विचित्र स्वप्नों की रंगीन छायाएँ जिस अस्पष्ट, झिलमिले और मोहक प्रकाश-पथ की ओर उसे लुभा रही थीं, उन सबकी सार्थकता की कुंजी जैसे उस शांत-स्वभाव और सुंदर मुखाकृतिवाले, प्रतिभाशाली कलाकार युवक के व्यक्तित्व के भीतर निहित है। वह अपने अनजान में अपने व्यक्तित्व का उन्नत से उन्नत और सुंदर से सुंदर रूप पारसनाथ के आगे रखने लगी। पर पता नहीं क्यों, पारसनाथ नंदिनी के स्वास्थ्य और सौंदर्य का परिचय पाने पर भी, अपने स्वभाव के विपरीत, प्रारम्भ से ही उससे कुछ खिंचा-सा रहा। उसे स्वयं यह सोचकर आश्चर्य होता कि वह क्यों प्रारंभ से ही अपने स्वभाव की विकृति के अनुसार नंदिनी को रिझाकर नष्ट करने की कला में संलग्न नहीं हो गया। उसे उस अल्हड़ युवती की सुरुचि, शालीनता और सहृदयता की ओट में एक ऐसे बनावटीपन की झलक दिखाई दी जो उसे अत्यंत अरुचिकर लगा। साथ ही यह समझने में भी उसे देर न लगी कि अपने स्वभाव की उस कृत्रिमता से नंदिनी स्वयं अपरिचित है। यदि पारसनाथ की दृष्टि कुछ और गहरी होती तो वह देखता कि नंदिनी के स्वभाव की उस अज्ञात कृत्रिमता के भी अंतराल में, उसके सचेत मन के भीतर के भी भीतर, एक ऐसी सरल और सहज सहृदयता जड़ जमाए हुए थी जो उसके जीवन की परिस्थितियों को देखते हुए (जिनसे पारसनाथ कतई परिचित नहीं था) अत्यंत

आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय लगती थी। पर उस मूलगत सहृदयता के वृक्ष को स्वाभाविक ढंग से बढ़ने, फूलने और फलने की सुविधा ही कहाँ प्राप्त नहीं हो रही थी। कुछ भी हो, पारसनाथ की उदासीनता का हलका-सा आभास नंदिनी को भी मिल गया था। फिर भी उसके कलात्मक साहचर्य में वह अपने भ्रमित जीवन की तत्कालीन विकरालता को बहुत-कुछ भुलाने में समर्थ रही। पर बाद में जब धीरे-धीरे पारसनाथ ने उसके यहाँ आना-जाना बहुत कम कर दिया, तो उसके भीतर, तल से लेकर सतह तक, एक अत्यन्त भयंकर और व्यापक विषाद की विभीषिका ने अँधेरी छायाओं के ताने-बाने का जाल बुनना और तानना शुरू कर दिया। उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि वह अनंत अंधकार में भटकती चली जा रही है,—उसका वर्तमान अंधकारमय है, भविष्य अंधकारमय है, और भूत तो अंधकारमय था ही। प्रकाश की कहीं कोई अधबुझी चिनगारी भी उसकी नजर में नहीं आती थी; और प्रकाश के लिये वह जितना ही छटपटाती थी, उतना ही अधिक वह अंधकार की गहनता में जैसे धँसती जाती थी। उसे ऐसा लगता था जैसे अपने स्वजनों से विच्छिन्न हुए उसे अनेक युग—बल्कि कई जन्म—बीत गए हों, और आकाश और पाताल के किसी भी कोने में कोई भी जरिया, कोई भी रास्ता अपने आत्मीय-समाज के बीच लौट चलने का उसे नहीं सूझता था। वह अपने को चारों ओर से प्रेतों और छायाओं से घिरी मालूम करने लगी थी, यहाँ तक कि स्वयं अपने को भी वह एक लक्ष्यभ्रष्ट प्रेतात्मा के रूप में ही देखने लगी थी। भुजौरियाजी उसे उस भूतलोक के नायक रूप में लगते थे। कुछ दिनों तक वह इस प्रेतात्म-भावना से इस बुरी तरह ग्रस्त रही कि उसे ऐसा लगा जैसे वह पागल हो जायगी। पर शीघ्र ही उसकी आत्मरक्षा की प्रेरणा ऐसी प्रबलता से उभर उठी कि उसने अपने भीतर की समस्त सोई हुई शक्तियों को जगाया, और प्रत्यक्ष-जगत् और पाताल-लोक के सब प्रकार

के प्रेतों और भयावनी छायाओं का सामना करने के लिये वह तैयार हो गई। जो-जो दृश्य या अदृश्य विरोधी शक्तियाँ उसके जान में या अनजान में उसके विरुद्ध षड़यंत्र रच रही थीं, उनके प्रति ऐसे भयंकर विद्रोह की भावना उसके हृदय को जड़-सहित हिलाने लगी कि देखकर वह स्वयं चकित रह गई। आज जब पारसनाथ कई महीनों बाद अकस्मात्, अप्रत्याशित रूप से उसके पास आया, तो उस समय उसके भीतर पूर्वोक्त विद्रोही-भावना की क्षणिक प्रतिक्रिया चल रही थी, और उसके भीतर के तूफ़ान ने कुछ समय के लिये प्रकट में गहन विषाद का शांत रूप धारण कर लिया था। उस विषादमग्न और भ्रांत मानसिक अवस्था में पारसनाथ जैसे खोई हुई अमूल्य निधि की तरह उसके पास पहुँच गया ; जैसे उसके आने से ओर-छोर-हीन रेगिस्तान में भटकने के बाद सहसा नख़लिस्तान का-सा दृश्य नंदिनी की आँखों में झलक गया। भले ही वह नख़लिस्तान बाद में मायावी मृगजल—मोहमयी आशा में भटकने वाली मरीचिका—साबित हो, पर वर्तमान की अनंत भ्रांति और अपार निराशा से तो कुछ समय के लिये छुटकारा पाया जायगा !

ताँगे पर बैठे-बैठे नंदिनी अपने जीवन के सम्बन्ध में इसी तरह के आदि-अंतहीन विचारों में पूर्ण रूप से मग्न होकर रास्ते-भर मौन बैठी रही। और पारसनाथ ? वह भी भ्रमाच्छन्न होकर कभी पृथ्वी की प्रकाशमयी जीवन-अनुभूति में भटककर नीचे पाताललोक के अगम अन्धकार के भीतर आँखें बन्द करके रास्ता टटोलता था, कभी उससे भी गहन अन्धकारमय रसातल में धँसता चला जाता था, और कभी किसी मायावी की मंत्र-शक्ति के बल से उतराता हुआ फिर एक बार पृथ्वीतल पर आकर उसी घुप अँधेरे में डूब जाता था।

जब ताँगा सिनेमा-हाउस के पास आकर ठहरा तब दोनों को चेत

हुआ। ताँगे पर से उतरकर पारसनाथ ने नंदिनी का हाथ पकड़कर उसे नीचे उतारा, और अपनी जेब से पैसा निकालकर भाड़ा चुकाया। नंदिनी स्वयं अपने पास से पैसा देना चाहती थी, पर पारसनाथ ने जब जल्दी अपना हाथ बढ़ा दिया, तो वह रह गई। किंतु जब पारसनाथ सिनेमा का टिकट ख़रीदने के लिये जाने लगा, तो नंदिनी ने उसे टोकते हुए कहा—"यह रुपया लीजिए ; अगर आप अपनी गाँठ से रुपया ख़र्च करेंगे तो मैं देखने नहीं जाऊँगी।" पारसनाथ अपनी भीतर की जेब में हाथ डालकर टटोल रहा था कि उसके पास कुल कितने रुपये थे। यह सोच रहा था कि जितने रुपये होंगे, उस हिसाब से टिकट ख़रीदेगा। पर नंदिनी ने सहसा ऐसा रुख़ अख़्तियार कर लिया था कि उसे हठ करने का साहस न हुआ। उसने खिसियाए हुए व्यक्ति की तरह मुस्कराते हुए कहा—"अच्छी बात है, जब आप नाराज़ होती हैं तो मैं नाहक़ अपना रुपया क्यों बिगाड़ूँ!"

नंदिनी ने उसे पाँच रुपये का एक नोट देते हुए कहा कि ऊपर की सीट के दो टिकट ख़रीद लिए जावें। टिकट ख़रीदने के बाद पारसनाथ जब नंदिनी को साथ लेकर ऊपर जाकर बैठा, तो बिजली की तेज़ रोशनी में, दर्शकों की भीड़ के बीच में, वह एक अनोखी बेचैनी का अनुभव करने लगा।

युगों तक किसी अँधेरी गुफ़ा में छिपा हुआ रात्रिचर यदि अचानक अनजाने में, बाहर निकल पड़े, और दिन के उज्ज्वल प्रकाश में, जीवन स्पंदन से तरंगित स्त्री-पुरुषों के बीच में, आकर सैकड़ों कुतूहली आँखों से आत्म-रक्षा करने में अपने को असमर्थ मालूम करे, तो उसकी जो मानसिक स्थिति होगी, ठीक वही दशा उस समय पारसनाथ की भी हो रही थी। कहते हैं कि मनुष्य भूत से डरता है और भूत मनुष्य से। पारसनाथ भी आज जैसे भूतलोक से मनुष्यों के बीच में आकर अपने को एकदम अरक्षित समझ रहा था।

जब घंटी बजी और अँधेरा हुआ तब पारसनाथ ने चैन की साँस ली। नंदिनी अत्यंत उत्सुकता से खेल शुरू होने का इन्तज़ार कर रही थी। उसे आज ऐसा लग रहा था जैसे वह जीवन में प्रथम बार सिनेमा देखने आई हो। एक नयी उमंग और नये उत्साह से उसका सारा शरीर पुलकित हो रहा था। पारसनाथ के साहचर्य में सिनेमा के खेल का आकर्षण उसके लिये इस प्रकार एकदम नया रूप धारण कर सकता है, इस बात की कल्पना उसने नहीं की थी। पर पारसनाथ खेल के लिये तनिक भी उत्सुक नहीं था। सिनेमा हॉल में प्रवेश करते ही वह जिस अनोखी घबराहट का अनुभव करने लगा था वह बढ़ती ही चली जा रही थी।

खेल शुरू हुआ। एक रोमांस के सूत्र में बंबई शहर की चहल-पहल और राग-रंग के रहस्य और रोमांचपूर्ण दृश्य पिरोये जा रहे थे। नंदिनी के पुलक-प्रकंपन की सीमा नहीं थी। पर पारसनाथ को ऐसा मालूम हो रहा था जैसे इस संसार के परे किसी एक अनजान भौतिक लोक में चलती-फिरती पुतलियों का एक विचित्र तमाशा हो रहा है, जिसका कुछ भी अर्थ उसकी समझ में नहीं आ पाता था। पर अर्थ समझ में न आने पर भी वे सब दृश्य उसकी हौलदिली को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रहे थे।

'इंटर्वल' होने पर जब हॉल फिर प्रकाश से जगमगा उठा तो पारसनाथ की इच्छा हुई कि नंदिनी को अकेली छोड़कर भागकर चला जाय। पान-सिगरेट, सोडा-लेमनेड आदि चीज़ें बेचनेवाले छोकरों का चिल्लाना और आनन्दान्वेषी स्त्री-पुरुषों का गुंजनालाप सुनकर, और नंदिनी के मुख का पुलकित भाव देखकर उसका मन विरसता से भर गया। कुछ देर बाद जब खेल फिर शुरू हुआ तो वह मन मारकर देखता रहा, और बड़ी अधीरता से इस बात का इंतज़ार करता रहा कि कब खेल समाप्त हो।

पचीसवाँ परिच्छेद

खेल समाप्त होने पर सिनेमा-हाल से वह जल्दी से जल्दी भाग निकलने के लिये इस क़दर व्याकुल हो उठा जैसे आग की लपटों ने उसे चारों ओर से घेर लिया हो। जीवित स्त्री-पुरुषों की भीड़ का निकट संसर्ग उसके हृदय में इस क़दर घबराहट उत्पन्न कर सकता है, इस बात की कल्पना इसके पहले उसने नहीं की थी। आज उसे निश्चित रूप से मालूम हुआ कि काफी लंबे अर्से से पाताल-पुरी में रहने के कारण वह प्रेतों और छायाओं की सीमा-परिधि के बाहर एक क्षण के लिये भी स्थिर-चित्त होकर रहने योग्य नहीं रह गया है।

बाहर आकर एक ताँगा करके जब दोनों पीछे की सीट में एक दूसरे की ओर मुँह करके बैठे, पारसनाथ को यह अनुभव हुआ कि सिनेमा-हाल में जिस घबराहट ने उसे बेचैन कर रखा था वह नंदिनी के एकांत संसर्ग से किसी हद तक दूर हो गई; पर अभी बहुत-कुछ शेष थी। उस भावना से आत्मरक्षा करने के उद्देश्य से वह जैसे अपने अनजान में नंदिनी के और अधिक निकट आकर बैठ गया। कुछ तो बाहर की और कुछ मन के भीतर की सर्दी के कारण उसका शरीर जैसे अकड़ा जा रहा था, और दाँत जैसे किटकिटाना ही चाहते थे। इस कारण भी नंदिनी के स्पर्श की उसे परम आवश्यकता महसूस हो रही थी। नंदिनी के शरीर से बिजली के 'हीटर' की तरह एक अनोखी गरमी निकल रही थी, जिससे पारसनाथ के अकड़े हुए शरीर और मन को ठीक उसी प्रकार का आराम मिल रहा था जिसका अनुभव कड़ाके की सर्दी में अँगीठी के पास बैठने पर होता है नंदिनी के मुँह से जो सुगंधित निःश्वास निकल रहा था वह भी बड़ा सुखद लग रहा था। जब ताँगा हिचकोला खाता था तो दोनों के घुटने एक दूसरे से टकराते थे। उस टकराने के फलस्वरूप दोनों के शरीर से एक

विचित्र बिजली का-सा स्फुरण होता था। नंदिनी जब सिनेमा-हाल से बाहर आई थी, तो वह आज के खेल से इतनी अधिक तरंगित हो उठी थी कि एक अल्हड़ लड़की की तरह पारसनाथ से बहुत-सी बेसिर-पैर की बातें करने को उतावली हो रही थी। पर पारसनाथ के भीतर की बेचैनी और स्तब्ध मौन भाव का ऐसा अशांत प्रभाव उस पर पड़ा कि उसे कुछ बोलने का साहस ही नहीं हुआ।

काफ़ी देर तक दोनों चुप बैठे रहे। अंत में नंदिनी रह न सकी। उसने बोलने का क्रम शुरू करने के उद्देश्य से कहा—"आज बहुत ठण्ढ मालूम हो रही है। इस साल अभी से जाड़ा शुरू हो गया है।"

पारसनाथ फिर भी चुप रहा। वह इस कोशिश में था कि उसके दाँतों के किटकिटाने की आवाज़ नंदिनी को न सुनाई दे।

"आज का खेल आपको कैसा पसन्द आया?"—नंदिनी ने पूछा।

"अच्छा ही था,"—मरे मन से पारसनाथ ने उत्तर दिया।

कुछ देर तक फिर मौन छा गया। ताँगा एक एकांत सड़क से होकर जा रहा था, इसलिये बाहर का सन्नाटा भीतर के सन्नाटे से मिलकर एक रहस्यमयी भौतिक अनुभूति की सृष्टि कर रहा था।

"मुझे तो बहुत ही पसंद आया।"

"कौन-सी विशेष बात आपको पसंद आई?"—अनमने भाव से पारसनाथ ने पूछा।

"मुझे यह बात खास तौर से अच्छी लगी कि फ़र्म के मालिक की संरक्षकता में जो अनाथ लड़की रहती थी उसे यद्यपि वह हृदय से चाहता था और उससे विवाह करने की इच्छा रखता था, तथापि उसने अपने एक कर्मचारी से उसका विवाह करवा दिया जिसे वह लड़की चाहती थी।"

पारसनाथ ने खेल के 'प्लाट' का अनुसरण ठीक तरह से नहीं किया था। उसने एकदम अन्यमनस्क होकर खेल देखा था, और केवल उसके छिटफुट दृश्य बिखरे-बिखरे ढंग से उसकी स्मृति में आ रहे थे। नंदिनी की बात से उसे जैसे चेत हुआ, और उसके एक विशेष दृष्टिकोण से वह परिचित हुआ। अपने मोहाच्छन्न भाव को फटकारने की चेष्टा करते हुए कहा—"हाँ, यह बात तो वास्तव में विशेष महत्वपूर्ण है।" नंदिनी का अस्पष्ट इंगित किस बात की ओर था, इसका अंदाज वह अब भी ठीक तरह से नहीं लगा पाया था, हालाँकि वह यह महसूस कर रहा था कि नंदिनी की उस सीधी-सी बात में कोई भेद अवश्य छिपा है। वह अपनी क्लांत नसों को दबा रहा था, ताकि उसकी बात का ठीक मर्म समझ पावे।

क्षणभर के लिये चुप रहकर नंदिनी बोली—"मेरे मन में कभी-कभी सिनेमा की 'ऐक्ट्रेसों' के जीवन के प्रति ईर्ष्या जगने लगती है।"

नंदिनी की इस बात से पारसनाथ की व्यंगात्मक चेतना जैसे पूर्ण रूप से सजग हो उठी। उसने कहा—"हूँ! यह बात है? मैं कभी कल्पना नहीं कर सकता था कि इस प्रकार के जीवन के प्रति आप भीतर-ही-भीतर इस क़दर आकर्षित हो सकती हैं।"

"क्यों! आपको आश्चर्य क्यों होता है? मेरे इस मनोभाव में कौन-सी अस्वाभाविकता आप पाते हैं।"

"कुछ भी नहीं। मैं कुछ भ्रम में अवश्य था, पर अब मैं मानता हूँ कि इस तरह सोचना आपके लिये संपूर्ण स्वाभाविक था। पर क्या मैं पूछ सकता हूँ कि 'ऐक्ट्रेसों' के जीवन की कौन-सी बात आपको सबसे अधिक आकर्षित करती है?"

पारसनाथ जिस ढंग से बोल रहा था उसमें सरलता का लेश भी नहीं था, यह बात नंदिनी की जानकारी से छिपी न रही। पर

उसने सहज भाव से उत्तर दिया—"उनके जीवन की स्वच्छंदता मुझे सबसे अधिक महत्वपूर्ण लगती है। जिस नारी के ऊपर कोई बंधन न हो—न समाज का न व्यक्ति का—उसे मैं बहुत सुखी नहीं मानती, पर वह उस स्त्री की तुलना में अवश्य सुखी है जिसके ऊपर एक ऐसे पुरुष का बंधन हो जिसे वह कतई नहीं चाहती—जिसे वह तन से, मन से, सारी आत्मा से घृणा करती है।"

नंदिनी के कथन से उसके भीतर का जो आवेग फूट पड़ा था, उसने पारसनाथ की रही-सही जड़ता और मोहच्छन्नता को भी जैसे आँधी के एक प्रबल झोंके से उड़ा दिया। उसकी बात के भीतर छिपे हुए यथार्थ मर्म को समझने में इस बार उसे देर न लगी। उसने गंभीर भाव से कहा—"हाँ, मैं आपकी इस बात की सचाई की ताईद करता हूँ। पर एक बात मैं और आपसे पूछना चाहता हूँ। अगर आपको आसानी से 'ऐक्ट्रेस' बनने की सुविधा प्राप्त हो जाय, तो क्या आप बिना किसी झिझक के तैयार हो जावेंगी?"

"हो सकती हूँ, एक शर्त पर।"

इस बार नंदिनी का स्वर काफी धीमा पड़ गया था। दूरस्थित बत्ती के क्षीण प्रकाश में पारसनाथ उसके मुख के भाव से यह अंदाज नहीं लगा पाया कि उसके कथन में कितना पुट परिहास का है और कितना गंभीरता का।

"वह कौन-सी शर्त है?"

"जाने दीजिए, जानकर क्या कीजिएगा?"

"फिर भी!—"

"तो बताऊँ? मेरी बात को आप मजाक तो नहीं समझेंगे?"

"नहीं नंदिनी देवी, मैं आज किसी भी बात को 'मजाक' के रूप में लेने के 'मूड' में नहीं हूँ।"

"तो सुनिए। मैं इस शर्त पर बिना किसी झिझक के 'ऐक्ट्रेस' बन सकती हूँ कि आप भी उसी कंपनी में 'ऐक्टर' नियुक्त हो जावें।"

"यह क्यों ! मेरे 'ऐक्टर' बनने से आपको क्या लाभ होगा ?" आश्चर्य के साथ पारसनाथ ने पूछा।

"लाभ या हानि की बात मैं कुछ नहीं जानती। आपने पूछा था, इसलिये मैंने बता दिया कि मैं किस शर्त पर 'ऐक्ट्रेस' बन सकती हूँ।"

"ओः ! समझा !" यह कहकर पारसनाथ चुप हो गया।

कुछ देर तक फिर मौन छा गया, और घोड़े की बेमेल टापों की आवाज़ और ताँगे के हिचकोले खाने के शब्द के अलावा और कोई शब्द आस-पास में कहीं नहीं सुनाई देता था। पारसनाथ को पहले से भी अधिक जाड़ा लग रहा था, और नंदिनी के शरीर से निर्गत होने वाली गरमी उसे प्रिय से प्रियतर मालूम होती जाती थी। उसने 'ऐक्ट्रेसों' के जीवन के प्रति अपनी जिस मोहाकांक्षा की सूचना उसे दी थी, उससे भी उस सुखद अनुभूति में कोई अंतर नहीं पड़ा, बल्कि वह और अधिक बढ़ने लगी ; इससे पारसनाथ को स्वयं अपने ऊपर आश्चर्य हो रहा था। नंदिनी का निकट संसर्ग इतना अधिक आराम देनेवाला और प्रलोभनीय हो सकता है, इसका अनुभव आज उसे पहली बार हुआ। ऐसा क्यों हुआ, इसका विश्लेषण करने की तनिक भी मानसिक स्फूर्ति उसमें नहीं रह गई थी।

जब वे लोग काफ़ी दूर तक आगे निकल गए, तो अचानक नंदिनी ने फिर उसी बात की चर्चा चलाई। उसने कहा—"अच्छा, आप एक बार खूब गंभीर भाव से सोच-विचार कर सच्चे मन से मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिए। मेरा पूर्ण विश्वास है कि आप मेरे सच्चे हित को ध्यान में रखकर जो बात कहेंगे वही मेरे लिये ठीक

होगी। अगर मैं सचमुच किसी फ़िल्म कंपनी में 'ऐक्ट्रेस' नियुक्त हो जाऊँ, तो जिस प्रकार का जीवन मैं इस समय बिता रही हूँ उससे वह जीवन बेहतर रहेगा या नहीं ?"

पारसनाथ फिर एक बार सजग होकर बैठ गया, और पूरे बल में अपनी बिखरी हुई मानसिक शक्तियों को बटोरने की चेष्टा करने लगा। उसके बाद बोला—"देखिए नंदिनी देवी, जब आपने गंभीर भाव से पूछा है तो मैं गंभीर ही भाव से आपके प्रश्न का उत्तर दूँगा। मेरा यह विश्वास है कि 'ऐक्ट्रेस' का जीवन बिताने पर भी आपका जीवन सुखी नहीं होगा। इस समय आपका अन्तर्जगत् जिन प्रेतों और छायाओं से घिरा हुआ है, 'ऐक्ट्रेस' का जीवन बिताने पर वे ही प्रेत और वे ही छायाएँ आपके बहिर्जगत को घेर लेंगी। केवल इतने ही अंतर से अगर आप यह समझें कि आपका जीवन पहले से बेहतर बन गया है, तब ठीक है। पर मेरी यह धारणा है कि ये दोनों परिस्थितियाँ जीवन के एक ही मूल रूप के दो विभिन्न पहलू हैं। ठीक यही बात मैं अपने संबंध में भी कह सकता हूँ। असल बात यह है, नंदिनी देवी, कि हम लोग—आप, मैं और हमारी ही तरह की सांसारिक और मानसिक परिस्थितियों के दूसरे प्राणी—जो कि सच्चे अर्थों में नरक के कीड़े हैं (क्षमा कीजिएगा, मैं एक 'जेनेरल' बात कह रहा हूँ, किसी व्यक्ति-विशेष से मेरा तात्पर्य नहीं है) हम लोग अपने मानसिक लोक के प्रेतों और छायाओं की अँधेरी और भयावनी दुनिया में रहकर ही आत्मरक्षा कर सकते हैं। उससे बाहर निकलने की चेष्टा हम लोगों की वर्तमान परिस्थिति से कई गुना अधिक खतर-नाक सिद्ध हो सकती है।"

नंदिनी जिस उमंग, उल्लास और आशा के झिलमिले प्रकाश को सिनेमा हॉल से अपने साथ लाई थी, जिस टिमटिमाती हुई रोशनी में

अस्पष्ट स्वप्नों का रंगीन जाल बुनने की चेष्टा में लगी हुई थी, पारसनाथ की अंतिम बात के झोंके में वह एक बार चटचटाकर बुझ गया। फिर वही विकराल, अगम और अभेद्य अन्धकार वह अपने भीतर महसूस करने लगी जो पिछले कुछ दिनों से उसे चारों ओर से अविच्छिन्न रूप से घेरे हुए था, और जिससे आज अत्यंत प्रबल चेष्टा के बाद, बड़ी कठिनाई से, बाहर निकलने में वह समर्थ हो पाई थी। तब क्या उसकी विद्रोही आत्मा के सारे प्रयत्न, सारे उद्योग अन्त तक निष्फल होते जावेंगे? क्या उस घोर विभीषिकामयी जीवित मृत्यु से छुटकारा पाने के सब प्रयास व्यर्थ सिद्ध होंगे जिसने उसे सब तरफ़ से सैकड़ों कठोर वज्र-बंधनों से जकड़ रखा है?

ज्यों-ज्यों मकान निकट आता गया, त्यों-त्यों नंदिनी की भय-भावना बढ़ती चली गई। जब गली के पास आकर ताँगा खड़ा हुआ, तो उसने ताँगेवाले का भाड़ा चुकाकर उसे विदा कर दिया। पारसनाथ यह कहने ही जा रहा था कि "ठहरिए, अभी इसका भाड़ा न चुकाइए, मुझे वापस जाना है, भाड़ा बाद में चुका दूंगा," पर उसके भीतर एक ऐसी उदासीनता, एक ऐसी आलस्यमयी जड़ता छा गई थी कि वह मुँह से एक शब्द भी नहीं निकाल पाया। यदि वह अपने अवचेतन मन से उस जड़ता का कारण खोजता तो चौंक उठता। उसका सचेत मन अपने आपको ठगने के लिये जैसे पहले ही से तैयार बैठा था।

गली में घुप अँधेरा था। नंदिनी आगे-आगे चलने लगी। उस पथ से दिन-रात का घनिष्ठ परिचय होने के कारण उसे उस अँधेरे में भी रास्ता सूझ रहा था। पर पारसनाथ पग-पग पर ठोकरें खाता हुआ बड़ी कठिनाई से चल पा रहा था। वह स्वयं नहीं जानता था कि वह क्यों नन्दिनी के साथ चल रहा है। सुबह जब वह खाना खाकर घर से

निकला था तब से अब तक (निश्चय ही उस समय साढ़े दस बज चुका होगा) वह वापस नहीं जा सका, जब कि मंजरी दिन-भर अकेली—निपट अकेली—यमलोक की उस अँधेरी कालकोठरी में बंद पड़ी होगी। यह सोचते ही उसके भीतर एक अनोखी अप्रिय अनुभूति टीस मारने लगी। उस अनुभूति को वह बरबस अतल में दबाने की चेष्टा करने लगा, पर वह रह-रहकर जैसे ऊपर को उमड़-उमड़ उठती थी। उसका अन्तर्वासी उसकी इच्छा के विरुद्ध एक अव्यक्त आह के साथ चीख उठा—"हाय मंजरी, किस घोर नारकीय आत्मा के साथ तुम्हारा पाला पड़ा! तुम्हें पता नहीं है कि जिस व्यक्ति के हाथों तुमने अपने को अर्पित किया है वह पाप-पंक में इस क़दर डूब चुका है कि अब उससे उबरने की इच्छा भी नहीं रखता। उस कीचड़ के घिनौने कीड़ों के साथ उसकी आत्मा एकरूप हो गई है। वह विषकीड़ा यदि जीना चाहे तो केवल सड़ा हुआ विष खाकर ही जी सकता है; उसके मन में इस भयंकर भ्रम का भूत समाया हुआ है कि यदि उसे कभी अमृत चखने को मिल जाय तो निश्चय ही तत्काल उसकी मृत्यु हो जावेगी। यही कारण है कि सड़े, गंदे और बदबूदार विष की भूख उसकी दिन पर दिन बढ़ती ही चली जाती है। आज उसी भूख की पुनरावृत्ति हुई है। उसी को मिटाने के लिये वह इतनी रात गये इस रौरव में......" इतने में पारसनाथ का पाँव एक नाली में जा गिरा, जो रास्ते को बीच से काटती हुई चली गई थी। नाली चूँकि बहुत गहरी नहीं थी, इसलिये चोट अधिक नहीं आई।

नंदिनी ने पीछे की ओर लौटकर चिंतित भाव से पूछा कि गहरी चोट तो नहीं आई है। पारसनाथ हँस दिया। नंदिनी ने कहा—"सँभलकर, मेरे क़दमों को देख-देखकर चलिए।" यह कहकर वह आगे बढ़ी। पारसनाथ उसका अनुसरण करके चलने लगा।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

दरवाज़े के पास पहुँचकर नंदिनी जब ताला खोलने लगी, तो पारसनाथ के मन में एक बार आया कि तत्काल लौट चले। पर यह सोचने पर भी, न जाने क्यों, उसके पाँव ज़मीन पर गड़े-से रह गए। ताला खोलकर नंदिनी ने भीतर प्रवेश किया। पारसनाथ अपनी अनिश्चित और अव्यवस्थित मानसिक अवस्था में यह आशा करता था कि नंदिनी निश्चय ही उससे भीतर चलने का आग्रह करेगी। पर उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही, जब नंदिनी बिना एक शब्द बोले, चुपचाप ऊपर चली गई। प्रायः दो मिनट तक पारसनाथ निद्रा-विचरण की-सी विस्मृति और भ्रांत अवस्था में दरवाजे पर ही खड़ा रहा। सहसा उसे चैतन्य हुआ, और उसे याद आया कि यद्यपि नंदिनी ने उससे भीतर चलने को नहीं कहा, तथापि उसने यह भी तो नहीं कहा कि—"अच्छा, नमस्ते! आपको देर हो गई, अब आप जाइए।" और न भीतर से दरवाजा ही बंद किया था।

वह और कुछ देर तक दुविधा में पड़ा रहा। उसके बाद एक दियासलाई जलाकर सीधे ऊपर चला गया। नंदिनी ने अभी तक बत्ती नहीं जलाई थी। ऊपर जाकर उसने एक दियासलाई और जलाई। एक झलक में पारसनाथ ने देखा, नंदिनी के मुख के भाव में एक आश्चर्यजनक और आकस्मिक परिवर्तन आ गया है। कुछ ही समय पहले उसका जो रूप उसने देखा था उसमें और वर्तमान रूप में जमीन और आसमान का अंतर उसे दिखाई दिया। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि पारसनाथ का अन्तर्मन उस परिवर्तन के लिये जैसे पहले से ही तैयार बैठा था। नंदिनी दाहिने हाथ पर गाल टेके अनमने भाव से खड़ी थी, और उसके मुख पर आशंका और लज्जा—हाँ,

लज्जा—का एक अनोखा मिश्रण छाया हुआ था; जैसे पहले से ही उसके मन में यह भय समा गया हो कि पारसनाथ निश्चय ही बिना बुलाये ऊपर चला आवेगा। पर क्या केवल उसकी ज्ञात या अज्ञात चेतना में केवल भय ही था। क्या इस बात की एक अस्पष्ट आकांक्षा, बल्कि उत्सुकता नहीं थी? और वह लज्जा की रहस्यमयी छाया! उसका क्या अर्थ हो सकता है? अकस्मात् वह कहाँ से आकर, बिना किसी प्रकट कारण के उसके मुख पर अंकित हो गई? अथवा किसी अव्यक्त और अस्पष्ट भावी कारण का पूर्वाभास किसी अज्ञात रहस्यमय नियम की प्रेरणा से उसे मिल गया था। इतने दिनों तक उसका अंतर्मन उसके अज्ञात में जिस चरम अवसर की बाट बड़ी उत्सुकता से जोह रहा था, और साथ ही जिसके संबंध में उसका सचेत मन आशंकित भी हो रहा था, क्या उसकी पूर्व-सूचना अभी-अभी उसे मिल गई? विश्वास की बात न होने पर भी यह सत्य है कि इतनी सब बातों का सार पारसनाथ का वायु से भी वेगशील अंतर्मन एक पल में, बल्कि उससे कम समय में, सोच गया—दियासलाई के क्षणिक प्रकाश में नंदिनी के मुख की झलक देखने के साथ ही। साथ ही उसने यह भी सोचा कि क्या नंदिनी के मनोभाव के उस आकस्मिक मौन विस्फोट की 'टेलीपैथिक' प्रतिध्वनि का ही यह अज्ञात प्रभाव नहीं था कि वह उस क्षण के पहले बिना कोई कार्यक्रम निश्चित किये ही उस अनुपयुक्त अवसर पर अनुचित रूप से भीतर चला आया? या उसका अज्ञात मन पहले ही से सारा 'प्लान' तय कर चुका था?

दियासलाई जलते ही शायद क्षण-भर के लिये नंदिनी कुछ चौंकी, या शायद न चौंकी हो, और वह केवल पारसनाथ की आँखों का भ्रम रहा हो। कुछ भी हो, जब दियासलाई बुझ गई, तो दूसरी दियासलाई जलाने का साहस उसे नहीं हुआ। सबसे अधिक विशेषत्वपूर्ण बात यह थी कि पारसनाथ को देखकर नंदिनी उसी अवस्था में अपने ही स्थान

पर खड़ी रही, और मुँह से एक शब्द भी नहीं बोली । एक क्षण के लिये पारसनाथ के मन में यह बात आई कि कुछ न कहकर चुपचाप उलटे पाँव लौट चले। पर दूसरे ही क्षण उसके भीतर, न जाने कहाँ से, अवसरानुकूल साहस (या दुस्साहस) का संचार हो आया। कृष्णपक्ष की रात थी। खिड़कियाँ और दरवाजे खुले होने पर भी कमरे के भीतर घुप अँधेरा छाया हुआ था। पारसनाथ ने धीरे से जैसे डरते-डरते कहा—"क्या खाना नहीं बनेगा ? महरी तो आई नहीं !"

"आती ही होगी !"—बिलकुल दबी हुई ज़बान में, प्रायः गद्-गद् स्वर में, नंदिनी ने उत्तर दिया। उसके गले के शब्द के उस गद्-गद् भाव ने पारसनाथ के सिर से लेकर पाँव तक बिजली के वेग से एक वर्णनातीत उन्माद का संचार कर दिया। वह बहुत धीरे, दबे-पाँव, दो क़दम आगे बढ़ा—आधे अनमने भाव से। उसके बाद बहुत ही धीमी आवाज़ में बोला—"बड़ी भूल हुई, बाज़ार से पूड़ियाँ ले आया होता तो आपके खाने का प्रश्न हल हो गया होता"

"मुझे भूख नहीं है,"—नंदिनी ने धीरे से कहा। उसका स्वर पहले से अधिक गद्‌गद् हो आया था। पारसनाथ उस घुप अँधेरे में उस ओर धीरे से आगे बढ़ा जहाँ से नंदिनी की आवाज़ आ रही थी। जब उसके एकदम निकट आ गया, तो उसी अर्द्ध-चेतनावस्था में उसने अकस्मात् नंदिनी का हाथ धीरे से पकड़ लिया। उसे ऐसा लगा कि नंदिनी का हाथ एक अनोखी गरमी से जल रहा है। नंदिनी स्थिर खड़ी रही। उसने अपना हाथ नहीं छुड़ाया। उसकी साँस बड़ी तेज़ी से चल रही थी, जिसकी आवाज़ उस अन्धकारमय सन्नाटे में पारसनाथ को किसी रहस्यमयी छाया की प्रेमाकुल आह की तरह लग रही थी। वह अपनी आवाज़ को पहले से अधिक दबाते हुए बोला—"यह हो नहीं सकता कि तुम्हें भूख न लगी हो।"

नन्दिनी ने अस्फुट स्वर में कहा—"जैसा आप समझें।"

पारसनाथ ने आव देखा न ताव, सहसा उन्माद-ग्रस्त व्यक्ति की तरह अपने दोनों हाथों से उसे कसकर छाती से जकड़ लिया और उसके कानों में मंत्र की तरह फुसफुसाते हुए कहने लगा—"तुम भूखी हो! नन्दिनी, तुम भूखी हो! मैं जानता हूँ तुम भूखी हो, और मैं भी भूखा हूँ।" यह कहते हुए उसके ओठों के एकदम निकट अपना मुँह ले गया और ओठों को ही कान समझ कर फुसफुसाता चला गया—"मैं प्रेत हूँ, नन्दिनी, और तुम छाया! हाँ, तुम छाया हो और मैं प्रेत! इसलिये तुमसे मेरा मिलन हुए बिना नहीं रह सकता था! मेरी छाया! मेरी छाया!..."

इतने में दरवाज़े से नौकरानी ने आवाज़ दी—"बहू, ज़रा रोशनी दिखाना! न बाहर रोशनी है न भीतर। क्या अंधेर है! अभी चौखटे पर गिरती-गिरती बची। गोड़ ही टूट गई होती।"

पारसनाथ के जैसे होश ठिकाने आ लगे। अत्यंत घबराहट के साथ उसने नन्दिनी को अपने बाहुपाश से मुक्त कर दिया। मरी हुई ज़बान से बोला—"नौकरानी आ गई! अब क्या होगा! इस समय मेरा यहाँ ठहरना ठीक नहीं रहा।"

नन्दिनी एक शब्द भी न बोली। वह चुपचाप अभ्यस्त पगों से एक आले के पास गई, और वहाँ से निर्दिष्ट स्थान पर रखी हुई दियासलाई की डिबिया लेकर उसने एक तीली जलाई। उससे एक लालटेन जलाकर वह सीधे नीचे चली गई। पारसनाथ हक्का-बक्का खड़ा रह गया। उसका हृदय बेतहाशा धड़क रहा था। नन्दिनी नौकरानी को रास्ता दिखाकर भीतर ले गई। नौकरानी बड़बड़ाती हुई कहने लगी कि वह दो बार आकर लौट गई है। इसके बाद उसने पूछा

कि खाना बनेगा कि नहीं। नंदिनी ने स्वाभाविक स्वर में कहा—“ज़रूर बनेगा। आटा सानो—दो आदमियों के लिये।”

आश्चर्य और प्रसन्नता के साथ (उसकी वह प्रसन्नता नंदिनी को अत्यंत घृणित मालूम हो रही थी) दाँत दिखाते हुए नौकरानी ने पूछा—“क्या बाबू वापस आ गए हैं?”

“नहीं, दूसरे बाबू आए हैं। तुमने निश्चय ही उन्हें देखा है—पारसनाथजी, जो तस्वीर बनाते हैं।” उसके कंठस्वर और मुख के भाव से एक अस्वाभाविक ढिठाई प्रकट होती थी। पारसनाथ उधर से सुन रहा था। सुनकर उसके होश ठिकाने न रहे। नौकरानी को जब मालूम हुआ कि पारसनाथ आया है, तो क्षण भर के लिये वह चकित रह गई, और फिर तत्काल उसके मुख का विस्मित भाव घोर विद्वेषपूर्ण और हिंसक व्यंग-भरी मुसकान में परिणत हो गया। पर नंदिनी ने उसके मुख का भाव देखकर भी अनदेखा कर दिया, और बोली—“जल्दी आग जलाओ, और तरकारी काटो। मैं उधर जाती हूँ; वह अकेले खड़े हैं।” यह कहकर वह लालटेन नीचे ही छोड़कर तेज कदम रखती हुई ऊपर चली गई।

पारसनाथ कुछ समझ ही नहीं पाता था कि मामला क्या है। नंदिनी की अनावश्यक ढिटाई ने उसे आश्चर्य में डाल दिया था। नंदिनी ने ऊपर आते ही एक दियासलाई जलाई। दियासलाई के डिब्बे को वह अपने साथ ही लेती गई थी। उसके बाद लैंप जलाने लगी, जो मेज पर रखा हुआ था। पारसनाथ ने अधजले लैंप के क्षीण प्रकाश में देखा कि नंदिनी के मुख पर एक स्थिर, शांत और गंभीर भाव छाया हुआ था। लैंप जलाकर उस पर चिमनी फिट करके वह एक सोफा पर बैठ गई, और बैठते ही उसके मुख पर एक निराली मुसकान खेल गई, जो पारसनाथ को अत्यन्त मोहक लगी। ऐसा

भाव जताती हुई जैसे कुछ हुआ ही न हो, नंदिनी उसी मुसकान को और अधिक तीव्रता से झलकाती हुई काफ़ी ऊँचे स्वर में बोली—"कहिए प्रेत महाशय, क्या हाल है? आप खड़े क्यों हैं, विराजते क्यों नहीं?"

पारसनाथ ने घबराहट के साथ हाथ से अपना मुँह ढाँपते हुए संकेत से यह जताया कि—"चुप रहो! नौकरानी सुन लेगी!"

पर नंदिनी ने जानबूझकर इस संकेत से तनिक भी लाभ नहीं उठाना चाहा, और पहले की ही तरह ऊँची आवाज़ में, स्पष्ट शब्दों में कहने लगी—"आप तो बेतरह घबराए हुए हैं! क्या हो गया? बैठते क्यों नहीं?"

पारसनाथ ने देखा कि अब अपने को अधिक छिपाने की चेष्टा करना निकट मूर्खतापूर्ण और हास्यास्पद है। इसलिये उसने यथाशक्ति स्वाभाविक स्वर में कहा—"अब मुझे आज्ञा दीजिए, मैं जाता हूँ। बहुत देर हो गई है।"

"पौने घंटे के भीतर खाना हुआ जाता है। खाकर जाइएगा।"

"नहीं, इस समय मुझे क्षमा करो, नंदिनी—मुझे क्षमा कीजिए, इस समय मैं जाता हूँ।"

"वाह, यह कैसे हो सकता है! बिना खाए आप नहीं जा सकते!"

यह कहकर नंदिनी उठ खड़ी हुई, जैसे बलपूर्वक उसका रास्ता रोकने के लिये खड़ी हुई हो; और आँख के एक अनोखे घूर्णन से पारसनाथ की ओर देखने लगी।

पारसनाथ को जैसे बिजली की एक झलक में मंजरी की याद आई। पर उसने बरबस मन की आँखें मूँद लीं, और एक उत्सुक,

मोहक और पागल दृष्टि से नंदिनी की ओर देखा। उस एक झलक में उसने नंदिनी के मुख पर किस रूप का आभास पाया ? जादूगरनी ? भौतिक छाया ? या जीवन में प्रथम बार 'वास्तविक' प्रेम का स्वाद पानेवाली नायिका—जो अभी कुछ ही क्षण पहले तक मुग्धा थी, और अब अकस्मात् जिसने प्रगल्भा का रूप धारण कर लिया है ?

कुछ भी हो, वह नंदिनी की उस रहस्यमयी दृष्टि के मोहक आकर्षण का प्रतिरोध न कर सका, और 'हिप्नोटाइज़' किये गये व्यक्ति की तरह चुपचाप एक कुर्सी पर जाकर बैठ गया। नंदिनी शासन की छड़ी की तरह अपनी तर्जनी को पारसनाथ की ओर हिलाती हुई और अपनी रहस्यमयी दृष्टि में रहस्यमय मुसकान झलकाती हुई, शासन के नक़ली स्वर में बोली—"देखिए, मेरे आने तक उठिएगा नहीं। मैं नीचे जाकर खाना बनाकर बीस मिनट के अन्दर ही अन्दर आती हूँ।" यह कहकर वह नीचे चली गई।

खाना बनने के बाद जब दोनों खा पी चुके, और नौकरानी नीचे बर्तन साफ़ करने लगी, तो भी पारसनाथ बैठा ही रह गया। काम-धंधा समाप्त करके नौकरानी ऊपर आई। नंदिनी के कमरे में अँधेरा था। बाहर से ही एक बार खाँसकर वह बगलवाले कमरे में जाकर सोने की तैयारी करने लगी। और बहुत देर तक खाँसी न आने पर भी खाँसती रही।

पारसनाथ उस दिन सारी रात वहीं रह गया। सुबह पौ फटने के पहले ही वह उठ खड़ा हुआ और चल दिया।

——

of course fine ... Ila Chand ... Joshi

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

जब वह मकान के पास पहुँचा तो उसको घबराहट हद दर्जे तक बढ़ी हुई थी। सारी रात इस बात की चिंता दबी हुई हालत में उसे बेचैन करती रही कि मंजरी उस नरकावास में अकेली पड़ी होगी। सुबह होते ही वह चिंता बाहर फूट पड़ी। मंजरी को रात-भर उस अरक्षित स्थान में अकेली छोड़ने का अपराध कितना बुरा है इस बात की कल्पना ज्वलंत सत्य के रूप में उसकी मानसिक आँखों के आगे आई। किस भयंकर और अव्यक्त कारण से यह घोर कुमति उसके भीतर उसकी इच्छा के विरुद्ध घर कर गई यह सोच-सोचकर उसके विस्मय और आतंक का ठिकाना नहीं था। दरवाजे पर पहुँचते ही उसे इस संबंध में भी संदेह होने लगा कि मंजरी जीती है या घबराहट के कारण दिल की धड़कन बंद होने से मर गई है। इसी चिंता से हौलदिल होकर उसने काँपते हुए हाथों से दरवाज़ा खटखटाया। कुछ देर बाद दरवाजा खुला। उसके सामने वह मूर्ति खड़ी थी जिसे सच्चे अर्थों में भौतिक छाया कहा जा सकता है। मुँह एकदम सूखा हुआ, बाल बिखरे हुए, निस्तेज आँखें भीतर धँसी हुई, सारी शक्ल मुरझाई हुई और उसपर भय उत्पन्न करनेवाली मुर्दनी छाई हुई। वह प्रेतात्मा एक क्षण तक विस्मित उद्भ्रांत दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखती रह गई, जैसे पहचान हो नहीं पाती हो। पर दूसरे ही क्षण उसे होश आ गया, और उसने अत्यंत क्षीण और अस्फुट कंठ से कहा—"तुम आ गए!"

पारसनाथ ने बड़ी हड़बड़ी के साथ भीतर प्रवेश किया और भीतर से किवाड़ बन्द करके जंज़ीर लगा दी उसके बाद वह बोला—मैं तुमसे बहुत-बहुत क्षमा चाहता हूँ, मंजरी! कल स्वयं अपनी ही बेवकूफ़ी

की वजह से मैं एक ऐसे चक्कर में फँस गया कि मेरे लिये आना असंभव हो गया।"

मंजरी कुछ न कहकर भीतर की ओर चलने लगी। पारसनाथ भी उसके पीछे पीछे चलता हुआ अत्यंत अनुनय के स्वर में कहता गया—"बोलो मंजरी, तुमने मुझे क्षमा कर दिया है या नहीं ?"

मंजरी फिर भी कुछ नहीं बोली, धीर पगों से सीढ़ियों से होकर ऊपर जाने लगी। चार-पाँच सीढ़ियाँ बड़ी मुश्किल से चढ़ने के बाद उसे चक्कर आने लगा। उसने तत्काल दीवार का सहारा पकड़ लिया। जब किसी तरह ऊपर पहुँची तो कमरे के चौखटे पर उसका पाँव फिर एक बार लड़खड़ाया और वह धड़ाम से जमीन पर औंधे मुँह गिर पड़ी। पारसनाथ की घबराहट का ठिकाना नहीं रहा। उसने मंजरी का हाथ पकड़कर धीरे से ऊपर उठाया, और खटिया पर उसे लिटा दिया। चोट विशेष नहीं आई थी। पारसनाथ को यह समझने में देर न लगी कि रात-भर घबराहट के कारण नींद न आने से वह कमज़ोर हो गई है।

मंजरी आँखें बंद किये लेटी हुई थी। पारसनाथ कुछ देर तक वहीं पैताने पर बैठा रहा। बाद में जब उसने देखा कि मंजरी लेटे-लेटे सो गई है। तो वह भी वहाँ से उठकर दूसरी खटिया पर जाकर लेट गया। रात में वह भी पूरी तरह से सो नहीं पाया था, इसलिये लेटने के कुछ ही देर बाद उसकी आँखें झपने लगीं और वह बरबस गहरी नींद में सो गया।

वह काफ़ी देर तक सोया रहा। उसकी आँखें तब खुलीं जब किसी के हाथ के धक्के से वह स्वप्न की-सी अवस्था में चौंक उठा। जागने पर उसने देखा कि मंजरी हाथ में चाय का प्याला लिए खड़ी है। वह आँखें मलता हुआ उठ बैठा। मंजरी ने एक भेद भरी अस्पष्ट मुसकान

मुख पर झलकाते हुए बड़े ही मीठे स्वर में कहा—"तुम्हें भी क्या मेरी ही तरह रात-भर घबराहट के कारण नींद नहीं आई?"

पारसनाथ ने चाय का प्याला उसके हाथ से लेते हुए कहा—"तुम्हारा अनुमान बिलकुल ठीक है। सचमुच मुझे रात-भर चिंता और घबराहट के कारण नींद नहीं आई।"

मञ्जरी बड़े ग़ौर से उसके मुँह की ओर देख रही थी, जैसे यह जानने की चेष्टा कर रही हो कि वास्तव में उसने रात कहाँ और किस 'चक्कर' में बिताई। उसने कहा—"तुम उस समय कह रहे थे कि अपनी बेवकूफ़ी के कारण तुम किसी एक चक्कर में फँस गए थे। वह 'चक्कर' किस प्रकार का था, क्या मैं जान सकती हूँ?" यह प्रश्न करते हुए उसके मुख पर व्यंग और भोलापन—ये दोनों भाव एकसाथ व्यक्त हो रहे थे।

पारसनाथ ने एक घूँट चाय पीते हुए सोचा। क्षण-भर के लिये उसके भीतर यह तरंग उठी कि सारी बात साफ़-साफ़ और सच-सच मंजरी के आगे प्रकट कर दे। पर इतना बड़ा नैतिक साहस वह किसी प्रकार भी अपने भीतर नहीं बटोर पाता था। अंत में उसने वही क़िस्सा बताया जिसे रास्ते में उसने कल्पना द्वारा गढ़ लिया था। उसने कहा—"बात यह हो गई कि कल एक चौराहे पर पुलिस के एक सिपाही से मेरी तकरार हो गई। वह मेरे एक्केवाले को अकारण परेशान करने लगा था। बात यहाँ तक बढ़ी कि हाथापाई की नौबत आ गई। पुलिसवाले को मैंने ख़ूब पीटा, पर बदले में मुझे हवालात में बन्द रहना पड़ा। रात-भर क़ैद रहा; सुबह पो फटने के पहले ही मुझे छोड़ दिया गया।"

मंजरी के मुख पर असीम समवेदना फूट पड़ी। उसने अत्यन्त

चिंतित होकर कहा—"भगवान ने बचा दिया, नहीं तो न जाने कितनी हैरान होना पड़ता !"

पारसनाथ चाय पीने के बहाने अपना सिर नीचा किये रहा। मंजरी से आँखें मिलाने का साहस उसे नहीं होता था। उसका अंतर्यामी तीखे और कटीले व्यंगों के साथ उसे कोस रहा था। मंजरी खटिया पर उसकी बग़ल में बैठ गई और उसके कन्धे पर हाथ रखकर अत्यंत स्निग्ध और मधुर स्वर में बोली—"एक ज़माना था जब मैं अपने को और अपनी माँ को संसार में सबसे दुखी समझती थी। पर जब से तुम्हारे साथ मेरा घनिष्ठ परिचय हुआ है, तब से मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारे दुर्भाग्य की तुलना में मेरा दुख नाचीज़ है। एक-न-एक विपत्ति तुम पर हर घड़ी सवार रहती है। सुख, संतोष और सान्त्वना नाम की कोई चीज़ विधाता ने जैसे तुम्हारे लिये रची ही नहीं।"

पारसनाथ उसी तरह सिर नीचा किये चुपचाप चाय पीता रहा। जब उसने प्याले की चाय समाप्त कर डाली, तो मंजरी ने 'टी-पाट' में से बनी-बनाई चाय उँड़ेलकर उसका प्याला भर दिया। पारसनाथ फिर मौन भाव से पीने लगा। मंजरी कुछ क्षण तक अनमने भाव से उसके कंधे पर और पीठ पर धीरे से हाथ फेरती रही। उसके बाद संकोच के साथ, दबी हुई ज़बान में उसने कहा—"आज प्रायः सब जिनस समाप्त हो चली है। तुम्हारी आर्थिक स्थिति देखकर इस तरह की सूचना तुम्हें देते हुए संकोच मालूम होता है। पर इस तरह की बात एक-आध दिन से अधिक छिपाई भी तो नहीं जा सकती !"

पारसनाथ जैसे स्वप्न से जाग पड़ा। मंजरी की ओर देखकर बोला—"क्या सब चीज़ें चुक गई हैं ?"

"हाँ, आटा, दाल, चावल, घी, चीनी,—प्रायः सभी चीज़ें

समाप्ति पर हैं। कोई-कोई चीज़ एक-आध दिन के लिये और हो सकती है। पर आटा आज शाम के लिये भी नहीं है।"

"तुम कुछ चिंता न करो; मैं अभी नहा-धोकर जाता हूँ और सब सौदा ख़रीदकर ले आता हूँ। मुझ पर दारिद्र्य का बड़ा ज़बर्दस्त कोप छाया हुआ है, संदेह नहीं; पर अभी तक मैं इस हद तक मर-भुखा नहीं हुआ हूँ कि दिन-रात की ज़रूरियात की चीज़ें भी न ख़रीद सकूँ। तुम बिलकुल चिंता न करो, बिलकुल!" उसके कंठस्वर से ऐसा आकस्मिक आवेग फूट पड़ा जिससे पहले मंजरी को आश्चर्य हुआ, पर बाद में वह अत्यंत स्नेहपूर्वक मंद-मंद मुस्कराने लगी।

वास्तव में पारसनाथ का आवेग उसके अंतस्तल में दबी हुई किसी दूसरी ही बात की प्रेरणा से उमड़ उठा था, और वह फूट पड़ा किसी दूसरे ही बहाने से। उसकी अपराधी आत्मा मंजरी की निष्कपट स्नेह-भावना से व्यथित होने लगी थी, और वह अपने भीतर मंजरी के लिये अधिक से अधिक प्रतिस्नेह का भाव जगाने के लिये आकुल हो उठा था। इसलिये जब जिनस समाप्त होने की बात चली तो वह बार-बार अन्यमनस्क भाव से यह कहता गया—"तुम कुछ चिंता न करो! तुम बिलकुल चिन्ता न करो!" अर्थात् (उसकी अंतश्चेतना उसके अज्ञात में कहना चाहती थी—) "तुम इस बात की चिन्ता न करो कि मैं तुम्हारे निश्छल प्रेम का प्रतिमूल्य देने से मुकर जाऊँगा! नंदिनी ने कल जो मुझे तुमसे खींच लिया—या मैं ही अपनी किसी हीन और कुटिल मनोवृत्ति के क्षणिक प्रभाव से उसकी ओर खिंच गया—उसकी पुनरावृत्ति फिर नहीं होने दूँगा। तुम बिलकुल चिंता न करो, मैं तुम्हें किसी हालत में नहीं छोड़ूँगा!"

कुछ भी हो, न मंजरी के आगे उसके उस आवेग की आड़ में किया हुआ यह अज्ञात भाव स्पष्ट हुआ, न स्वयं पारसनाथ ही अपने अवचेतन मन के इस उबाल का मर्म समझ पाया।

नहा-धोकर खाना खाकर पारसनाथ सौदा खरीदने बाज़ार चला गया। मंजरी शीतकाल की दुपहरी की अपेक्षाकृत निस्तब्ध निर्जनता में बरामदे पर बाँस की एक कुर्सी पर बैठ गई, और वहाँ धूप खाती हुई बी० एस-सी० के कोर्स की जीव-विज्ञान-संबंधी कोई एक पुस्तक पढ़ने लगी। इधर कई दिनों से वह अपना सारा खाली समय कोर्स-संबंधी पुस्तकों को पढ़ने में लगाया करती थी। वह नियमित रूप से उनका अध्ययन करती थी—एक परीक्षार्थिनी छात्री की तरह तद्गत और तल्लीन होकर। अज्ञात भविष्य की किस कठिन परीक्षा के लिये वह तैयारी कर रही थी—यह वह स्वयं नहीं जानती थी। कोर्स की उन पुस्तकों में मग्न रहने के कारण उसे समय काटना कतई दूभर नहीं मालूम होता था। पास-पड़ोस की गाली-गलौज और हुल्लड़ से भी उसका ध्यान नहीं उचटता था। पिछले दिन पारसनाथ की अनुपस्थिति में सारा दिन उसने पुस्तक-पाठ में बेमालूम बिता दिया, और सारी रात भी वह पढ़ने में ही बिता देती, पर तरह-तरह की आशंकाओं ने उसे अस्थिर कर दिया था जिनके कारण वह न तो सो पाई, न पढ़ पाई। सुबह जब पारसनाथ आया तो प्रारंभ में कुछ समय तक वह, कुपित रही, पर शीघ्र ही उसकी नाराजगी करुणा में बदल गई।

आश्चर्य की बात यह थी कि जरायम-पेशा लोगों की उस बस्ती के बीच, घोर निरानंदमय वातावरण में, अत्यंत अस्वाभाविक परिस्थिति में रहने पर भी वह अपने भीतर एक निराली स्थिरता, शांत और सामंजस्य का अनुभव करने लगी थी, और उस सौम्य भाव का विकास दिन पर दिन निश्चित रूप से होता जाता था। यही कारण था कि प्रकट में किसी प्रकार के सुख या आशा का निपट अभाव होने पर भी वह अधीर नहीं दिखाई देती थी, और न अपने को दुःखी ही समझती थी। उसने पारसनाथ के आगे कभी यह भाव नहीं जताया कि उस मकान में अकेले में उसका जी घबराता है, और न कभी यह

इच्छा प्रकट की कि वह उसे भी अपने साथ टहलने के लिये ले चले। न कभी इस बात के लिये मन में पारसनाथ के प्रति तनिक भी मान का भाव उत्पन्न हुआ कि वह उसे दिन-भर और रात में बहुत देर तक अकेली पड़ी रहने के लिये छोड़ देता है—जैसे यह एक स्वाभाविक और साधारण-सी बात थी। वह सोचती थी कि पारसनाथ जिस घोर कष्टकर सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से होकर गुजर रहा है उनको देखते हुए उसका वह अनोखा आचरण क्षम्य है। न जाने उसके अंतस्तल के किस अंधतम स्थान से पारसनाथ के प्रति एक ऐसी मार्मिक दया का स्रोत उमड़ उठा था जो कारणातीत और वर्णन के परे था। कब वह दया प्रेम में बदल जाती थी, और कब प्रेम ही दया के साथ घुलमिल कर एक रूप धारण कर लेता, इसका पता उसे स्वयं नहीं रहता था।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि माँ की मृत्यु के बाद—बल्कि उसके पहले ही से—चरम अनाथ अवस्था को प्राप्त होने पर भी, उसने कभी एक दिन के लिये भी अपने को निःसंबल, निस्सहाय और पराश्रित नहीं समझा। पारसनाथ के प्रति वह कृतज्ञ थी संदेह नहीं, पर इसलिये नहीं कि उसने उसकी उस चरम संकटावस्था में आश्रय दिया, बल्कि इसलिये कि वह उसके भीतर बंद पड़ी हुई करुणा के उत्स पर आघात करके प्रेम का स्रोत मुक्त कर सका है। उसका सचेत मन यद्यपि यही जानता था कि पारसनाथ ने उसके निपट संकट के अवसर पर उसे आश्रय देकर उस पर परम कृपा की है, पर असली कारण उसके अंतर्मन में छिपा हुआ था। उसका अंतर्मन जानता था कि अनाथ, असहाय और दयनीय वह नहीं, बल्कि पारसनाथ है। उसके भीतर किसी अज्ञात शक्ति ने उसके अनजान में जैसे यह दृढ़ आश्वासन उसे दे रखा था कि किसी भी स्थिति में कोई भी शक्ति उसे निरुपाय और निःसंबल बनाने में समर्थ नहीं हो सकती! यह कारणा-

र्तात आश्वासन जब बीच बीच में उसके सचेत मन पर भी संचारित होने लगता था तो उसका कारण खोजकर वह हैरान हो जाती। कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि उस अज्ञात, रहस्यमय आश्वासन के फलस्वरूप उसके भीतर स्थिरता, धीरता और सौम्य शांति ने धीरे-धीरे घर कर लिया था। निपट अकेली रहने पर भी वह किसी तरह की घबराहट अपने भीतर महसूस नहीं करती थी। उसे ऐसा लगता था कि वर्तमान चाहे जैसा ही अंधकारमय और गहन निराशामूलक क्यों न हो, उसी घनीभूत अंधकार की पर्तों की पारस्परिक रगड़ से एक ऐसी ज्योति प्रकट होगी जो उसके भविष्य का पथ निश्चय ही आलोकित करेगी। क्षितिज के उस पार प्रकाश की किरणमयी छाया उसके अंतर्मन की आँखों को जैसे स्पष्ट दिखाई दे रही थी। क्या उसकी अंतराकांक्षा ने यह मोहक भ्रमजाल रचा था, या अंतर्दृष्टि की किसी अज्ञात प्रेरणा के फलस्वरूप उसे एक विचित्र सत्य का आभास मिला था? वास्तविकता चाहे कुछ भी हो, पर इतना निश्चित था कि वह अपने भीतर एक स्वस्थ और सबल भाव का अनुभव करने लगी थी, जो अनेक विरोधी किरणों के होते हुए भी उसके अटल धैर्य और क्षमा के बाँध को टूटने नहीं देता था।

कुछ देर बाद जब धूप काफ़ी तेज़ मालूम होने लगी तो वह भीतर चली गई, और खटिया पर बैठकर मनोयोगपूर्वक उसी पुस्तक को पढ़ती रही। प्रायः दो घंटे बाद जब पारसनाथ सामान खरीदकर लौटा, तो मंजरी अत्यंत मधुर स्नेहपूर्वक उसकी ओर देखकर मंद-मंद मुस्कराने लगी, और फिर कुली की सहायता से एक-एक करके सब सामान को यथास्थान सँजोकर रखने लगी। पारसनाथ ने देखा कि उसके किसी भी काम में, किसी भी गति में, हड़बड़ी कहीं लेशमात्र नहीं पाई जाती थी। सहज प्रसन्नता से, अत्यंत सुस्थिर भाव से वह हर एक चीज़ को या तो स्वयं उठाकर क़रीने से रख रही थी, या

कुली को आदेश देकर रखवा रही थी। पारसनाथ सोचने लगा—"आशा के बल पर, जीवन के किस कल्पित सुख के भरोसे पर, इतने निश्चित धैर्य के साथ वह उस गिरस्ती का भार ढोने में प्रसन्नता का अनुभव कर रही है जिसका स्थायित्व एकदम अनिश्चित है! वह क्या हम दोनों के संबंध को इतना स्थिर माने बैठी है, जबकि जीवन में कहीं भी, किसी भी स्थिति में स्थिरता नहीं है!" सोचते-सोचते उसे यह अनुभव होने लगा कि मंजरी उसे जानबूझकर या अनजाने में उसे प्रतिपल और प्रतिपग अपनी प्रत्येक गति-विधि से बरबस, उसकी इच्छा के विरुद्ध एक ऐसे अटूट बंधन में बाँधने की चेष्टा में है, जो उसके जीवन के (चाहे वह जीवन कैसा ही विकृत क्यों न हो) रक्तप्रवाह की मुक्त गति को ही एकदम रोक देगा। वह मन-ही-मन कहने लगा—"नारी का यह अनंतकालव्यापी स्नेह-बंधन स्वीकार करें वे लोग जिन्हें समाज का सम्मान और वैभव का वरदान प्राप्त है; पर मेरे जैसे प्रेतलोक में निर्वासित भगोड़े किसी भी हालत में इस प्रकार के बंधन को अधिक समय तक मानकर नहीं चल सकते!"

सब सामान ठीक तरह से सँभालकर रखने के बाद मंजरी पहले की ही तरह स्निग्ध-मधुर मुसकान मुख पर झलकाती हुई पारसनाथ के पास आई, और कृतज्ञता-भरे स्वर में बोली—"आज तुमने मेरे मन का एक मनों-भारी बोझ हलका कर डाला है। तीन दिन से मैं इसी चिंता में थी कि कैसे तुम्हें जिनस समाप्त होने की सूचना दूँ—तुम्हारी आर्थिक स्थिति देखते हुए मुझे कुछ कहने का साहस नहीं होता था। फिर भी बिना कहे भी तो काम न चलता! पर तुम बड़े भले आदमी हो—बड़े धैर्यशाली और साहसी। मैं तुम्हें शाबाशी देती हूँ!" यह कहकर वह सचमुच उसकी पीठ ठोंकने लगी। पारसनाथ ने देखा कि उसके मुख के भाव से और बोलने के ढंग से व्यंग का

लेश भी प्रकट नहीं होता था। उसने जो कुछ कहा था, बड़ी ही सादगी और निश्छल स्नेह से कहा था। इसी कारण उसका पीठ ठोंकना उसे ऐसा लग रहा था जैसे स्नेह-बंधन की एक-एक कील उसके मुक्तिकामी प्राणों में अत्यंत निर्ममता से गाड़ी जा रही है।

कुछ देर तक पारसनाथ उस स्नेह-सरस आघातों को अत्यंत विरसता के साथ सहन करता रहा। उसके बाद सहसा बोला—"अच्छा, अब मैं जाता हूँ। एक आदमी से व्यवसाय की बातें करनी हैं।"

"आज रात में तो कल की तरह गायब न रहोगे?"

बिलकुल भरे मन से पारसनाथ ने उत्तर दिया—"नहीं, नहीं! यह कैसे हो सकता है! मैं आज अवश्य समय पर लौटकर आऊँगा।"

मंजरी ने फिर एक बार उसी मधुर, सहृदय और स्नेह-स्निग्ध कटाक्ष से उसकी ओर देखा। उस कटाक्ष से पारसनाथ के भीतर की प्रेतात्मा जैसे तिलमिला और बौखला उठी। "अच्छा, अब जाता हूँ," कहकर वह तत्काल मुँह फेरकर चला गया।

मंजरी अत्यंत धैर्य के साथ ऊपर गई, और फिर पुस्तक पाठ में मग्न हो गई।

——

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

पारसनाथ ने सोचा था कि वह नंदिनी के यहाँ ज[illegible]
देगा। उसके साथ पिछली रात उसका जो नया संबन्[illegible]
था, उसे अधिक तूल देने में उसका मन [illegible]
आशंका कर रहा था। इसके अ[illegible]
की प्रेतात्मा मंजरी के स्नेह-बंधन से [illegible]

पर उसकी अंतरात्मा जानती थी कि वह बंधन दिन पर दिन वज्र से भी दृढ़ होता जाता है, और उससे सहज में मुक्ति पाने का अनैतिक दुस्साहस उसमें नहीं है। इसलिये मंजरी के स्नेह-सिक्त निष्कपट कटाक्ष की प्रतिच्छाया अपने अंतर में लिए हुए वह जब रास्ते में चला जा रहा था तो विष और अमृत के मिश्रण का एक अनोखा रासायनिक प्रभाव उसके मन को मथित कर रहा था। अँधेरा होने तक वह इधर-उधर निरुद्देश्य भाव से चक्कर काटता रहा। पर अँधेरा होते ही नंदिनी की गली की सड़ायँध ऐसी प्रबलता से उसे अपनी ओर खींचने लगी कि बहुत छटपटाने पर भी वह रह नहीं सका। उस सड़ायँध के भीतर की जिस 'रस-विह्वलता' का स्वाद वह एक बार पा चुका था उसे अनेक रंगों और अनेक ढंगों से फिर-फिर चखते रहने की गलित पिपासा उसके भीतर की प्रेतात्मा को बार-बार उकसा रही थी। वह सोच रहा था—"उस नरक-लोक में निवास करनेवाली डाकिनी न जाने किस अतल अंध-गह्वर के भीतर घसीटने के उद्देश्य से मुझे प्रलोभन के दलदल में फँसाये बैठी है! निश्चय ही वह कुछ मंत्र-तंत्र जानती है, और भूत-प्रेतों को वश में करके उसने कोई सिद्धि भी प्राप्त कर ली है। उसी सिद्धि का यह फल है कि उसने मेरे भीतर किसी प्रेत-छाया का प्रवेश करा दिया है। और वह प्रेत-छाया निरंतर मुझे उस डाकिनी से प्रेम ने के लिये उकसाती रही है। इतने दिनों तक मैं उसके निकट र भी उससे कतराता रहा, इसका कारण शायद यही था ंतरात्मा उसकी डाकिनी-विद्या का आभास पा चुकी थी। र उसकी मंत्र-कला सफल हो चुकी है। कल से उसकी मेरी प्रेतात्मा को पूर्ण रूप से जकड़ लिया है। अब ोई उपाय नहीं है। पर मुझे धर दबाने के लिये `, भय, लज्जा और प्रेम के कैसे अदृश्य

साथ ही उसके अंतस्तल के किसी एक गहनतम कोने से यह अस्पष्ट आवाज़ उसके कानों में आ रही थी—"तुम अपने-आपको ठग रहे हो! नंदिनी का उद्देश्य तुम्हें पाप-प्रवृत्ति की ओर खींचने का हर्गिज़ नहीं रहा है। तुम्हारा साहचर्य उसे अवश्य अपनी उस अवस्था में वांछनीय रहा है, पर उसने यह कभी नहीं चाहा है कि तुम्हें पाप के दलदल में घसीटकर स्वयं उससे बचकर तमाशा देखे। उलटे तुम उसकी आँखों में पट्टी बाँधकर पाताल-पुरी की अँधेरी सीढ़ियों से होकर, नीचे—और नीचे—एक ऐसी कराल कालकोठरी में ढकेलना चाहते हो जहाँ ज़हरीले साँप और बिच्छू सब समय कुलबुलाते रहते हैं। उस कालकोठरी में उसे छोड़कर बाहर से ताला लगाकर तुम उसके बाहर निकलने का रास्ता सदा के लिये बंद कर देना चाहते हो। इसलिये जन्म-जन्म के पापी! सावधान!"

अतल की उस अस्पष्ट आवाज़ का गला पूरी ताक़त से घोटने की चेष्टा करता हुआ वह नंदिनी के मकान की ओर क़दम बढ़ाता हुआ चला गया।

*　　*　　*　　*

तब से वह नंदिनी के यहाँ नियमित रूप से जाने-आने लगा, और उन दोनों का 'प्रेत और छाया' का-सा संबंध गाढ़ से गाढ़तर होता चला गया। मंजरी का यह हाल था कि वह पारसनाथ के बाहरी चक्रों से एकदम अनभिज्ञ थी, पर उस अनभिज्ञता के कारण वह अपने मन में किसी प्रकार की बेचैनी उत्पन्न नहीं होने देती थी, और न वह अपने भीतर कौतूहल की स्वाभाविक प्रवृत्ति को ही इतना तूल देती थी कि उससे उसकी मानसिक स्थिरता और शांति नष्ट हो जाय। कभी एक दिन के लिए भी उसने पारसनाथ के आगे यह इच्छा प्रकट नहीं कि वह भी उसके साथ टहलने के इरादे से बाहर निकलना चाहती है,

और उस तंग और गंदे मकान के दम घोटनेवाले वातावरण से कुछ समय के लिये मुक्ति पाना चाहती है। चूँकि पारसनाथ ने कभी अपने आप यह प्रस्ताव नहीं किया, इसलिये वह समझ गई थी कि उसके प्रस्ताव करने पर पारसनाथ पेशोपेश में पड़ जायगा। यही कारण था कि उसने इस तरह की कोई बात ही कभी नहीं उठानी चाही। और तारीफ़ की बात यह है कि उस नरक-निर्वासन से कुछ समय के लिये भी बाहर न निकल सकने के कारण उसे कभी किसी प्रकार की बेचैनी का अनुभव नहीं हुआ। चौबीसों घंटे नरक-लोक के उस जेलखाने के भीतर रहने पर भी कभी एक क्षण के लिये भी उसका जी नहीं उकताता था। अपने मन की इस परम आश्चर्यजनक धीरता और स्थिरता से वह कभी-कभी स्वयं चकित रह जाती थी। युनिवर्सिटी की जिस पढ़ाई को उसे प्रारंभिक अवस्था में ही अधूरा छोड़ देना पड़ा था, उसे केवल ज्ञानवर्द्धन के उद्देश्य से पूरा करने का सुवर्ण अवसर जैसे उसके तत्कालीन जेल-जीवन ने दे दिया था। पारसनाथ के प्रति उसके मन में किसी प्रकार का आक्रोश न उठने का एक कारण यह भी था। पर इसका प्रधान कारण यह था—जैसा कि पहले निर्देशित किया जा चुका है—कि पारसनाथ के आर्थिक कष्ट, सामाजिक स्थिति की अस्वाभाविकता और अस्वाभाविक मानसिक पीड़न के कारण उसके प्रति एक निःसीम करुणा के भाव ने मंजरी के मन के ओर-छोर को प्लावित कर दिया था। करुणा के उस उदार और निर्बाध प्लावन में किसी प्रकार के आक्रोश और अटक का रहना संभव नहीं था। जीवन की जिस विवशता के कारण उसे होटल का जीवन बिताने को बाध्य होना पड़ा था, वह कैसी भयंकर विवशता है, इसका अनुभव उसे अच्छी तरह हो चुका था। इसलिये पारसनाथ ने अपने जिस आर्थिक संकट के कारण अभी कुछ समय तक विवाह को स्थगित रखने का प्रस्ताव ससंकोच किया था उसकी विकटता मञ्जरी की आँखों के आगे बड़ा

विकराल वेष धारण करके आई थी। जब वह अपने होटल के जीवन के दिनों की बात सोचती थी, तो उस कल्पना-मात्र से उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। वह अब सोच नहीं पाती थी कि किस निपट आर्थिक अभाव की ताड़ना और किस प्रचंड नैतिक साहस की प्रेरणा के फल-स्वरूप वह होटल में जाने का दम भर पाई थी। इसमें संदेह नहीं कि होटल का जीवन बिताने पर भी वह अपने स्त्री-धर्म की रक्षा पूर्णरूप से करने में समर्थ हुई थी। फिर भी कितनी विकट लोमहर्षक हीनता को उसे मन मारकर और जी मसोस कर स्वीकार करना पड़ा था! उसे कभी-कभी ऐसा लगता था जैसे उसका वह चरम लौकिक हीनतामय जीवन वास्तविक नहीं, बल्कि पूर्व जीवन की किसी एक विस्मृत काल-रात्रि का दुःस्वप्न मात्र था। पर उस दुःस्वप्न से जिस व्यक्ति ने उसे जगाया था वह अपनी ज्वलंत वास्तविकता से उसकी स्मृति में, मन में और प्राणों में सदा के लिये समा गया है। उस व्यक्ति ने उसकी सांसारिक परिस्थिति की चरम हीनता पर परम सम्मान का रंग चढ़ा दिया था। उसे वह कैसे भुला सकती है! उसके प्रति किसी भी ज्ञात या अज्ञात कारण से कैसे आक्रोश प्रकट कर सकती है!

इसके अलावा, जैसा कि कहा जा चुका है, एक रहस्यमयी अंतःप्रेरणा उसे निरंतर इस बात का विश्वास दिलाती रहती थी कि अटल धैर्य और निश्चल शांति के द्वारा वह उस घोर नरक में एक दिन निश्चय ही स्वर्ग की स्थापना करने में समर्थ हो सकेगी। बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के उसके अंतःकरण को इस बात का पूरा भरोसा था कि उन दोनों के तत्कालीन अस्वाभाविक जीवन का घोर काला पर्दा एक दिन निश्चय ही हटेगा, और उस पर्दे के हटते ही नवीन प्रकाशमय जीवन नया रंग और नया ढंग, नयी आशा और नयी उमंग अपने साथ लेकर अपने आप उनके आगे प्रकट होकर रहेगा। उस नये आदर्शमय, रँगीले जीवन की कोई निश्चित रूपरेखा उसके सामने नहीं थी; पर वह आवेगा

ज़रूर, इस बात का ध्रुव विश्वास—न जाने क्यों—उसके मन में समाया हुआ था।

इधर पारसनाथ का यह हाल था कि नंदिनो से उसका संबंध ज्यों-ज्यों गहरा होता जाता था, त्यों-त्यों उसकी आत्म-प्रताड़ना बढ़ती चली जाती थी। उसका फल यह होता था कि मंजरी के साथ किये जाने वाले अप्रकट अन्याय का क्षतिपूरण करने के लिये उसकी आत्मा छटपटाने लगती। पर मुश्किल यह थी कि मञ्जरी के निकट संसर्ग से उसके भीतर एक अजीब-सी विरस बेचैनी के कांटे खड़े हो उठते, जिससे मुक्ति पाना उसके सामर्थ्य के बाहर की बात हो गई थी। उसके मन का यह हाल हो गया था कि वह अब एक बार भो पूरी दृष्टि से मञ्जरी की ओर नहीं देख पाता था। जब कभी उससे बोलने के लिये बाध्य होना पड़ता, तो आधी दृष्टि से, संकुचित भाव से, चोरों की तरह उसकी ओर देखकर बातें करता। ऐसे अवसर पर उसकी सारी आत्मा सिमट-कर, सूक्ष्म रूप धारण करके उसके अन्तर्जगत के निबिड़ अन्धकार के भीतर अपने को जैसे छिपा लेती थी। पर इस कारण से उसकी आत्म-प्रताड़ना घटने के बजाय और अधिक बढ़ती जाती थी, और वह इस बात की भरसक चेष्टा करता कि कृत्रिम स्वाभाविकता और बनावटी प्रसन्नता का मुखड़ा पहनकर मञ्जरी के साथ हँसे-बोले। किन्तु इस चेष्टा से उसकी अस्वाभाविकता विकटतर रूप धारण कर लेती, और उसके मुख का भाव अत्यंत दयनीय हो उठता था। फल यह होता था कि मञ्जरी की करुणा उसके प्रति और अधिक तीव्र वेग से उमड़ आती और वह अतिशय स्नेह-सरस शब्दों से उसके जले-कटे हृदय पर मरहम लगाने का प्रयास करती।

धीरे-धीरे, मन के निष्ठुर पीड़न के बाद, पारसनाथ अपनी स्थिति की अस्वाभाविकता का आदी हो गया, और ग्लानि तथा आत्म-ताड़न के भावों को घोकर पी जाने में समर्थ हो गया। पहले वह सुबह खाना

खाते ही मञ्जरी के संसर्ग से दूर रहने के उद्देश्य से बाहर निकल जाता था। और दिनभर ग़ायब रहकर रात में बड़ी देर से घर वापस आता था। पर अब वह दोपहर के समय घर ही पर रहने लगा, और तरह-तरह के चित्र अंकित करने के काम में चित्त लगाकर व्यस्त रहने लगा। मञ्जरी उसी के पास बाँस की एक कुर्सी पर बैठकर पुस्तक-पाठ में रत रहती, और प्राणि-जगत् के विचित्र-विचित्र जीवों के जीवन की गतिविधि में पूर्ण रूप से दिलचस्पी लेती हुई, सृष्टि-जगत् की रहस्यपूर्ण व्यापकता के अनुभव से मुग्ध होकर एक निराली ही अनुभूति से विस्मित होती। बीच-बीच में वह सिर उठाकर पारसनाथ की ओर देखती, और इस बात पर गौर करके पुलकित होती कि वह किस तल्लीनता से, अपने सधे हुए हाथ से, जादू की-सी रेखाओं द्वारा रूप-जगत् की एक अभिनव कलामयी रचना में सफल हो रहा है। ऐसे अवसर पर यदि कभी किसी कारण से पारसनाथ की तल्लीनता कुछ क्षण के लिये भंग हो जाती, और वह भी सिर उठाकर उसकी ओर देखता, तो दोनों की चार आँखें होने पर मञ्जरी एक स्निग्ध, सरस मौन मुसकान से उसकी इस दृष्टि का स्वागत करती। पारसनाथ भी कभी-कभी उस मुसकान के प्रत्युत्तर में बरबस मुसकरा देता, और चुपचाप अपने काम में जुट जाता। शाम होते ही वह या तो नंदिनी के यहाँ चला जाता, या अपने व्यवसाय से संबंधित किसी मंडली के साथ पान-भोजन में शरीक होता। बोतल के मादक-रस के प्रति उसकी तृष्णा बीच में कुछ समय के लिये दब गई थी। पर इधर कुछ दिनों से फिर उभड़ उठी थी। जब वह रात में शराब पीकर आता था, तो मञ्जरी से उसकी गंध छिपी न रहती। पर उसने कभी एक बार भी उस संबंध में अपना विरोध प्रकट नहीं किया था। वह जानती थी कि पारसनाथ उस चीज़ की अच्छाई-बुराई से भली भाँति परिचित है, इसलिये उसका विरोध निरर्थक है—जब तक वह स्वयं अपनी इच्छा से उस

चीज़ को नहीं छोड़ता, तब तक किसी के विरोध या उपदेश से कोई लाभ होने के बजाय हानि ही हो सकती है। इसके अलावा एक बात और थी। जिस दिन वह पीकर आता था उस दिन मञ्जरी के प्रति उसका व्यवहार बहुत ही हार्दिक रहता था। अपने तत्कालीन जीवन की एकरसता में मञ्जरी उस हार्दिकता का स्वागत करने का लोभ नहीं सँभाल पाती थी।

इस तरह दोनों का जीवन बिना किसी विशेष घटना-चक्र की सजीवता के किसी तरह बीता जा रहा था। एक दिन जब पारसनाथ दोपहर के समय खाना खाने के बाद लेटने की तैयारी कर रहा था। तो मञ्जरी अपने मुख पर स्वाभाविक स्नेह-मधुर मुसकान झलकाती हुई उसके पास खटिया पर आकर बैठ गई, और उसके सिर के घुँघराले बालों पर अपनी कोमल-कोमल उँगलियाँ फेरती हुई बोली—"एक दिन तुमने कहा था कि तुम हाथ देखकर भविष्यवाणी करना जानते हो। मेरा हाथ देखकर बताओ कि लल्ला होगा या लल्ली?"

पारसनाथ चौंककर, हड़बड़ाता हुआ उठ बैठा। अत्यंत आशंकित और भीत भाव जताता हुआ बोला—"क्या कहा! किसके होगा लल्ला?"

उसके मुख के भाव में आकस्मिक परिवर्तन देखकर मञ्जरी कुछ क्षण तक स्तब्ध रह गई। पर शीघ्र ही उसने अपने को सँभाल लिया और सहज भाव से उसने कहा—"मेरे। क्यों तुम इस तरह चौंके क्यों?"

पारसनाथ के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगी थीं। उसने पहले की ही तरह घबराहट के स्वर में कहा—"नहीं नहीं, योंही। पर तुम कह क्या रही हो? तुम्हें कैसे मालूम—मेरे कहने का मतलब यह है कि तुम्हें कहीं धोखा तो नहीं हुआ है?"

"हो सकता है। तुम चाहो तो किसी डाक्टरनी या दाई को दिखा सकते हो। इधर दो-चार दिन से मेरी तबीअत भी ठीक नहीं रहती। मिचली उठती है, उबकाई आती है और कै.........."

"पर—पर—" इसके आगे पारसनाथ कुछ कह न सका और भ्रांत और भीत दृष्टि से एकटक मंजरी की ओर देखता रह गया।

मंजरी के कुछ समझ में नहीं आता था कि बात क्या है। उसने यह आशा की थी कि जिस तरह का एकरसतामय, निरानन्द जीवन पारसनाथ बिता रहा है, उस सुन्दर समाचार से उसमें एक नयी स्फूर्ति और सजीवता आ जायगी। पर उसे सुनकर पारसनाथ का रुख ही एकदम बदल गया था, और भय की एक विकृत और वीभत्स छाया ने उसके मुख पर एक गाढ़ी कालिमा पोत दी थी। उसने अत्यंत चिंतित होकर कहा—"तुम्हें हो क्या गया है? अचानक इस कदर घबरा उठे हो जैसे—" वह कहना चाहती थी—"जैसे तुम्हारे सिर पर गाज गिरना चाहती हो।" पर अपने मन की इस बात के लिये अपने को धिक्कार कर वह जीभ काटकर बीच ही में चुप रह गई।

पारसनाथ ने उसी भ्रांत भाव से कहा—"नहीं, नहीं, कुछ नहीं, ठीक है। मैं अवश्य एक डाक्टरनी को बुलाकर दिखाऊँगा। तो तुम्हारी तबीअत भी खराब है! बात क्या हो गई? ठीक है, मैं आज ही—अभी—जाकर डाक्टरनी को बुलाता हूँ। कुछ चिंता न करो।"

यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ, और निकलने के उद्देश्य से कपड़े पहनने लगा। कपड़े पहनते हुए उसके हाथ काँप रहे थे। यहाँ तक कि कोट के बटन भी वह ठीक से नहीं लगा पाया था। बाहर निकलकर वह कुछ दूर तक अन्यमनस्क भाव से चलता रहा। ज्यों ही उसने गंदी गलियों के भूलभुलैया चक्कर से बाहर निकलकर बड़े रास्ते

पर रखा त्योंही एक एक्का लोहे के टायरों को झनझनाता हुआ बड़ी तेज़ी से उसके पाँवों के एकदम पास से होकर निकल गया। उसने पारसनाथ की अन्यमनस्कता भंग कर दी। वह फुटपाथ से होकर चलने लगा, और चलते-चलते सोचने लगा—"यह सब क्या होने जा रहा है! मैं जब एक बंधन से मुक्त होने की कोशिश करता हूँ तो तत्काल दूसरा बंधन कहाँ से आ जाता है! और दूसरे बंधन को तोड़कर भागने की चेष्टा करते ही उसी दम तीसरा उससे भी कठिन और कठोर बंधन गले का फंदा बनने को क्यों तैयार हो जाता है! 'लल्ला होगा या लल्ली!' कैसा निष्ठुर परिहास है! अज्ञात में अपने प्रति और दूसरे के प्रति किया गया कैसा क्रूर व्यंग है! जारज की अविवाहिता स्त्री से उत्पन्न संतान! अस्वाभाविक—अस्वाभाविकतर—अस्वाभाविकतम! पर उपाय क्या है! हर हालत में कोई-न-कोई उपाय अवश्य ढूँढ़ निकालना होगा। ऐसी असंभव परिस्थिति में किसी भी सूरत में मैं अपने को बाँध नहीं सकता। सब दया माया, स्नेह-प्रेम मनुष्यता और नैतिकता को ताक पर रखकर जितनी जल्दी हो सके, मंजरी को भाग्य के भरोसे छोड़कर सटक-सीताराम होने में ही कल्याण है। पर उसका वह अटल धैर्य, मेरे प्रति अविचल आत्मविश्वास और अटूट स्नेह-बंधन! अपने आनेवाले मातृत्व की सूचना देते हुए उसके मुख पर जो एक सहज विश्वास और सहृदय प्रेम का भाव वर्तमान था उसकी संपूर्ण उपेक्षा करने का साहस क्या वास्तव में मुझमें है! उफ़! बड़ी भयंकर समस्या है! कैसे उसका समाधान होगा, कैसे! जारजों की इस वंशपरंपरागत वृद्धि का क्रम क्या इसी तरह आगे को चलता ही रहेगा! नहीं, ऐसा हो नहीं सकता! मूल में ही इसका उच्छेद करना होगा। पर कैसे!"

कुछ दूर आगे चलकर एक दरवाजे पर उसकी दृष्टि गई, और उसे याद आया कि उसने मंजरी से डाक्टरनी को बुलाने का वादा

किया है। "पर डाक्टरनी को बुलाने से क्या मेरी समस्या हल हो जायगी ?"—उसने फिर सोचा—"हाँ, हो सकती है—इस तरह से कि डाक्टरनी को रिश्वत देकर उससे यह प्रार्थना की जाय कि वह मञ्जरी का गर्भ गिराने की दवा दे। पर इसके लिये एक खासी बड़ी रक़म की आवश्यकता है, जिसका प्रबन्ध मैं नहीं कर सकता। और फिर गर्भ गिरने पर जो मार्मिक मानसिक कष्ट (शारीरिक कष्ट के अलावा) मञ्जरी को होगा, उसे अपनी आँखों के सामने देख सकने का बल मैं कहाँ पाऊँ ! पर आँखें खोलकर देखने की आवश्यकता ही क्या है ! आँखें एकदम बन्द कर लेने से काम चल जायगा। पर—पर—"

तरह-तरह की ऊटपटाँग, बेसिरपैर की कल्पनाएँ उसके मन में क्षण-क्षण में उदित होकर क्षण-क्षण में विलीन हो जा रही थीं। वह निरुपाय होकर अपने मन और मस्तिष्क को अत्यन्त निष्ठुरता से ऐंठता और मरोड़ता जाता था—इस आशा से कि उपचार का एक बूँद रस भी उनसे टपक पड़े तो काम चल जाय। पर बूँद का एक कण भी उनसे नहीं निकल पाता था। वह अपने मन के सिर को धुनता हुआ, अपने अज्ञात में किसी डाक्टरनी की खोज में चलता रहा। मातृत्व-संबंधी विषयों की विशेषज्ञ एक डाक्टरनी का पता उसे मालूम था। उसके न चाहने पर भी अनजान में उसके पैर उसी ओर बढ़ रहे थे। जब वह ठीक स्थान पर पहुँच गया, तो उसके पैर अपने-आप रुक गए। भीतर जाकर, उसे बुलाकर अपने साथ ले जाना चाहिये या नहीं, इस बात को लेकर उसके भीतर भीषण द्वन्द्व चलने लगा। बहुत संकल्प-विकल्प के बाद अन्त में न बुलाने का निश्चय किया। मन के इस निश्चय से यद्यपि उसे तनिक भी सन्तोष नहीं हुआ, बल्कि भयङ्कर क्षोभ हुआ, फिर भी उस निश्चय पर वह अटल रहा। कुछ देर तक वह अनिश्चित पगों से इधर-उधर भटकता रहा।

अंत में उसने नंदिनी के मकान की ओर क़दम बढ़ाए—जैसे, उसके वर्तमान चरम संकट की समस्या उसी के यहाँ हल हो सकने की संभावना हो। वह यह बात भली भाँति जानता था कि वह जीवन में कभी किसी रूप में न मंजरी का उल्लेख नंदिनी के आगे कर सकता है, न नंदिनी की चर्चा मंजरी के आगे चला सकता है। फिर भी उसके अंतःकरण की कोई अंधवाणी उसके कानों में चुपके से कह रही थी कि नंदिनी का आश्रय ग्रहण किये बिना उसके वर्तमान जीवन की अनंत उलझनों का सुलझाव नहीं है।

❀ ❀ ❀ ❀

उस दिन रात को ग्यारह बजे के बाद जब वह लौटकर अपने मकान में आया, तो मञ्जरी के मन में उसने इस बात का विश्वास जमा दिया कि बहुत भटने के बाद भी उसे किसी अच्छी डाक्टरनी का पता नहीं लगा। साथ ही उसने यह भी कहा कि कल वह अवश्य किसी-न-किसी डाक्टरनी को अवश्य पकड़ लावेगा। और वास्तव में वह दूसरे दिन एक डाक्टरनी को ले आया—अपने मन की 'कमजोरी' को अधिक दबाने में वह समर्थ न हो सका। डाक्टरी ने आकर पूरी परीक्षा के बाद बताया कि तीन महीने का गर्भ रह चुका है, और गर्भ संपूर्ण सुरक्षित और स्वस्थ अवस्था में है। मञ्जरी के लिये एक दवा लिखकर फ़ीस लेकर वह विदा हुई। पारसनाथ मन-ही-मन विष घोलकर, उसे स्वयं पीकर रह गया। बाजार जाकर वह उसी दम दवा ले आया। मञ्जरी के स्वास्थ्य के प्रति सच्ची चिंता प्रकट करके, और उसे यह हिदायत देकर कि उस दवा को नियमित रूप से पीते रहने में किसी तरह की आनाकानी न करे, वह बाहर चला गया।

मञ्जरी प्रत्येक दवा का नाम और गुण जानने के लिये विशेष उत्सुक रहा करती थी। इसका कारण यह था कि कालेज में रसायन

शास्त्र उसका प्रिय विषय था। इसलिये डाक्टरनी ने जो नुस्खा लिखा था उसे पढ़कर उसने मालूम कर लिया था कि उसमें किस-किस मूल दवा को मिलाने का आदेश दिया गया है। उसमें से प्रत्येक के रूप, रंग और गुण की विशेषता का परिचय वह कालेज की पुस्तकों और प्रयोगशाला में प्राप्त कर चुकी थी। उसके रसायन-ज्ञान के अनुभव के हिसाब से डाक्टरनी द्वारा 'प्रेस्क्राइब' की गई दवा का रंग होना चाहिये था लाल। पर जो दवा पारसनाथ लाया था उसका रंग था सादा। मंजरी वह भी जानती थी कि दवाखाने से दवा की जो शीशी दी जाती है उसके बाहर एक लेबिल चिपका रहता है, जिसमें दूकान का नाम, दवा की मात्रा आदि लिखा रहता है। पर पारसनाथ जिस हरे रंग की शीशी में दवा लाया था उसके बाहर कोई लेबिल लगा हुआ नहीं था। एक तो रंग में अंतर तिस पर लेबिल नहीं इसलिये मंजरी के मन में यथेष्ट संदेह हुआ। पर वह संदेह पारसनाथ पर न होकर दवाफ़रोश पर हुआ। उसके मन में यह विश्वास जम गया कि दवा बेचनेवाले ने पारसनाथ के स्वभाव के भोलेपन का लाभ उठाकर कोई सस्ती चीज़, जिसमें सादे पानी का अंश काफ़ी है उसके हाथ मँहगे दामों पर बेच डाली है। इस कारण उसने उस दवा को न पीकर ज्यों-का-त्यों रहने दिया।

रात को जब पारसनाथ, प्रतिदिन की तरह, ग्यारह बजे बाद लौट कर घर आया, तो मंजरी ने उसके लिये रखा भोजन—पराठा और तरकारी—चूल्हे में एक बार फिर से गरम करके पास लाकर रख दिया। पारसनाथ ने कहा—"मैं आज एक जगह दावत में खाना खाकर आया हूँ।" महीने में प्रायः पन्द्रह दिन उसका रात का खाना इसी तरह रखा रह जाता था, जिसका उपयोग मंजरी, इच्छा न रहते हुए भी, दूसरे दिन सुबह या तो स्वयं खाकर करती थी, या चौका-बर्तन करनेवाली पासिन को देकर। आर्थिक अभाव में,

भोजन की बरबादी के खयाल से उसे कष्ट तो होता ही था, पर सबसे अधिक कष्ट उसे इस बात से होता था कि उसके इतने चाव से बनाये भोजन को पारसनाथ सूँघना तक नहीं चाहता। पर वह इस बात के लिये ज़िद नहीं करती थी कि वह थोड़ा-सा चख ले, क्योंकि दो-एक बार ऐसा करके वह देख चुकी थी कि उसका फल कुछ नहीं होता। इसलिये अपनी वेदना को भीतर ही भीतर पीकर वह चुपचाप खाना उठाकर किसी सुरक्षित स्थान में दूसरे दिन के लिये रख देती थी।

पारसनाथ ने कहा—"खाना उठाकर अलग रख दो, और यह बताओ कि तुमने दवा एक-आध मौताद पी है या नहीं है ?" यह प्रश्न करते हुए उसके मुख पर चिंता की गहरी छाया घिरी हुई थी। मंजरी ने सोचा कि यदि पारसनाथ को मालूम हो जाय कि उसने दवा नहीं पी है तो उसे बड़ी पीड़ा पहुँचेगी। इसलिये उसके मन में एक बार यह इच्छा हुई कि वह झूठ बोले, पर दूसरे ही क्षण उसने सच बात कह दी। वह बोली—"मुझे संदेह है कि दवाफ़रोश ने तुम्हें ठग लिया है। एक तो शीशी में लेबिल चिपका हुआ नहीं है, तिस पर उसका रंग सादा है, जो कि लाल होना चाहिये था। इसलिये मैंने उसे नहीं पिया।"

मंजरी की यह बात सुनकर पारसनाथ का चेहरा एकदम फक रह गया। यह बात उसकी कल्पना के बिलकुल परे थी कि दवाओं के रंग और रूप के संबंध में मंजरी का ज्ञान और पर्यवेक्षण इतना प्रखर है। इस बात से उसे जो आश्चर्य हुआ वह तो हुआ ही, तिसपर उसका अपराधी मन इस प्रकार अप्रत्याशित रूप से बाधा पाने पर अत्यंत भीत और चिंतित हो उठा। उसके भीतर आत्म-ताड़ना की प्रवृत्ति फिर एक बार प्रबल रूप से जग उठी, और वह अपनी पाप-वृत्ति से अत्यंत भीत

हो उठा। मञ्जरी की मृत माता की जो विकराल प्रेतात्मिका छाया इधर कुछ दिनों से—जब से नंदिनी से उसका घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ, तबसे—अपना कोप शांत किये हुए थी, वह आज फिर पारसनाथ को अपने और मंजरी के बीच खड़ी दिखाई दी। उसकी मुखाकृति से वही पहले की-सी दिल दहलानेवाली बीभत्सता, विकट व्यंग और निष्ठुर परिहास व्यक्त हो रहा था। पारसनाथ कुछ क्षणों तक शून्य दृष्टि से उस भयावनी छाया की ओर देखता रह गया। वह जानता था कि यह सब उसका भ्रम है, 'हेल्युसिनेशन' है, और उसके अन्तस्तल में जमी हुई पाप-प्रवृत्ति और भय की भावना की काल्पनिक प्रतिच्छाया के सिवा वह और कुछ नहीं है। पर यह सब जानते हुए भी वह जैसे कुछ भी नहीं समझ पाता था, और भय की वह काल्पनिक छाया जीवित और प्रत्यक्ष सत्य की तरह उसकी आत्मा को बुरी तरह जकड़ने पर तुली हुई थी। मञ्जरी भी उसकी वह भयाकुल दृष्टि देखकर स्तब्ध खड़ी थी। पर पारसनाथ ने शीघ्र ही, सिर के एक प्रबल झटके से अपनी उस भूत-भावना को झाड़ा, और पूर्ण रूप से सजग होकर बोला—"तुमने जो दवा नहीं पी वह अच्छा किया। मुझे भी उस संबंध में काफ़ी संदेह होने लगा है। कल मैं उस दवा को बदलकर डाक्टरनी से उसकी परीक्षा कराके लाऊँगा। तुम अब आराम करो। दिन के काम से बहुत थकी होगी।"

अपने अनजान ही में वह अंतिम बात कह गया था। उसे स्वयं पता नहीं था कि दिनभर मंजरी ने क्या काम किया है। पर हर हालत में उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने की इच्छा उसके मन में अचानक प्रबल रूप से जाग पड़ी थी। केवल मौखिक सहानुभूति प्रकट करके ही उसके अपराधी मन को चैन नहीं मिल रहा था। मंजरी के एकदम निकट जाकर बायाँ हाथ उसके गले पर डालकर दाहिने हाथ से उसने उसकी ठुड्डी पकड़ी। उसके बाद बड़े ही स्निग्ध स्वर में बोला—"तुम

बहुत भली और भोली हो!" ऐसा कहते हुए उसका हृदय भय और ग्लानि-मिश्रित एक विचित्र भावना से बैठा जा रहा था। मंजरी आज बहुत दिनों बाद पारसनाथ के अंगस्पर्श का सच्चा सुख पाकर पुलकित हो रही थी।

बात असल में यह हुई थी कि डाक्टरनी ने जो दवा लिखी थी उसे न खरीदकर पारसनाथ एक दूसरे डाक्टर की सलाह से गर्भ गिराने की दवा खरीद लाया था और उस दवा को एक दूसरी—बिना लेबिल-वाली—शीशी में भरकर मंजरी को दे गया था। पर शाम से ही उसके मन में अपनी उस काली करतूत के संबंध में बड़ी बेचैनी होने लगी थी। उसकी आत्म-ताड़ना ने ऐसा विकट रूप धारण कर लिया था कि एक पल के लिये भी उसे शांति नहीं मिल रही थी। रात को जब वह घर वापस आया तो उसके मन की विचित्र दशा हो रही थी। एक ओर तो वह यह सोच रहा था कि मंजरी ने यदि दवा पीनी शुरू कर दी हो तो अच्छा ही है। दूसरी ओर इस भय से वह व्याकुल भी हो रहा था कि कहीं वह सचमुच उसे पीने न लगी हो! उस द्वन्द्व का निबटारा तब हुआ जब मंजरी ने दवा के संबंध में अपना संदेह प्रकट किया। दूसरे ही दिन पारसनाथ वह दवा ले आया जिसे डाक्टरनी ने 'प्रेस्क्राइब' किया था।

उस दिन से पारसनाथ ने अपने भीतर के भयंकर संघर्ष-विघर्ष और कठोर आत्म-पीड़न के बाद अपने उस नये 'संकट' की स्थिति के प्रति अपने को बहुत-कुछ अभ्यस्त कर लिया। मन मारकर, चरम विवशता से दबकर, 'परिस्थितियों के कूट-चक्र' से हार मानकर उसने यह निश्चय कर लिया कि कम-से-कम मंजरी का गर्भपात कराने की चेष्टा वह अबसे नहीं करेगा।

महीने पर महीना बीतता चला गया और पारसनाथ का अंतर्द्वन्द्व

भी विचित्र से विचित्रतर रूप धारण करता गया। प्रतिदिन, प्रतिपल वह इसी चिंता से परेशान रहता था कि किस अलौकिक उपाय से मञ्जरी के गर्भ का बच्चा गर्भ में ही विलीन हो जाय, और वह एक दिन आश्चर्य के साथ उसे यह सूचित करे कि उसके पेट में तो बच्चा है ही नहीं—वह तो केवल एक भ्रम था! पर मञ्जरी के जो शारीरिक लक्षण दिन पर दिन स्पष्ट से स्पष्टतर रूप धारण करते जाते थे उन्हें देखकर किसी अलौकिक आश्चर्य की भ्रांत कल्पना के लिये कहीं कोई गुंजाइश नहीं रह जाती थी। वह मन-ही-मन रोता, चिल्लाता, बड़बड़ाता और जी मसोस कर रह जाता; पर बाहर, मञ्जरी के आगे, अपनी उस आत्म-विनाशी खीझ का कोई स्पष्ट चिह्न भरसक प्रकट नहीं होने देता था।

उनतीसवाँ परिच्छेद

भुजौरियाजी की अनुपस्थिति में पारसनाथ जिस प्रकार का घनिष्ठ संबंध जोड़ चुका था, भुजौरियाजी के लौटने के बाद भी उसका सिलसिला जारी रहा। पारसनाथ ने इस बात पर ग़ौर किया कि इस बार भुजौरियाजी जब से बाहर से वापस आए, तो उसके प्रति उनके व्यवहार में स्पष्ट ही एक ऐसी रुखाई आ गई थी जिसके संबंध में किसी को गलतफ़हमी नहीं हो सकती थी। निश्चय ही उनके मन में संदेह का कीड़ा घुस गया था। पर वह कीड़ा किस हद तक छेद कर चुका था, इसका ठीक-ठीक अनुमान लगाने में पारसनाथ असमर्थ रहा। साथ ही उसका ध्यान इस बात पर भी गया कि भुजौरियाजी के संदेह से परिचित होने पर भी नंदिनी तनिक भी विचलित नहीं हुई है, बल्कि उसकी ढिठाई और साहस दिन पर दिन और अधिक बढ़ते चले जाते थे। पारसनाथ भरसक ऐसे मौके पर नंदिनी के यहाँ पहुँचने की चेष्टा करता

था, जब भुजोरिया के घर पर रहने की संभावना बहुत कम होती। पर कुछ दिनों से वह देख रहा था कि नौकरानी आजकल काम न रहने पर भी समय-असमय उन दोनों के इर्द-गिर्द मँडराया करती है। इस बात से वह बेचैनी का अनुभव करता था। नंदिनी अत्यंत आक्रोश-भरी टेढ़ी दृष्टि से बीच-बीच में नौकरानी की ओर देखती थी, पर मुँह से कुछ न कहकर पारसनाथ के साथ बड़ी ढिठाई के साथ बातें करना शुरू कर देती थी—जिसका एकमात्र उद्देश्य पारसनाथ की कल्पना में यह आता था कि वह नौकरानी को खूब चिढ़ाना चाहती है। पर एक तुच्छ नौकरानी को चिढ़ाने का उद्देश्य क्या हो सकता है? इस प्रश्न पर वह जितना ही विचार करता उतना ही हैरान होता।

एक दिन नंदिनी ने पारसनाथ से प्रस्ताव किया कि शाम को टहलने के लिये बाहर निकला जाय। भुजोरियाजी दोपहर से ही किसी राजा साहब के यहाँ गये हुए थे, और रात में काफी देर तक उनके वापस आने की कोई उम्मीद नहीं थी। पारसनाथ पहले तो भीरुतावश आनाकानी करने लगा, पर बाद में उसने नंदिनी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। शाम को प्रायः छः बजे दोनों बाहर निकले। नंदिनी ने रास्ते में प्रस्ताव किया कि किसी होटल में खाना खाया जाय, क्योंकि भुजोरियाजी राजा साहब के यहाँ खाना खाकर आवेंगे, और वह आज घर लौटकर खाना बनाने के पचड़े में नहीं पड़ना चाहती। एक ताँगा तय करके किसी एक विशेष होटल का नाम-धाम ताँगेवाले को बताकर दोनों चल पड़े। पारसनाथ जानबूझकर उस होटल में नंदिनी को नहीं ले गया जिसमें मधुरी से पहले-पहल उसकी मुलाकात हुई थी।

होटल में पहुँचकर दोनों एक सुरक्षित और गुप्त कमरे में जाकर बैठ गए। नंदिनी को होटल के अपरिचित वातावरण के बीच में वह गुप्त और एकांत कमरा बहुत सुखद और आरामदायक लग रहा था।

A.V. VIJAY RAJ.

पारसनाथ से पूछकर उसने दोनों की रुचि के अनुकूल भोजन का आर्डर दे दिया। पारसनाथ की इच्छा थी कि बोतल भी आवे, पर किसी कारण से नंदिनी के आगे इस प्रकार का प्रस्ताव करने का साहस उसे नहीं हुआ। जब होटल का छोकरा आर्डर की पाबंदी करने चला गया, तो उसने धीरे से कहा—"जानते हो, आजकल मेरी महरी हम दोनों को समय-असमय क्यों घेरे रहती है?"

पारसनाथ अत्यंत उत्सुक भाव से बोला—"नहीं, तो! मैं तो किसी भी कारण का अनुमान नहीं लगा पाया।"

"आजकल जासूसी विभाग में उसकी नियुक्ति हुई है!"—एक रहस्यपूर्ण और व्यंग-भरी सरस मुसकान आँखों में झलकाते हुए नंदिनी ने कहा।

पारसनाथ के मुख पर अकृत्रिम चिंता और घबराहट के चिह्न व्यक्त हो उठे। उसने पूछा—"क्या सरकारी खुफिया विभाग की तरफ़ से उसे तनख्वाह मिलती है?"

नंदिनी मुक्त वेग से खिलखिला उठी। बोली—"तुम भी कभी-कभी बच्चों की-सी बातें करते हो। खुफिया विभाग की तरफ़ से नहीं बल्कि 'होम डिपार्टमेंट' से उसे तनख्वाह मिलती है।" यह कहकर वह एक अनोखी नाज़-भरी अदा से पारसनाथ की ओर घूरने लगी। क्षणभर के लिये पारसनाथ की भ्रांति बनी रही। पर दूसरे ही क्षण नंदिनी की बात का स्पष्ट और सीधा अर्थ उसकी समझ में आ गया। फिर भी उसका कौतूहल अभी बाक़ी था। वह अत्यंत गंभीर भाव से, प्रश्न-भरी दृष्टि से नंदिनी की ओर देखने लगा।

इस समय तक नंदिनी के मुख पर व्यंग और परिहास का जो मिश्रित भाव झलक रहा था, उसके साथ धीरे-धीरे एक घृणा का-सा भाव घुलमिल गया। और कुछ ही समय बाद वह घृणा उसके ओठों

के इर्द-गिर्द स्पष्ट परिस्फुट हो उठी। उसने कहा—"तुमसे आज तक इस संबंध में मैंने कुछ कहा नहीं—मेरी नौकरानी से तुम्हारे भुजौरियाजी का वर्षों से घनिष्ठ प्रेम-सम्बन्ध रहा है। तुम्हारे भुजौरियाजी बड़े रसिक जीव हैं! दोनों की जोड़ी राम ने ऐसी मिलाई है कि क्या कहने हैं! दोनों के रूप-रंग में जैसी समानता है वैसे ही दोनों की आत्माएँ भी एक दूसरे से अच्छा मेल खाती हैं। भुजौरियाजी को खुश करने के लिये वह चोरी, डकैती, खून—सब-कुछ कर सकती है! और भुजौरियाजी सब कर्म उससे करवाने में कोई बात उठा भी नहीं रखते। इनसे विवाह होने के पहले की कुछ खास-खास चिट्ठियों को मैंने एक बक्स के भीतर बड़ी हिफ़ाज़त से छिपाकर रख छोड़ा था। एक दिन इसी नौकरानी ने मेरी ग़ैर-हाज़िरी में एक 'मास्टर-की' से बक्स खोलकर वे सब चिट्ठियाँ निकाल लीं, और उन्हें चुपचाप भुजौरियाजी के हवाले कर दिया। उन चिट्ठियों में कोई आपत्तिजनक बात नहीं थी, फिर भी उनकी स्मृति मुझे किसी कारण से प्रिय थी। मुझे दूसरे ही दिन नौकरानी की इस करतूत का पता लग गया, पर अपनी स्थिति की विवशता के कारण मैं चुप हो रही।"

यह कहकर नंदिनी अनमनी-सी हो गई, और किसी गहन चिंता में मग्न जान पड़ी। कुछ समय बाद उसने फिर कहना शुरू किया—"विश्वास करने की बात नहीं है, पर इसी नौकरानी ने एक बार मुझे विष खिलाकर मार डालने का षड्यंत्र रचा था। एक दिन मुझे हलवा खाने की इच्छा हुई। मैंने उसे तरकीब बताकर हलवा बनाने के लिये कहा, और स्वयं बाहर एक तसवीर खींचने के काम पर व्यस्त रही। प्रायः घंटे भर बाद वह एक तश्तरी में गरम गरम हलवा ले आई। ज्योंही एक चम्मच से थोड़ा-सा हलवा उठाकर मैंने मुँह में डाला, त्योंही एक अनोखे कड़वे स्वाद से मेरा मुँह ख़राब हो गया। मैंने जितना मुँह में डाला था उसका आधा कै कर दिया, और आधा

पेट ही में रह गया। मैंने तश्तरी को उठाकर ज़मीन पर पटक दिया। उस समय मुझे कुछ मालूम नहीं हुआ कि मैंने जो चीज़ चखी है उसमें विष मिला हुआ था। पर प्रायः बीस मिनट बाद मेरी तबीअत बहुत ख़राब हो गई, सिर भिन्नाने लगा, चक्कर आने लगा, और पेट में दर्द होने लगा। कै करने की इच्छा होती थी, पर कर नहीं पाती थी। जब तुम्हारे भुजौरियाजी आए, तो मैंने उनसे सारा क़िस्सा कह सुनाया और एक डाक्टर को बुला लाने के लिये कहा। पर उन्होंने डाक्टर न बुलाकर अपने बक्स में से एक होमियोपैथिक दवा निकालकर मुझे दी। उस दवा से कुछ समय बाद मुझे दो-तीन उल्टियाँ हुईं। उल्टियों से मेरा जी कुछ हल्का हुआ। और मैं सो गई। दूसरे दिन सुबह जब मेरी नींद खुली तो बदन में और दिमाग़ में मैं बहुत कमज़ोरी मालूम कर रही थी। कुछ भी हो, किसी तरह उस चक्कर से मैं बच गई। उस समय मेरे मन में इस संबंध में तनिक भी संदेह नहीं हुआ कि मुझे जानबूझकर विष खिलाने की चेष्टा की गई है। पर बाद में जब उसकी और भी बहुत सी हरकतों पर मैंने ध्यान दिया तो सारी बात मेरे सामने एक नये ही रूप में आई। यह संदेह मैं अवश्य नहीं करती कि भुजौरियाजी की प्रेरणा से उसने मुझे ज़हर खिलाया होगा—तुम्हारे भुजौरियाजी मेरे साथ चाहे कैसी ही नीचता से पेश क्यों न आवें, पर मुझे जान से मार डालने की बात वह नहीं सोच सकते। इसके कारण हैं। पर नौकरानी चूँकि मुझे अपनी प्रतिद्वन्द्विनी समझकर मुझसे जलती रही है; इसलिये......जो भी हो, मैंने जब बाद में यह प्रस्ताव किया कि उस नौकरानी को बरख़ास्त कर देना चाहिये, तो तुम्हारे भुजौरियाजी इस बात पर क़तई राज़ी नहीं हुए और लगे उसका गुणगान करने! दोनों के रंग-ढंग और हाव-भाव से मुझे पहले से ही यह संदेह होने लगा था कि दोनों का आपस में गहरा संबंध है। धीरे-धीरे वह संदेह बढ़ता चला गया और अंत में एक घटना ऐसी घटी जिसने उस संदेह

पर सचाई की मुहर ठोक दी। फिर भी मैंने इस संबंध में महाशयजी से कुछ नहीं कहा—केवल एक हल्का-सा व्यंग कसकर रह गई।"

पारसनाथ को याद आया कि नौकरानी का जो रेखा-चित्र नंदिनी ने अंकित किया था उसमें उसका कैसा वीभत्स और लोमहर्षक स्वरूप परिस्फुट हो उठा था। इसीलिये उसने तब कहा था—"आप अपनी नौकरानी से बहुत घृणा करती होंगी।" वह मन-ही-मन सोचने लगा कि भुजौरियाजी के प्रति उसका नारी-हृदय जो भीषण रूप से विद्रोही हो उठा है वह अत्यंत स्वाभाविक है, पर वह स्वाभाविकता क्या धीरे-धीरे अस्वाभाविक रूप धारण नहीं कर रही है ?

छोकरा खाना लेकर आया। दोनों खाने लगे। नंदिनी को, पता नहीं क्यों, होटल का सारा वातावरण अत्यंत सुखद और प्रिय लग रहा था; और उसी अनुभूति का यह जादू था कि होटल का खाना भी उसे बहुत ही अधिक पसंद आया। वह तरह-तरह की चीज़ों का आर्डर देती रही, और दोनों ने खूब छककर खाना खाया। होटल में आज वह अपने जीवन में शायद दूसरी बार आई थी। इसके पहले—विवाह के पूर्व—एक दिन उसने एक तीसरे व्यक्ति के साथ होटल में खाना खाया था। पर तब होटल की दुनिया उसे इस क़दर प्रिय नहीं मालूम हुई थी।

कुछ भी हो, उस दिन से वह अक्सर शाम को उसी होटल में पारसनाथ के साथ भोजन करने के लिये आने लगी। प्रारंभ में भुजौरियाजी को इस बात का ठीक-ठीक पता ही नहीं चला कि दोनों कहाँ जाते हैं। यह तो उन्हें मालूम हो गया था कि नंदिनी संध्या के समय पारसनाथ के साथ चली जाती है। स्वयं नंदिनी ने उन्हें पहले ही दिन इस बात की सूचना दे दी थी, और उसके बाद भी वह जब-जब पारसनाथ के साथ गई तब-तब उन्हें बता दिया। केवल यह

बात कभी ठीक से नहीं बताई कि वे दोनों कहाँ जाते हैं और क्यों जाते हैं। केवल 'टहलने जाते हैं' इस बात से भुजौरिया को तसल्ली नहीं होती थी। पर अपने असंतोष को वह भीतर ही भीतर पीकर रह जाते थे। धीरे-धीरे नंदिनी को पारसनाथ के साथ 'टहलने' की ऐसी आदत पड़ गई कि वह भुजौरियाजी के सामने भी बेतकल्लुफ़ उससे बाहर चलने का प्रस्ताव कर बैठती। और मज़ा यह कि ऐसे अवसर पर भुजौरियाजी से वह कभी भूल कर भी न पूछती कि "तुम भी चलोगे या नहीं ?"

पर भुजौरियाजी भी एक ही काइयाँ थे। उन्होंने अपने जासूसी ज्ञान द्वारा इस बात का पता लगा लिया कि दोनों अक्सर किस होटल में जाया करते हैं और किस उद्देश्य से। एक दिन जब दोनों चले गए, तो प्रायः एक घंटे बाद भुजौरियाजी भी सीधे होटल में जा पहुँचे। और पूछताछ करने के बाद ठीक उसी कमरे के पास जा खड़े हुए जहाँ नंदिनी और पारसनाथ भोजनादि के बाद पर्दे की ओट में एक दूसरे के निकट बैठे हुए प्रेमालाप में मशग़ूल थे। एक मिनट तक भुजौरियाजी आड़ में छिपकर खड़े रहे और कान लगाकर दोनों की बातें सुनते रहे। उसके बाद अचानक पर्दा उठाकर दोनों को स्तंभित और चकित करके भीतर जा घुसे। पारसनाथ का एक हाथ नंदिनी के कंधे पर रखा हुआ था। भुजौरियाजी को देखते ही वह सँभलकर बैठ गया। भुजौरियाजी ने केवल आँख ही से वह दृश्य नहीं देखा, बल्कि वह कानों से भी अपने संबंध में एक ऐसी बात सुन चुके थे जो आज तक उनकी कल्पना के अतीत थी। नंदिनी उनसे घृणा करती है यह बात उनकी जानकारी में अवश्य थी, पर वह घृणा इस क़दर विकट है और ऐसे भयंकर विद्रोह का रूप धारण कर सकती है, यह उन्होंने कभी नहीं सोचा था; इसलिये भीतर ही भीतर बेतरह तिलमिला उठे थे। पर बाहर से उस भावना का लेश भी उन्होंने व्यक्त

नहीं होने दिया। अत्यंत सहज भाव से मुस्कराते हुए पारसनाथ की ओर देखकर बोले—"अभी मुझे अचानक बड़ी भूख मालूम हुई है, पता नहीं क्यों। इधर एक महाशय से काम था। जब होटल के पास पहुँचा तब मैंने कुछ खाकर चलने का इरादा कर लिया। आप लोग खा चुके क्या ?"

पारसनाथ दाँत निपोड़कर बोला—"जी हाँ।"

"कोई मुज़ायका नहीं। ब्वॉय !"

वही छोकरा हाज़िर हुआ जो नंदिनी और पारसनाथ को खाना खिला चुका था। "सुनो ! दो टोस्ट, एक आमलेट और चाय लाओ—एक आदमी के लिये ! जाओ, फ़ुर्ती से लाओ !"

जब छोकड़ा चला गया, तो भुजौरियाजी ने पारसनाथ से कहा—"ग़लती हुई, मैंने एक ही आदमी के लिये चाय मँगाई है। आप लोग भी शायद पीना चाहेंगे ? या पी चुके ?"

नंदिनी की ओर वह जैसे देखकर भी नहीं देखना चाहते थे। नंदिनी खूब अच्छी तरह जानती थी कि उनके उस न देखने का कारण अवज्ञा नहीं बल्कि कायरता है। वह अत्यन्त तीखी और टेढ़ी दृष्टि से उनकी ओर देख रही थी। ऐसा जान पड़ता था जैसे उसके अंतर की सारी घृणा एकत्रित होकर उसकी आँखों में समाकर उस व्यक्ति के विरुद्ध विस्फुटित होना चाहती हो।

पारसनाथ ने फिर एक बार दाँत निपोड़े और बोला—"धन्यवाद, हम लोग पी चुके।"

छोकरा टोस्ट, आमलेट और चाय ले आया। भुजौरियाजी बड़ी बेशर्मी के साथ खाने लगे। पारसनाथ और नंदिनी उस घोर अशोभन परिस्थिति में मन मारकर चुप बैठे रहे। पर भुजौरियाजी आज अत्यंत

अस्वाभाविक उमंग और उल्लास के साथ अनर्गल बातें करने के 'मूड' में थे, ऐसा जान पड़ा। पारसनाथ को लक्ष्य करके वह टोस्ट का एक टुकड़ा मुँह में डालते हुए कहने लगे—"हमारे यहाँ के प्राचीन अनुभवी लोग जीवन को चौपड़ के खेल के रूप में देख गए हैं। यहाँ हरएक व्यक्ति सब समय अपने-अपने दाँव की प्रतीक्षा में बैठा रहता है। किसी का दाँव समय पर आ जाता है और वह बाज़ी मार जाता है, किसी का अंत तक आता ही नहीं; किसी का दाँव पौ पर अड़कर रह जाता है। मेरा दाँव जीवन में पौ पर अड़ा हुआ है, और मालूम होता है अड़ा ही रह जायगा। पर आपका दाँव आ गया है—ऐसा जान पड़ता है। आप बधाई के पात्र हैं। एक सुन्दर चित्रकार के जीवन की सफलता वास्तव में इसी रूप में होनी भी चाहिये। आज मैंने एक यूरोपियन चित्रकार का बनाया हुआ एक बहुत सुन्दर चित्र देखा है। उसका नाम है—'दी सैटिर एण्ड दी निम्फ।' बहुत ही कलात्मक और भावनापूर्ण चित्र है। खाना खाने के बाद हम लोग सब साथ ही चलेंगे। आपको मेरे यहाँ से होते हुए जाना होगा। मैं आपको वह चित्र दिखाने के लिये बहुत ही उत्सुक हूँ.....।" बहुत देर तक वह इसी तरह की उलटी-सीधी बातें करते रहे। नंदिनी चाहती थी कि पारसनाथ का हाथ पकड़कर चुपचाप उठकर चल दे। उसने एक बार कुहने से टहोका देकर पारसनाथ को चलने का संकेत भी किया। पर पारसनाथ की गति साँप-छछूँदर की-सी हो रही थी। भुजौरियाजी की अवज्ञा करने का साहस उसे नहीं होता था।

भुजौरियाजी जब खा-पीकर अपना बिल चुकाकर उठे तो उन्होंने पारसनाथ का हाथ पकड़ लिया और बोले—"चलिए, आपको चित्र दिखाना चाहता हूँ।" पारसनाथ काठ के पुतले तरह उठ खड़ा हुआ और भीगी बिल्ली की तरह भुजौरियाजी के साथ चलने लगा। नंदिनी उन दोनों के पीछे-पीछे चलने लगी।

बाहर आकर भुजौरियाजी ने एक ताँगा तय किया। स्थिति की अशोभनता का ख़याल करके पारसनाथ पहले ही ताँगेवाले के साथ आगे जाकर बैठ गया। भुजौरियाजी जैसे विवश होकर पीछे नंदिनी के साथ बैठे। नंदिनी ने दक्षिण की ओर मुँह कर लिया और भुजौरियाजी ने उत्तर की ओर। रास्ते भर वह पारसनाथ से 'दी सैटिर एण्ड दी निम्फ' की तारीफ़ करते रहे। नंदिनी एकदम ख़ामोश रही और पारसनाथ भी प्रायः चुप ही रहा।

जब ताँगा भुजौरियाजी के मकान की गली के पास पहुँचा तो उन्होंने ताँगेवाले को पैसा देकर विदा किया। विदा करते ही उन्होंने पारसनाथ का हाथ पकड़ लिया। पारसनाथ को अपने प्रति उनका वह अस्वाभाविक प्रेम अत्यंत आश्चर्यजनक मालूम हो रहा था। भुजौरिया-जी ने इस फुर्ती से उसका हाथ पकड़ा था कि ऐसा जान पड़ता था जैसे व: यह आशंका कर रहे हों कि कहीं वह भाग न पड़े।

दरवाज़े पर पहुँचकर भुजौरियाजी ने नौकरानी को आवाज़ लगाई। आज यह नयी बात थी। नौकरानी कभी उस मकान में अकेली नहीं रहती थी। उसने आकर दरवाज़ा खोला। भुजौरियाजी पारसनाथ का हाथ पकड़कर उसे ऊपर ले गए। नंदिनी भी पीछे से आकर कमरे में पहुँच गई। कमरे में बत्ती पहले से ही जली हुई थी। जब तीनों भीतर पहुँच गए, तो भुजौरियाजी ने भीतर से दरवाज़ा बंद करके सहसा अपने अचकननुमाँ कोट की भीतरी जेब से एक न-बहुत-बड़ा-न-बहुत-छोटा छुरा निकाला; और छुरा निकालने के साथ उन्होंने शायद आज पहली बार अपना 'सो' 'टिज' वाला गहरे काले रंग का क्रुक्स लेन्सयुक्त चश्मा उतारा। चश्मा उतारते ही उनकी आँखों का एक दूसरा ही रूप पारसनाथ के सामने आया, जो उसे एकदम बीभत्स और ख़ूँख्वार लगा। इतनी जल्दी कोई आदमी मुखड़ा बदल सकता है, यह बात

इसके पहले उसने कभी नहीं सोची थी। और वह छुरा! वह तो उसकी कल्पना के एकदम परे था! वह ठीक से कुछ न समझने पर भी एक आसन्न संकट की आशंका से घबरा उठा। उसने उसी क्षण नंदिनी की ओर देखा। पर उसके मुख पर घबराहट का लेश भी नहीं था। एक स्थिर और अविचल दृढ़ता के भाव से उसका सारा मुख-मंडल व्याप्त था। पर उसकी आँखों में और ओठों के आसपास दारुण घृणा की रूखी छाया घिरी हुई थी। वह एकटक—बिना किसी द्विविधा, झिझक और संकोच—के भुजौरियाजी की ओर उसी मार्मिक घृणा-भरी दृष्टि से देख रही थी। भुजौरियाजी ने छुरा बाहर निकालते ही एक झलक नंदिनी की ओर देखा, और फिर पारसनाथ की ओर देखकर गीदड़ की तरह कुटिल भाव में "हुआ! हुआ!" करते हुए बोले—"देखते हो इसे! इस छुरे से आज या तो मैं अपना काम तमाम करूँगा, या तुम्हारा, या—या इस बद-बदचलन और बे-वेहया स्त्री का, जो मेरा घर बर-बरबाद करने के लिये उधार खाए बैठी है!"

पारसनाथ काठ के उल्लू की तरह भुजौरियाजी की ओर ताकता रह गया। इस आकस्मिक 'कांड' के लिये वह कतई तैयार नहीं था। वह घबराया हुआ उतना नहीं था जितना कि उस सारी घटना की आकस्मिकता से विमूढ़ हो रहा था। इस बात से भी उसे कम विस्मय नहीं हो रहा था कि होटल में 'महानुभावता' प्रदर्शित करने के बाद अभी जो रौद्र रूप उन्होंने धारण किया था उसके झीने पर्दे के भीतर से उनका अत्यंत दयनीय और क्लिष्ट-करुण रूप स्पष्ट झलक रहा था। उनके उस दयनीय भाव ने पारसनाथ के मन में बहुत-कुछ ढाढ़स बँधा दिया था। और मजा यह था कि उनकी वह दयनीयता बाहर की भीषणता के भीतर से झाँकती हुई, बीच-बीच में अत्यंत परिहासास्पद-सी लगने लगती थी।

भुजौरियाजी कहते चले गए—"और तुम इतने बड़े कृतघ्न निकले

कि जो भलाइयाँ मैंने तुम्हारे साथ कीं, तुम्हारी बेकारी की हालत में तुम्हारी जो सहायता की, उसका बदला इस तरह चुका रहे हो ! तुम क्या यह समझते हो कि इस चं—चंचल स्त्री को बहकाकर, फुसलाकर अपने वश में कर सकोगे, जब कि मैं हर तरह उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करते हुए हार गया ! यह स्त्री नहीं, यक्षिणी है !"

"और तुम पुरुष नहीं, नपुंसक हो। इस बात की गवाह हूँ मैं, गवाह है तुम्हारी नौकरानी, जो तुम्हारे पुरुषत्व के लिये नहीं (वह अच्छी तरह जानती है कि तुममें कितनी मर्दानगी है), बल्कि तुम्हारे पैसे के लिये तुम्हें चाहती है। नौकरानी से घृणित संबंध रखने पर भी मेरी नातजर्बेकारी का फायदा उठाकर, मुझे बहकाकर, मेरे साथ विवाह करते हुए तुम चुल्लू-भर पानी में डूब न मरे !" यह कहते हुए नंदिनी की दोनों आँखों से आग की ज्वालाएँ बरस रही थीं। ज्वाला-मुखी का वह आकस्मिक विस्फोट देखकर पारसनाथ भ्रांत और मूढ़ भाव से, स्तब्ध दृष्टि से उसकी ओर देखता रह गया।

भुजौरियाजी ने छुरे की नोक को अपने कोट के बटन पर स्थापित करते हुए कहा—"क्या—क्या कहा ! नौकरानी से मेरा प्रेम-संबंध ! तुम-तुम झू-झूठ कहती हो। स-सरासर झूठ।"

भुजौरियाजी का हकलाना भी आज पारसनाथ को एक नयी बात लग रही थी, इसके पहले उसने उन्हें इस तरह हकलाते कभी नहीं सुना। विशेष कर नंदिनी से बोलते समय वह हकला रहे थे।

नंदिनी ने उसी फुत्कार-भरे स्वर में कहा—"झूठे हो तुम! केवल झूठे ही नहीं, तुम घोर नीच, धोखेबाज और मनुष्यघाती हो। मुझसे विवाह करने का तुम्हारा एकमात्र उद्देश्य मेरी माँ के दिये हुए रुपयों को हड़पने का रहा है। अपनी इस अर्थपिशाची मनोवृत्ति के कारण ही तुमने अपनी पहली स्त्री की हत्या की है, यह बात मुहल्ले के

सब लोग जानते हैं। यह जानकर भी कि तुम्हारी नौकरानी ने मुझे विष खिलाकर मार डालना चाहा, तुमने मेरे कहने पर भी उसे नहीं निकाला, इतने बड़े हत्यारे हो तुम!"

भुजौरियाजी पहली बार नंदिनी की खरी-खरी बातें सुनकर इस क़दर घबरा उठे कि अपने अनजान में छुरे को अपने कोट के भीतर छिपाने की चेष्टा करते हुए केवल "क्या—क्या—क्या! मैं—मैं—मैं!" कहकर रह गए। और उसके बाद छुरे को सहसा ज़मीन पर पटककर दोनों हाथों से अपना सिर पीटकर एक सद्य-विधवा युवती किसान-स्त्री की तरह धाड़ें मार-मारकर रोने लगे। पारसनाथ को न अपनी आँखों पर विश्वास होता था न कानों पर। वह वज्र-स्तंभित-सा होकर बेवक़ूफ़ों की तरह एक बार भुजौरियाजी की ओर देखता था, एक बार नंदिनी की ओर। नंदिनी के मुख के कठोर और निर्मम भाव में रंचमात्र भी परिवर्तन न देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। और वह आश्चर्य पराकाष्ठा को तब पहुँचा जब भुजौरियाजी की उस चरम दयनीय अवस्था से तनिक भी विचलित न होकर नंदिनी बोली—"अब अपने नपुंसकत्व का चरम परिचय देने के लिये रोते क्यों हो! पकड़ो छुरा और भोंको अपनी छाती पर, या बाहर नाली के पानी में जाकर डूब मरो! यही तुम्हारे कुटिल और क्लीब-जीवन का प्रायश्चित है!"

पर भुजौरियाजी धड़ाम से (किंतु ढब से) नीचे गिरकर, दीवार के सहारे पीठ अड़ाकर, चारों हाथ-पाँव पसारकर और अधिक ऊँची आवाज़ से गुहार मारकर रोने लगे। नंदिनी ने चरम घृणा से एक बार उनकी ओर ज़ोर से थूका, और फिर चिटख़नी खोलकर बाहर निकल गई। पारसनाथ भी मौक़ा देखकर चुपचाप वहाँ से चंपत हो गया। दरवाज़े से बाहर निकलते ही वह भागना ही चाहता था कि पीछे से नंदिनी की आवाज़ सुनाई दी—"ज़रा सुनना भाई

पारसनाथ ठिठककर खड़ा रह गया। नंदिनी उसके एकदम निकट जाकर धीरे से बोली—"कल शाम फिर उसी होटल में मिलना !"

"कल नहीं, दो-चार दिन बाद मिलूँगा—होटल में नहीं, यहीं, इसी मकान में।"

"अच्छा, तब अवश्य मिलना—परसों शाम।"

"अच्छी बात है !" कहकर पारसनाथ चला गया।

तीसवाँ परिच्छेद

पारसनाथ ने सोचा था कि उस असाधारण, अप्रत्याशित और अशोभन घटना के बाद नंदिनी के यहाँ जाना उसके लिये असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो जावेगा। पर उसने देखा कि मंजरी के संसर्ग में रहने से उसके गर्भ में स्थित जो भ्रूण अपने अज्ञात प्रभाव से प्रति-दिन प्रतिपल उसके दिमाग़ की नसों में एक विषैला 'इंजेक्शन' देकर उसे पागल करने की क़सम खाए बैठा है, उसके अदृश्य शिकंजे से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है ; बल्कि दिन-पर-दिन, गर्भ की वृद्धि के साथ, वह प्रभाव विकट से विकटतर रूप धारण करता चला जा रहा है। उस विषकीट के घातक प्रभाव से यदि उसे मुक्ति मिल सकती है तो केवल नंदिनी का आँचल पकड़ने पर। नंदिनी का आँचल पकड़ने पर या तो उसका पूर्ण उद्धार हो जावेगा, या निकट भविष्य में आनेवाले संकट के कराल, काल-गह्वर में वह एकदम ग़र्क़ ही हो जावेगा—और ये दोनों स्थितियाँ उसकी वर्तमान त्रिशंकु की-सी अवस्था से बेहतर ही सिद्ध होंगी। मंजरी के संसर्ग से—बल्कि मञ्जरी के गर्भस्थित भ्रूण के अपनी ष्य से—वह बेतरह कतराने लगा, और हज़ार

कोशिशों के बाद भी अपने मन की पलायन-प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ रहा। फल यह हुआ कि भुजौरियाजी के गर्जन, क्रंदन और सिर-फोड़नवाली घटना से आतंकित होने पर भी, दूसरा कोई चारा न देखकर वह तीसरे ही दिन फिर नंदिनी के यहाँ चला गया। मकान के पासवाली गली में भुजौरियाजी से उसका आमना-सामना हो गया। भुजौरियाजी ने एक वक्र-दृष्टि से उसकी ओर देखा और फिर बड़ी तेजी से निकल गए। पारसनाथ उस दृष्टि से क्षण भर के लिये सहम गया। पर तत्काल मन-ही-मन खूब हँसा, और निस्संकोच भाव से मकान के भीतर प्रवेश करके ऊपर नंदिनी के पास जा पहुँचा।

इस प्रकार भुजौरियाजी के छुरे के बावजूद पारसनाथ और नंदिनी का प्रेम-मिलन जारी रहा।

इधर मंजरी का प्रसवकाल ज्यों-ज्यों निकट आता जाता था त्यों-त्यों उसके हृदय की सुकुमारता और मस्तिष्क की अनुभूतिशीलता बढ़ती चली जाती थी। पहले उसमें कमी आने लगी थी। जो अकेलापन पहले उसे नहीं खलता था वह अब बीच-बीच में पीड़ा पहुँचाने लगा था। पारसनाथ से इस संबंध में उसने दो-एक बार संकेत भी किया था, पर उसके उस संकेत से पारसनाथ के मन में घबराहट बढ़ने के सिवा और कोई लाभ नहीं हुआ। वह उससे कतराता ही रहा—हालाँकि बीच-बीच में स्नेह और सहृदयता का अच्छा खासा स्वांग रचकर वह मञ्जरी का जी भरमाने की चेष्टा करता रहता था। मञ्जरी को उसके व्यवहार के संबंध में अब कुछ संदेह-सा होने लगा। फिर भी उस संदेह पर विजय पाने की चेष्टा में उसने कोई बात उठा नहीं रखी।

एक दिन जब पारसनाथ किसी एक पत्र-संपादक की इच्छा के अनुसार एक 'कार्टून' बनाने में संलग्न था, तो मञ्जरी उसी के पास

नीचे एक चटाई पर बैठी हुई कपड़ा सीने के काम पर जुटी हुई थी। पारसनाथ ने बीच में एक क्षण के लिये काम से उकता कर उसकी ओर देखा, और पूछा—"यह कपड़ा किसके लिये तैयार कर रही हो?"

मंजरी ने सहज भाव से मुस्कराते हुए तिरछी निगाह से, स्निग्ध भाव से उसकी ओर देखते हुए धीरे से कहा—"बच्चे के लिये।"

अपने मन के जिस घाव को पारसनाथ न चाहने पर भी दिन में कई बार स्वयं कुचल देता था, उसे मञ्जरी ने भी अनजाने में बुरी तरह से कुचल दिया! मन-ही-मन कराहता हुआ, और जानकर भी अन-जान सा बनता हुआ, अत्यंत विरसता के साथ पारसनाथ बोला—"बच्चा? किसका बच्चा?"

"तुम्हारा, और किसका!" फिर वह तिरछी चितवन और भोली पर बाँकी अदा!

"ओह! समझा! पर उसके लिये अभी से कपड़े सीने की कौन-सी आवश्यकता आ पड़ी?" न चाहने पर भी पारसनाथ के स्वर में कठोरता आ गई थी।

पर मञ्जरी उस कठोरता से विशेष विचलित नहीं हुई। बोली—"वाह, अभी से कपड़े नहीं सिलेंगे तो फिर कब सिलेंगे? अब एक महीने से भी कम समय रह गया है।"

"ओह! यह बात है!" कहकर पारसनाथ अपने काम पर जुटने का भाव जताने लगा, पर अब किसी तरह उसका मन नहीं लग पाता था। कुछ देर तक काग़ज़ और पेंसिल से खेलता रहा। उसके बाद सहसा उठकर, कपड़े पहनकर बाहर जाने की तैयारी करने लगा।

मंजरी ने कहा—"आज ज़ल्दी आ जाना। रात में अकेले जी घबराता है।"

"हाँ, हाँ।" कहकर पारसनाथ चला गया। रात में वह जल्दी न आ सका। रोज़ की तरह उस रात भी वह काफ़ी देर से घर पहुँचा।

जो पासिन चौका बर्तन करती थी वह पास ही, बग़लवाले कच्चे मकान में रहती थी। उसका नाम परबतिया था। उम्र उसकी तीस वर्ष से कुछ कम होगी। उसके दो-तीन बच्चे थे। इधर कुछ दिनों से मंजरी ने प्रायः प्रतिदिन दोनों की फ़ुर्सत के समय उसे अपने पास बिठाकर उससे सुख-दुःख की बातें करने का क्रम बना लिया था। प्रायः सभी बातें प्रसव ही से संबंध रखती थीं उस विषय को लेकर वह तरह तरह के प्रश्न करती थी जो कभी-कभी परबतिया को लड़कपन से भरे मालूम होते थे। वह स्नेहपूर्वक मुस्कराती हुई, उसके प्रत्येक साधारण से साधारण प्रश्न का उत्तर विस्तारपूर्वक देती थी। प्रसव के पहले किन-किन विषयों के संबंध में परहेज से चलना चाहिये, प्रसव के बाद किन-किन बातों के संबंध में सावधान रहना चाहिये, बच्चे को स्वस्थ और सुन्दर रखने के क्या-क्या उपाय हैं, आदि-आदि बहुत-सी बातें वह परबतिया से पूछा करती थी। परबतिया के निकट साहचर्य में आने से उसे ऐसा लगा कि उसके अकेले जीवन की उससे बढ़कर साथिन उसे दूसरी कोई नहीं मिल सकती थी। उसने सुन रखा था कि पासी लोग ज़रायम-पेशा होते हैं। पर परबतिया को देखकर उस जाति के प्रति उसके मन में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

जब प्रसवकाल एकदम निकट आ गया, तो मंजरी को दो-एक बार यह भ्रम हुआ कि उसे वास्तविक प्रसव-पीड़ा होने जा रही है। पर चूँकि पारसनाथ दिन भर ग़ायब रहने लगा था, इसलिये उस पीड़ा की अवस्था में ही परबतिया के घर जाकर उसे अपने यहाँ बुला लाने के सिवा मंजरी के लिये और कोई चारा नहीं था। परबतिया आकर अपने मातृत्व के अनुभव के अनुसार उसकी सेवा टहल कर जाती।

पारसनाथ को जब मालूम हुआ कि मंजरी को दो एक बार दर्द उठ चुका है तो एक दिन झंझट टालने के उद्देश्य से एक दाई बुला लाया। दाई ने देखकर कहा—"हाँ, 'डेलीवरी' जल्दी ही हो जायगी।" दाई को विदा करके पारसनाथ स्वयं भी तत्काल उस दिन के लिये विदा हुआ।

जिस दिन रात में वास्तविक प्रसव-पीड़ा उठी उस दिन पारसनाथ रात-भर घर से बाहर रहा। भुजौरियाजी को फिर किसी अत्यंत आवश्यक आर्थिक कार्य से बाहर जाना पड़ा था। इसलिए वह सारी रात पारसनाथ ने नंदिनी के सङ्ग में बिताई। ठीक आधी रात के समय मंजरी को भयंकर रूप से दर्द मालूम होने लगा। शाम को जब पासिन आई थी तो उसे थोड़ा-बहुत दर्द मालूम हो रहा था। पर उसे उसने इस कारण महत्व नहीं दिया था कि उस तरह का दर्द पहले भी कई बार उठ चुका था। किन्तु आधी रात के समय जब वह मकान में निपट अकेली पड़ी हुई थी, तो उस पीड़ा ने बड़ा विकट रूप धारण कर लिया। मंजरी निश्चित रूप से समझ गई कि इस बार का दर्द विफल नहीं जावेगा। साथ ही इस बात की आवश्यकता उसने महसूस की कि यदि 'ट्रेण्ड नर्स' नहीं, तो कोई अनुभवी स्त्री उस समय उसके पास हर हालत में होनी चाहिये, नहीं तो उसके अपने प्राणों का संकट तो है ही, बच्चे की भी जान बचने का पूरा अँदेशा है। यह सोचकर वह उस असह्य पीड़ा की हालत में ही गिरती-पड़ती उस अँधेरी रात में पासिन के घर गई, और उसे जगाकर अपने घर ले गई।

प्रायः आधे घंटे की प्राणांतक पीड़ा के बाद जब परबतिया ने बताया कि बेटा हुआ है, तो मंजरी ने एक लंबी साँस ली।

दूसरे दिन तड़के जब पारसनाथ आया, तो परबतिया ने किवाड़ खोला। परबतिया उसे देखकर मंद मधुर मुस्कराई, पर मञ्जरी की

हिदायत के अनुसार बोली कुछ नहीं। ऊपर जाकर पारसनाथ ने देखा, एक खिलौना-नुमा बच्चा मञ्जरी की बग़ल में लेटा हुआ, 'चिहाँ-चिहाँ' शब्द करता हुआ रो रहा है। मञ्जरी बच्चे के रोने का शब्द सुनकर नींद से चौंकती हुई जग पड़ी। सामने उसने पारसनाथ को खड़ा देखा। एक पलक उसकी ओर देखकर उसने आँखें फेर लीं, और चुपचाप बच्चे को दूध पिलाने लगी। ये सब रंग-ढङ्ग देखकर पारसनाथ भय, लज्जा, ग्लानि और आशंका से चकित, संकुचित और आतंकित होकर काफ़ी देर तक निःशब्द खड़ा रहा। इतने दिनों तक वह जिस अनिवार्य घटना से कतराकर शुतुरमुर्ग की तरह मुँह छिपाकर इस भरोसे बैठा हुआ था कि वह शायद आने-आप किसी अज्ञात दैवी कारण से टल जावेगी, अंत में आज वह प्रत्यक्ष रूप से सामने आकर ही रही! उसने सोचा कि वह रात में उस अप्रिय घटना के अवसर पर घर नहीं रहा, यह एक तरह से अच्छा ही हुआ; वर्ना उसकी दुर्गति हो गई होती। एक तो मञ्जरी की पीड़ा उससे न देखी जाती और कराहने का शब्द न सुना जाता (इसलिये नहीं कि मंजरी के प्रति वह स्नेहशील है, बल्कि इसलिये कि इस प्रकार के दृश्य और शब्द से मन की शांति भंग होती है), दूसरे उसे रात में दाई के पास इसलिये दौड़ना पड़ता कि वह एक जारज के नाजायज़ संतान की उत्पत्ति में सहायक बने। वह इस घोर कष्टकर और परम ग्लानिमूलक कर्तव्य के पालन से कम-से-कम एक रात के लिये मुक्ति पा गया। पर एक रात के लिये मुक्ति पाने से क्या हुआ! वह इस वज्र-बंधन से हमेशा के लिये तो इस तरह छुट्टी नहीं पा सकता।

इसी प्रकार की चिंता में वह कुछ देर तक आत्म-विस्मृत सा रहा। उसके बाद साहस बटोरकर अपराधी की तरह संकुचित स्वर में बोला—"मुझे इस बात की बड़ी भारी ग्लानि है मंजरी, कि मैं कल तुम्हारे जीवन के अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवसर पर अनुपस्थित रहा। मैं अगर

आज दूसरी बार तुमसे यह कहूँ कि कल रात घर न लौट सकने की विवशता में मेरा हाथ नहीं था, तो तुम निश्चय ही अविश्वास करोगी, और समझोगी कि मैं बन रहा हूँ। इसलिये इस संबंध में चुप रहूँगा। मैं सहज भाव से स्वीकार किये लेता हूँ कि मुझसे बड़ा भयंकर अपराध हुआ है। पर साथ ही मैं तुमसे यह भी आशा रखता हूँ कि तुम मुझे, मेरे इस अक्षम्य अपराध को भी, क्षमा कर दोगी। अब बताओ कि बच्चा हुआ है या बच्ची ?"

पारसनाथ को स्वयं इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि उसने इस तरह शांत भाव से ऐसी करुण कोमल बात कैसे कह दी जब कि उसके भीतर विध्वंसकारी द्वन्द्व मच रहा है। प्रारंभ में मंजरी का मन मान से भरा हुआ था। पारसनाथ ने ऐन मौके पर जो अवज्ञा दिखाई थी उसके कारण आज पहली बार उसके विरुद्ध उसके मन में वास्तविक विद्रोह सिर उठाने के लक्षण प्रकट करने लगा था। पर उसका कातर वचन सुनकर उसका क्षमाशील नारी-हृदय पिघल गया, और बच्चे के जन्म से जो प्रसन्नता उसे हुई थी उसे बाँटने की इच्छा उसके मन में प्रबल हो उठी। उसने अतिशय स्नेह-कोमल स्वर में कहा—"नज़दीक आकर देखो न, कि क्या हुआ है।"

पारसनाथ मन मारकर उसके निकट गया। बच्चे को पूरी दृष्टि से देखने का साहस उसे नहीं हो रहा था। उसे देखकर एक अनोखी और अवर्णनीय ग्लानि की विरस भावना से उसके सारे शरीर में काँटे खड़े हो रहे थे। वह सोचने लगा कि यह कौन घृणित और गलित, साथ ही दयनीय और असहाय जीव किस रहस्यमय अदृश्य लोक से आकर उसके कलंकित जीवन की पापपूर्ण अनुभूति को समूर्त रूप प्रदान करने के उद्देश्य से आया हुआ है, और मंजरी की छाती से जोंक की तरह चिमट गया है! उसकी सारी आत्मा उस निपट

अज्ञान, एकदम असमर्थ, सद्योजात शिशु के प्रति उत्कट विद्वेष की भावना से भर गई। जैसे वह उसके जन्म-जन्मांतर का वैरी हो।

पर मंजरी के मुख पर मातृत्व का जो सुमंगल भाव झलक रहा था, जो विशुद्ध आनंद की अनुभूति प्रस्फुटित हो रही थी, वह इतनी अधिक वास्तविक और ऐसे ज्वलंत सत्य से पूर्ण थी कि उसकी अवज्ञा पारसनाथ किसी प्रकार भी नहीं कर पाता था। इसलिये उसने बच्चे को एकदम निकट से आकर देखा, स्पर्श किया और चुमकारा। पर बच्चे के कान में उसके चुमकारने की आवाज़ नहीं गई, और वह दूध पीता ही रहा।

थोड़ी देर बाद परबतिया चाय बना कर ले आई। चाय पीकर, नहा-धोकर पारसनाथ फिर बाहर जाने के लिये तैयार हुआ। मंजरी ने घबराहट के साथ पूछा—"कहाँ जाते हो?"

"मैं डाक्टरनी को बुला लाता हूँ।"

"अब कोई आवश्यकता नहीं है।"

"वाह, तुम्हारी बात मैं कैसे मान लूँ! कल तो नर्स की जरूरत थी पर अब डाक्टरनी की ज़रूरत है। प्रसव के बाद ही ज़च्चा और बच्चा की तबीअत ज़रा-ज़रा सी बात से बिगड़ जाने का डर रहता है, ऐसा मैंने सुन रखा है। मैं डाक्टरनी को बुला लाता हूँ, वह एक बार देख लेगी, उसमें हर्ज़ ही क्या है!"

मंजरी चुप हो गई। पारसनाथ जाकर सचमुच डाक्टरनी को बुला लाया। डाक्टरनी ने बच्चा और बच्चे की माता दोनों को देखकर कहा कि दोनों का स्वास्थ्य साधारणतः ठीक है, फिर भी एहतियातन् उसने दो-एक दवाएँ लिख दीं। डाक्टरनी को विदा करके पारसनाथ दवा ले आया।

उस दिन वह दिन-भर मंजरी के पास बैठ रहा। घर का कुल

काम परबतिया ने किया, यहाँ तक कि खाना पकाकर दोनों को खिलाया भी। पारसनाथ को मन-ही-मन यह सोचकर संतोष हुआ कि उसकी अनुपस्थिति के बावजूद भी मंजरी की देख-रेख होने की सम्भावना है। शाम होते ही उसके पंख फड़फड़ाने लगे, और सीली के बद्ध वातावरण से भाग निकलने के लिए उसके प्राण छटपटाने लगे। यह जानते हुए भी कि मंजरी को कम-से-कम दो-चार दिन के लिए किसी भी समय—और विशेष कर रात के समय—अकेले छोड़ना किसी हालत में भी उचित नहीं है, वह किसी-एक बहाने से बाहर निकल गया। जाते समय परबतिया से अनुरोध कर गया कि वह भरसक समय निकालकर मंजरी के पास बैठी रहे। उस दिन वह ग्यारह बजे के पहले ही घर वापस आ गया।

इकतीसवाँ परिच्छेद

उस दिन से पारसनाथ के पहले से ही डवाँडोल हृदय में एक भयंकर तूफ़ानी परिवर्तन होने लगा। वह निश्चित रूप से समझ गया कि उस अस्वाभाविक परिस्थिति को अब अधिक समय तक ढील नहीं दिया जा सकता। या तो मंजरी से विवाह करके नियमित रूप से सामाजिक व्यवस्था के साथ उसे जीवन बिताना होगा, या घोर नीचता पूर्ण निर्लज्जता को पूर्ण रूप से अपनाकर, हृदय की रही-सही 'दुर्बलता' को लात मारकर, चंपत हो जाना पड़ेगा। और वास्तव में चंपत होने में ही दोनों ओर का कल्याण है—यह आत्मवंचक विश्वास उसके मन में जमने लगा। पर बीच-बीच में जब उसकी नींद किसी दुःस्वप्न के बाद अचानक उचट जाती, तो मंजरी की स्वर्गीया अंधी माँ की प्रेतात्म छाया एक नये ही रूप में उसके सामने प्रकट होती और विकट

अट्टहास की मुद्रा के साथ भौतिक इंगित द्वारा मानो कहती —"तुम सहज में अब इस बंधन से त्राण नहीं पा सकते ! अभी न जाने और कितने फंदे तुम्हारे गले पर पड़ते रहेंगे !" वह अपने पापी मन के भ्रम से उत्पन्न उस आतंककारी भौतिक छाया से रक्षा पाने के उद्देश्य से कंबल से मुँह ढक लेता। पर कंबल के भीतर, उसकी बंद आँखों के आगे भी, वही भीषण प्रतिहिंसात्मक छाया अपना विकराल किंतु स्पर्शातीत रूप दिखाने से बाज़ न आती। बड़े ही कठिन प्रयास के बाद वह उस भ्रामरी छाया की लोमहर्षक माया से अपने को मुक्त करने में समर्थ हो पाता।

बच्चे को जब कभी ज़रा सी भी सर्दी या खाँसी होती, तो मंजरी अत्यंत चिंतित होकर पारसनाथ से अनुरोध करती कि किसी होमियो-पैथिक डाक्टर को बुलावे। पारसनाथ टाल जाने की इच्छा रखते हुए भी किसी कारण से नहीं टाल पाता था। बच्चे ने उसे जैसे मंजरी से भी अधिकतर प्रबल बंधन से जकड़ लिया था। उसके अज्ञात में उस नन्हें से सुकुमार प्राणी के प्रति ममता का बीज अंकुरित होने के चिह्न प्रकट होने लगे थे। एक दिन जब उसे अचानक बच्चे के प्रति उस अज्ञात ममता की सूचना मिली तो वह बुरी तरह घबरा उठा। छः महीने का वह अदना सा जीव बड़ा ही चंचल, आमोदप्रिय और अस्थिर स्वभाव का था। पारसनाथ जब कभी मंजरी के आग्रह से और कभी बरबस किसी अज्ञात प्रेरणा से प्रेरित होकर उसे "मुन्नू !" या "बच्चू !" कहकर चुमकारता था, तो माँ की गोद में दूध पीता हुआ भी जैसे उछल पड़ता, और दाहिने हाथ की तर्जनी ऊपर को उठाकर पूरी ताक़त से 'कूँ—ऊ—ऊ !' की आवाज़ मुँह से निकाल कर उसकी चुमकार का उत्तर देता। एक बार बच्चा सर्दी और खाँसी से बहुत परेशान था और गले के भीतर बहुत अधिक कफ जमा होने से किसी तरह की भी आवाज़ ठीक तरह से नहीं निकाल पाता था, पर पारसनाथ

ने ज्योंही चुमकारते हुए कहा—"मुन्नू !" त्योंही वह आधी नींद से उचक पड़ा और दाहिने हाथ को नचाकर अत्यंत पुलकित भाव से अपने फँसे हुए गले से आनन्द की किलकारी का शब्द निकालने की चेष्टा करने लगा। दो-एक बार उसका प्रयास विफल गया, बल्कि उसे खाँसी का ज़बर्दस्त 'फिट' आ गया—ऐसा भयंकर 'फिट' कि जिसकी अवधि पूरे ढाई मिनट तक रही। मंजरी उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई इस आशंका से घबराकर रो पड़ी कि बच्चे का दम अटका जा रहा है, और अब उसकी मृत्यु निश्चित है। पारसनाथ भी बहुत घबरा उठा। पर उस दुर्बल-शरीर और क्षीणप्राण बच्चे के भीतर न जाने कौन सी जादू-भरी जीवनी शक्ति वर्तमान थी कि प्रबल चेष्टा से फड़फड़ाकर, उस 'फिट' से मुक्त होकर वह फिर उल्लास से तरंगित होता हुआ कूक उठता—"कू-ऊ-ऊ !" बार-बार खाँसता और बार-बार पारसनाथ के या मंजरी के चुमकारने पर उसी तरह उल्लास भरे रूप में कूकता हुआ उमंग से बाहर को उछलने का प्रयास करता।

इस प्रकार रोग से पीड़ित उस बच्चे ने पारसनाथ के मन में एक विकल स्नेह-वेदना उत्पन्न कर दी। एक ओर स्नेह की फाँस उसे अपनी ओर खींचती, दूसरी ओर उसकी पाप-पीड़ित आत्मा मानवीय कर्तव्य के समस्त बंधनों से मुक्त होकर उच्छृङ्खल अवस्था में भाग निकलने को उसे उसकाती रहती थी। फल यह होता था कि उस प्यारे बच्चे के प्रति वह समय-समय पर जितनी ही अधिक स्नेहशीलता का अनुभव करता बाद में उसकी प्रतिक्रिया भी उतने ही प्रबल रूप में होती, और वह यह इच्छा करने लगता कि वह बच्चा जल्दी या तो दम घुटने के कारण मर जाय या उसे कोई विषैली दवा पिलाई जाय, जिससे उसका काम तत्काल तमाम हो जाय।

एक दिन वह नंदिनी के मकान की ओर जाता हुआ इसी तरह की बात सोच रहा था। बच्चे की मृत्यु की बात सोचते हुए मञ्जरी

के अत्यंत आर्त और अतिशय करुण रूप क.
को छा दिया। बच्चे की मृत्यु से जो दारुण प।
उसका स्वरूप पारसनाथ की मानसिक आँखों के आ।
रूप से आ रहा था। उसकी कल्पना-मात्र से उसके रोए
उसकी सारी आत्मा में एक गहन आतंक की गाढ़ छाया ... आई। उस घनघोर आतंक के छाते ही उसके संकीर्ण स्वार्थपूर्ण मन के भीतर आत्म-रक्षा की भावना जागरित हुई, और तत्काल जैसे किसी आश्चर्य-जनक रासायनिक क्रिया से उसके मन का सारा भाव ही बदल गया। मंजरी उसे अपनी घोरतम शत्रु जान पड़ी। केवल शत्रु ही नहीं, उसे ऐसा लगा, जैसे उसकी प्रतिहिंसापरायणा अंधी माँ की मृतात्मा उसके अनजान में उसके भीतर समा गई हो। वह सोचने लगा—"स्नेह की ओट में मेरी आत्मा की नस-नस को जकड़नेवाली इस वैरिणी के जीवन के साथ मैं अब अधिक चल नहीं सकता—चल नहीं सकता! अगर मैं पागल होने से अपने को बचाना चाहूँ तो उस अनाथ नारी को चार महीने के सुकुमार शिशु के साथ अकेली छोड़कर, उसके साथ सारा नाता जड़ से उखाड़कर, भाग निकलना होगा। किसी अनाथ लड़की का साथ अंत तक देने का ठीका मैं नहीं ले सकता। जब वह अनाथ है तो आज एक का आश्रय पकड़ने के बाद कल दूसरे का आश्रय पकड़ सकती है। और फिर मेरे भागने के बाद उसे कहीं आश्रय मिले या न मिले—इससे मुझे क्या वास्ता! मैं कहाँ तक इन सब बातों की चिंता करूँ! ज्यों-ज्यों बंधन तोड़ने में मैं कमज़ोरी दिखा रहा हूँ त्यों-त्यों उसकी गाँठें और फंदे बढ़ते चले जा रहे हैं। इसलिये जितनी जल्दी हो सके उतना ही अच्छा है। हाँ, ठीक है, उतना ही अच्छा है! मैं आज ही नंदिनी से इस बात का ज़िक्र करूँगा पर नंदिनी से ज़िक्र करने की आवश्यकता ही क्या है! मैं भी अजब बेवकूफ़ हूँ! हाँ, हाँ, ठीक तो है! नंदिनी को यदि मैं अपने साथ न

का उद्देश्य ही व्यर्थ सिद्ध होगा। उसने .क उसके पास अभी संचित धन बहुत-कुछ शेष ।रियाजी की गृद्ध दृष्टि से बचा रखा है। उसके पास हैं और थोड़ी-बहुत नक़दी भी है। पर इससे क्या हुआ ? क्या मैं उसके पैसों के लोभ से उसे भगाना चाहता हूँ ? तब भुजौरियाजी में और मुझमें अंतर ही क्या रहा ? नहीं, यह बात कभी संभव नहीं हो सकती ! मैं पैसों के लिये नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व के लिये उसे चाहता हूँ। उसका व्यक्तित्व मुझे बहुत तेजस्वी लगता है। भूतों और प्रेतों के बीच में रहने पर भी वह अपने जीवन और यौवन को सबल रखने में समर्थ हुई है। वास्तव में उसने मेरी आत्मा को मोह लिया है, और हम दोनों एक-दूसरे को सच्चे अर्थों में चाहते हैं। पर उसके पास रुपया कहाँ से आया ? कई हज़ार रुपया तो श्रीमान् भुजौरियाजी हड़प गए हैं, और तिसपर अभी बहुत-कुछ शेष है ! किसी बड़े घर की लड़की मालूम होती है। तभी तो वह किसी कुलीन घराने के व्यक्ति से विवाह करने के लिये लालायित थी। मालूम होता है उसके पिता उसके और उसके बहनों के लिये काफ़ी रुपया छोड़कर मरे हैं। पर इस संबंध में मैंने उस दिन उससे जो प्रश्न किया था उसका साफ़-साफ़ उत्तर उसने क्यों नहीं दिया ? कुछ गोलमाल-सा उत्तर देकर बात को टाल क्यों गई ? भाड़ में जाय, इन सब बातों से मुझे क्या करना है ! वह भुजौरियाजी से तहेदिल से घृणा करती है और मुझे चाहती है—यही ज़रूरी बात है।"

इस तरह की उलटी-सीधी बातें सोचता हुआ वह भुजौरियाजी के यहाँ पहुँचा। भुजौरियाजी अभी तक अपने व्यावसायिक दौरे से वापस नहीं आए थे। मकान का दरवाज़ा भीतर से बंद था—किवाड़ योंही फेर दिये गए थे। भीतर जाकर पारसनाथ ने दरवाज़ा बंद करके ज़ंजीर चढ़ा दी। इसके बाद ज़ः ऊपर जाकर वह नंदिनी के कमरे में पहुँचा,

तो उसने देखा कि वह पलंग पर लेटी हुई अंचल से आँखें पोंछ रही है। स्पष्ट ही वह रो रही थी। पर अकेले में इस प्रकार रोने का कारण क्या हो सकता है, इसकी कोई संभव या असंभव कल्पना पारसनाथ नहीं कर पाया। वह कुछ शंकित-सा आगे बढ़ा और डरता-डरता धीरे से नंदिनी के पैताने जाकर बैठ गया। उसके बाद उसके सिर के बालों पर हाथ फेरता हुआ बड़े ही कोमल भाव से बोला—"क्या तबीअत कुछ ख़राब है ? रो क्यों रही थीं ?"

नंदिनी आँसुओं के शेष चिह्नों को अंचल से अच्छी तरह मिटाने का प्रयत्न करती हुई सहज भाव से बोली—"मैं रोती कहाँ थी ! पलकों में खुजली मालूम हो रही थी, इसलिये आँखें मल रही थी।"

नंदिनी के समान स्पष्टवादिनी स्त्री रोने की बात को इस तरह छिपाना चाहे, यह एक दूसरा आश्चर्य पारसनाथ को हुआ। कुछ देर तक वह लेटे-लेटे आँखें पोंछती रही। उसके बाद सहसा उठ बैठी, और पारसनाथ के बाएँ कंधे पर गलबहियों के रूप में दोनों हाथ और दाहिने कंधे पर अपना सिर रखकर बोली—"क्या सारी ज़िंदगी मुझे इसी कारावास में बिता देनी पड़ेगी ? इससे छुटकारा पाने का क्या कोई उपाय नहीं है ? आज दिन-भर मैं यही बात सोचती रही। कभी मुझे ऐसा लगता है कि भूतों के इस डेरे से छुट्टी पाने का उपाय बहुत ही आसान है, और कभी मेरा मन घनघोर निराशा से छा जाता है, और यह आशंका मेरे मन में घर कर जाती है कि जन्म-जन्मान्तर तक इस यम-यातना से मेरा उद्धार नहीं हो सकेगा। आज उसी भयंकर निराशा के घने काले बादल मेरे भीतर घिर आए हैं।"

पारसनाथ ने अत्यंत गंभीरता के साथ कहा—"नहीं नंदिनी, तुम्हें निराश नहीं होना चाहिये। इस यम-यातना से निश्चय ही तुम्हारा उद्धार होगा, और जल्दी—बहुत ही जल्दी होगा ! केवल तुम्हारा ही

नहीं, तुम्हारे साथ मेरा भी उद्धार होगा—यह मेरा दृढ़ विश्वास है। देर है केवल तुम्हारे कमर कसने-भर की।"

नंदिनी ने प्रश्न-भरी उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह बोला—"मुझे तुम जैसा आदेश दोगी मैं वैसा ही करूँगा।"

नंदिनी सँभलकर बैठ गई, और फिर बोली—"सच कहते हो?"

"हाँ, बिलकुल सच। आज़मा कर देख लो।"

"अब चलो, कल ही बोरिया बँधना उठाकर मेरे साथ निकल चलो—जहाँ मैं कहूँ।"

"मैं राज़ी हूँ।"

"सच?"

पारसनाथ उसके अविश्वास पर मंद-मंद मुस्कराने लगा। और उसके दाहिने गाल पर अपना बायाँ गाल रखता हुआ बोला—"तुम्हें मेरी बात पर विश्वास क्यों नहीं होता?"

नंदिनी ने एक लंबी साँस लेकर कहा—"सचमुच मेरे मन का अविश्वास इधर बहुत बढ़ गया है। इसका कारण शायद यह है कि मैंने एक व्यक्ति का पूर्ण विश्वास करके भयंकर धोखा खाया है। मेरा हृदय पहले से जितना ही सरल विश्वास से भरा था अब अविश्वास के कीड़े ने उसे उतना ही छेद-छेदकर चलनी बना डाला है। फिर भी उसमें अभी इतना बल बाकी है कि तुम्हारे साथ चलने की हिम्मत बाँध सकती हूँ।"

पारसनाथ को ऐसा लगा जैसे किसीने उसके पापी मन के मर्म-स्थान को पकड़कर झँझोड़ दिया। वह उस कटु अनुभूति को मन-ही-मन पीने की चेष्टा करने लगा, पर इस चेष्टा का फल केवल यह हुआ कि मंजरी की सरल विश्वास और सहज प्रेम से भरी स्निग्ध मुखछवि

उसकी आँखों के आगे नाचकर उसे अस्थिर करने लगी, और उसके प्यारे बच्चे की उल्लसित कूक की आवाज़ एक अनोखी मार्मिक वेदना से उसके कानों में रह-रहकर गूँजने लगी। वह सोचने लगा—"फिर से मेरे मन की निपट कमज़ोरी का भूत मुझे धर दबाना चाहता है। एक बार जहाँ वह भूत मुझे पूरी तरह दबाने में समर्थ हुआ नहीं कि मैं निश्चय ही तत्काल पागल हो उठूँगा। इसलिये इसे एक बार अच्छी तरह झाड़कर फटकारे बिना त्राण नहीं है, त्राण नहीं है!"

शरीर के एक कंप से समस्त भय, भ्रांति और शंका की भावनाओं को झाड़कर वह सहसा उठ खड़ा हुआ, और नन्दिनी का भी उसने हाथ पकड़कर ऊपर उठाया। उसके बाद पूर्ण आवेग के साथ दोनों बाँहों से जकड़कर अपनी छाती से लगाता हुआ बोला—"मेरा विश्वास करो, नन्दिनी। मैंने चाहे तमाम संसार के साथ विश्वासघात किया हो, या सारे संसार ने मेरे साथ विश्वासघात किया हो, पर तुम्हारे साथ मैं कभी इस जन्म में विश्वासघात नहीं करूँगा।"

ज्योंही उसने यह बात कही, त्योंही किसी ने उसकी आत्मा के भीतर से विकट अट्टहास किया। उस अट्टहास के भौतिक शब्द से चौंककर उसने शून्य दृष्टि से सामने दीवार की ओर देखा। उस शून्य दृष्टि ने शून्य में ही देखा कि उसी अंधी अधेड़ स्त्री की प्रेतात्मा अपनी निर्जीव आँखों को पूरा खोलकर, खीसें बाहर निकालकर, बीभत्स हास्य की मुद्रा बनाये अधर में लटक रही है। पारसनाथ ने क्षणभर के लिये आँखें मूँद लीं, और यह जानकर कि स्वयं उसकी अपराधी आत्मा ने फिर एक बार भय की उस भ्रामक छाया को उत्पन्न किया है, उसने नन्दिनी के कन्धे पर अपना सिर रख दिया, और कुछ क्षणों तक उसी अवस्था में आँखें मूँदे ही रहा। उसके बाद नन्दिनी को अपने बंधन से मुक्त करके बोला—"अच्छा, तो कल की बात पक्की रही? यहाँ से कहाँ जाने का इरादा है? मैं कै बजे तैयार होकर आऊँ?"

नंदिनी ने कहा—"जब चलना ही है, तो कल के भरोसे पर क्यों बैठे रहते हो ? आज ही क्यों न चले चलें ? मैं चाहती हूँ कि आज ही रात की गाड़ी से लखनऊ के लिये रवाना हो जावें।"

क्षण भर के लिये पारसनाथ असमंजस में पड़कर भ्रांत भाव से खड़ा रहा। उस क्षुद्रातिक्षुद्र क्षण के भीतर न जाने उसके कितने जन्मों की कितनी बातें उसके मस्तिष्क की संकीर्ण परिधि के भीतर पुंजीभूत होकर कुलबुलाने लगीं। उनके कुलबुलाने से उसके दोनों कानों में चारों ओर से आवाज़ें आने लगीं—"हा ! हू ! हल्ला !" "हा ! हू ! हल्ला !" जैसे कहना चाहती हों—"ख़बरदार ! ख़बरदार ! सावधान ! सोच लो, सोच लो ! फिर से सोच लो ! इतना बड़ा ग़ज़ब, ऐसा भयंकर अंधेर न करो ! अपनी पाप-प्रवृत्तियों को सर्वनाश की इस सीमा तक न पहुँचने दो !" केवल एक छोटे से क्षण के भीतर उसके अंतर्मन में इतना बड़ा कांड हो गया, ऐसा भयंकर तूफ़ान मच गया। पर उस चरम क्षण के समाप्त होते ही वह सारा तमाशा चक्कर उसे भौतिक दुःस्वप्न की तरह मिथ्या होने लगा, और उसने तत्काल नंदिनी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—"ठीक है। तुम ठीक ही कहती हो। कल के लिये जीवन की इतनी महत्वपूर्ण बात को टालना चतुराई का काम न होगा। कल तक इन्तज़ार करने से न जाने कौन-से विघ्न खड़े हो उठें, कौन कह सकता है !" उसे इस बात का भय हो रहा था कि मञ्जरी के पास लौट चलने से उसके मन की 'कमज़ोरी' कहीं फिर से उसका गला न पकड़ डाले। विशेष करके कुछ दिनों से उस छोटे-से नाजायज़ बच्चे के प्रति मार्मिक ममता का जो भाव उसके मन में न चाहने पर भी उत्पन्न होने लगा था उसने उसे और भी अधिक भयभीत कर दिया था।

पर नंदिनी ने अपनी कुछ दूसरी ही आशङ्का की बात उसे बताई। वह बोली—"कल तुम्हारे भुजौग्याजी के लौट आने की सम्भावना

है। अगर वह कल आ गए, तो फिर बात न जाने कब तक के लिये टल जाय।"

"ठीक है। आज ही चलेंगे—अभी! तुम अपना सब सामान बाँध-बूँध कर ठीक कर लो। मेरे पास कुछ विशेष सामान नहीं है, और जो है भी उसे लाने के लिये मैं नहीं जाऊँगा। मैं सीधा यहीं से तुम्हारे साथ स्टेशन चला चलूँगा।"

नंदिनी उसी क्षण सामान सजाने और बिस्तर बाँधने के काम पर जुट गई। प्रायः आधे घंटे के भीतर पूरी तैयारी हो गई। उसके बाद बोली—"अब चलो। नौकरानी के आने के पहले ही यहाँ से भाग निकलना ठीक होगा।"

"चाभी किसे दे जाओगी?"

"मकान खुला ही पड़ा रहेगा। बाद में श्रीमान् भुजौरियाजी की असली 'गृहिणी' जब चौका-बर्तन करने आवेगी तो अपने-आप सारी गृहस्थी फिर से सँभाल लेगी। इस बात की चिंता करके हम क्यों बेकार परेशान हों!"

"ठीक है, तब चलो। ज़रा ठहरो, मैं किसी एक्के या ताँगेवाले को बुला लाता हूँ।"

पारसनाथ निद्रा-विचरण की-सी आत्म-विस्मृत अवस्था में फुर्ती से बाहर जाकर बड़े रास्ते के चौराहे के पास गया। भाग्य से उसी समय एक ताँगा ख़ाली चला जा रहा था। बिना कुछ ठहराए वह उसे गली के पास ले गया। उसके बाद कुछ सामान ताँगेवाले से उठवाया और कुछ स्वयं उठाकर ताँगे पर पहुँचाया। सामान काफ़ी था—तीन बड़े बक्स, एक छोटा बक्स और दो बिस्तर। एक बिस्तर उसने पारस-नाथ के लिये पहले से ही अलग बाँधकर रख दिया था।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

जब दोनों स्टेशन पहुँचे तो नंदिनी ने चैन की एक लंबी साँस ली। संध्या के समय उसके मुख पर जो एक गहन उदास छाया घिरी हुई थी, वह इस समय एकदम अंतर्धान हो गई थी, और उसके स्थान पर एक उल्लसित आभा चमक रही थी, जो बिजली के प्रकाश में उज्ज्वलतर मालूम हो रही थी। उसने कभी इस बात की आशा नहीं की थी कि इतनी आसानी से वह उस कुटिल-कठोर बंधन से मुक्ति पा सकेगी जिसने उसकी आत्मा की नस-नस को कसकर निःशक्त बना दिया था।

पारसनाथ के भीतर जो विकट द्वन्द्वचक्र चल रहा था, जो घनघोर संघर्ष मच रहा था, उसका यथार्थ वर्णन नहीं हो सकता। उसकी आँखों के आगे मञ्जरी के स्नेहकरुण, आर्त और असहाय रूप की प्रतिच्छाया लाख दबाने की चेष्टा करने पर भी फिर-फिर नाच उठती थी, और उस निपट नादान और अनाथ बच्चे की अस्फुट किलकारी की गूँज निरन्तर हाहाकार भरे स्वर में बजती जाती थी। पर यह सब होने पर भी यह अनुभूति उसे एक उन्मादक और अस्वाभाविक स्फूर्ति प्रदान कर रही थी कि वह एक विवाहिता स्त्री को भगाये लिए जाता है। किस ओर भगा ले जा रहा है, किस उद्देश्य से और कितने समय तक के लिये—अपने अंतरतम मन के ये सब प्रश्न उसे एकदम अर्थहीन और निस्सार लगते थे। केवल यह कल्पना उसे रह-रह कर तरंगित कर रही थी कि जो स्त्री उसके साथ भाग निकली है वह कल तक किसी दूसरे की संपत्ति थी, और आज वह पूर्ण रूप से उसके अधिकार में है। वह मन-ही-मन कहने लगा—"इस स्त्री ने मञ्जरी की तरह अनाथ और असहाय होने के कारण विवशता से मेरा प्रेम स्वीकार नहीं किया है,

बल्कि पूर्ण सनाथ अवस्था में स्वेच्छा से मुझे अपना सब-कुछ अर्पित करके वह भाग निकली है। सबसे बड़ी बात यह है कि मेरी ख़ातिर वह विवाह के धार्मिक और सामाजिक बंधन को लात मारकर तोड़ आई है। एक विवाहिता नारी को भगाने में जो सुख है वह किसी अविवाहिता स्त्री के साथ भागने में किसी भी हालत में प्राप्त नहीं हो सकता। किसी गुणवती और शीलवती सुंदरी स्त्री का पातिव्रत खंडित करने से हम नरक के कीड़ों की सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति होती है। इसलिये आज मेरे नारकीय जीवन की चरम सफलता का दिन है—क्योंकि मैं केवल इस स्त्री का पातिव्रत खंडित करने में ही सफल नहीं हुआ हूँ, बल्कि वह आज हर तरह से मेरे अधीन है।"

इंटर क्लास का टिकट ख़रीद कर दोनों 'वेटिंग रूम' में बैठ गए। बहुत देर बाद गाड़ी लगी। गाड़ी में काफ़ी जगह थी। आमने-सामने के दो बर्थों पर बिस्तर बिछाकर दोनों बड़े आराम से लेट गए। दूसरे दिन पौ फटने के कुछ पहले ही गाड़ी लखनऊ पहुँची। गाड़ी से उतर-कर पारसनाथ ने पूछा—"कहाँ ठहरना होगा?"

कुछ सोचकर नंदिनी ने कहा—"ठहरने को तो बहुत सी जगहें हैं। पर अभी किसी होटल ही में ठहरना ठीक रहेगा। बाद में देखी जायगी।"

ताँगे पर सामान लदवा कर दोनों बैठ गए, और क़ैसरबाग़ के पास किसी एक होटल में जाकर ठहरे। एक अपेक्षाकृत एकांत कमरा उन लोगों को मिल गया। सामान ठीक-ठिकाने से रखवाकर और दो पलँगों पर बिस्तर बिछवाकर कुछ देर तक दोनों भीतर से किवाड़ बंद करके आराम से लेटे रहे। उसके बाद हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदल-कर सुबह की चाय पीने और नाश्ता करने बैठे।

चाय की पहली घूँट पीने के बाद ही नंदिनी ने कहा—"मैंने

पहले सोचा था कि मैं तुम्हें साथ लेकर सीधे अपनी छोटी बहन के यहाँ जाकर उतरूँगी।"

"फिर उसमें कौन-सी बाधा आ गई?"

"फिर मैंने सोचा कि शायद तुम्हें आपत्ति हो।" यह कहकर वह बड़े गौर से पारसनाथ के मुख का भाव ताड़ने की चेष्टा करने लगी।

"मुझे क्या आपत्ति हो सकती है! हाँ, तुम्हारी बहन को या तुम्हारे बहनोई साहब को अवश्य यह बात नागवार मालूम होगी कि तुम मेरे साथ भगकर चली आई हो। मुझे साथ लेकर वहाँ चलने की बात तुम सोच ही कैसे पाई, मुझे इसी बात पर आश्चर्य हो रहा है।"

"मेरे बहनोई-वहनोई कोई नहीं हैं। और मेरी बहन इस बात से प्रसन्न ही होगी कि उस खूसट को छोड़कर मैं एक भले आदमी के साथ चली आई हूँ। वह पहले ही उसके साथ विवाह करने से मुझे रोक रही थी।"

पारसनाथ की समझ में यह बात बिलकुल भी नहीं आ पाती थी कि पति को छोड़कर प्रेमिक के साथ भाग निकलनेवाली बहन की उच्छृङ्खलता का समर्थन कोई भी भारतीय नारी कैसे कर सकती है। वह सोचने लगा—"तब तो नंदिनी के आत्मीय-स्वजन बहुत ही अधिक प्रगतिशील हैं!"

उसने कहा—"तुम्हारे बहनोई नहीं हैं! तब क्या तुम्हारी बहन—" वह कहने जा रहा था कि "विधवा है!" पर नंदिनी ने तत्काल उसकी बात को पूर्ति करते हुए कहा—"हाँ, हाँ अभी तक अविवाहित है।"

"अविवाहित है? और अकेली रहती है?"

"हाँ। तुम्हें आश्चर्य क्यों हो रहा है?"

"उसका खर्चा कौन चलाता है ?"

"वह खुद ही कमाती है।"

वास्तव में पारसनाथ के आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। उसने कहा—"खुद ही कमाती है ! इस बात का अर्थ मैं समझा नहीं। क्या वह कहीं नौकरी करती है ?"

सहसा नंदिनी के मन में यह सन्देह उठा कि पारसनाथ को आज तक उसके सम्बन्ध में बड़ी भारी ग़लतफ़हमी रही है। पर उसने तो जानबूझकर कोई बात उससे छिपाने की चेष्टा नहीं की, बल्कि जब-जब मौक़ा आया है उसने अपने स्पष्ट संकेत द्वारा उसे यह सूचित कर कर देना चाहा है कि विवाह होने के पहले उसका जीवन किस प्रकार के समाज के बीच में बीता है। यदि उसके संकेतों को पारसनाथ न समझा हो, अन्यमनस्कतावश उसने उसकी बातों पर ध्यान न दिया हो, तो इसमें उसका क्या दोष है ! कुछ भी हो, यदि सचमुच पारसनाथ को उसकी यथार्थ सामाजिक स्थिति का पता पहले से न हो, और अब अकस्मात् उल्कापात की तरह वह दृश्य उद्भासित हो उठे, तो उसकी क्या प्रतिक्रिया उसके मन में होगी ? इस संबंध में तरह-तरह के विचार नंदिनी के मन में उठने लगे ! कुछ क्षणों तक उसे साहस नहीं हुआ कि बात को स्पष्ट और यथार्थ रूप में पारसनाथ के आगे रखे। पर बाद में उसने सोचा कि जब उसने जान-बूझकर कभी सत्य को छिपाना नहीं चाहा है (भले ही अनजान में उसके मन में यह प्रवृत्ति किसी हद तक वर्तमान रही हो) तो इस समय उसे दबाने की चेष्टा अत्यंत नीचतापूर्ण कायरता होगी। इसलिये वह हर प्रकार की संभावना के लिये तैयार होकर, साहस बटोरकर, सँभलकर बैठ गई, और बोली—"मेरा ऐसा ख़याल था कि तुम्हें मेरे और मेरी बहनों के संबंध में सब बातें मालूम हैं। मेरी दोनों बहनें अभी तक पेशा करती हैं।"

पारसनाथ वज्र-स्तंभित होकर रह गया। अकृत्रिम आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़कर कुछ क्षणों तक नंदिनी की ओर एकटक देखता रहा। उसके बाद एकदम धीमी आवाज़ में, प्रायः फुसफुसाते हुए, बोला—"पेशा ? तब क्या तुम्हारी बहनें—"

"वेश्याएँ हैं। और मैं भी पहले वेश्या ही थी।" नंदिनी काफ़ी साहस बटोर चुकी थी, और उसने यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि चाहे परिणाम कुछ भी क्यों न हो, वह स्पष्ट और सत्य बात कहेगी।

पारसनाथ के मुख पर गाढ़ कालिमा छा गई थी, जैसे किसी ने स्याही पोत दी हो। वह एक घूँट भी चाय न पी सका, केवल जले हुए काठ की तरह स्तब्ध और निश्चल अवस्था में बैठा रह गया। उसकी दोनों आँखें बुझती हुई चिनगारियों की तरह अत्यंत करुण भाव से जलती हुई, नंदिनी की ओर देखती रह गईं।

नंदिनी को भी अब चाय कुनैन की तरह कड़वी लगने लगी थी। पारसनाथ के मुख के भाव में आकस्मिक परिवर्तन देखकर कुछ समय के लिये वह सहम-सी गई। पर सहसा उसके अंतर के तल-प्रदेश में एक ऐसा भयंकर तूफ़ान उठकर उथल-पुथल मचाने लगा जिसका अनुभव उसने आज जीवन में पहली बार किया।

उसके मुख पर सावन के मेघ की तरह एक गहन-गंभीर छाया घिर आई थी। अपने भीतर आक्रोश को बरबस पीने की चेष्टा करते हुए उसने कहा—"यह जानकर कि वेश्या का जीवन बिता चुकी हूँ तुम्हें जो इतना गहरा धक्का पहुँचा है, उसका कारण क्या है—क्या मैं जान सकती हूँ ?"

कुछ देर तक पारसनाथ उसी उत्कट दृष्टि से नंदिनी की ओर देखता रहा। उसके बाद दाँतों का पीसना बलपूर्वक रोककर बोला—

"उसका कारण क्या है पूछती हो ? कारण कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं ! मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ कि इस समय तुम नहीं बोल रही हो, बल्कि तुम्हारे भीतर से उस अंधी और अधेड़ स्त्री की प्रेतात्मा बोल रही है, जो प्राय: डेढ़ वर्ष से मेरे जीवन को प्रतिदिन, प्रतिपल विषमय बनाने के लिये क़सम खाये बैठी है। इतने दिनों तक वह अपनी सहृदय और सरल-स्वभाव लड़की की आत्मा के भीतर प्रवेश किये रही, अब जब मैंने उसकी लड़की का साथ छोड़ा है तो उसने न जाने कितने जन्मों की शत्रुता का बदला मुझसे चुकाने के लिये तुम्हारी आत्मा पर क़ब्ज़ा कर लिया है। मैं खूब समझता हूँ।"

वह कहते हुए पारसनाथ की आँखों में आज बहुत दिनों बाद फिर एक बार प्रेतलोक की उसी रहस्यमयी और लोमहर्षक छाया का आभास झलक उठा जिसे देखकर एक दिन मंजरी का दिल दहल उठा था। नंदिनी भी उससे डर गई और उसके सारे शरीर में काँटे खड़े हो गए। डरने के साथ ही उसके हृदय में पारसनाथ के प्रति एक अपरिसीम करुणा की लहर हहर उठी। अपने मन की तत्कालीन घोर अ-साधारण अवस्था में वह न जाने क्या कह गया—नंदिनी उसकी बात का एक अक्षर भी नहीं समझ पाई। उसे वह पागल का-सा प्रलाप लगा। पर उसकी अंतःप्रज्ञा इतना अवश्य समझ गई (जिसे वह वर्षों के परिचय से नहीं समझ पाई थी) कि पारसनाथ किसी कारण से अत्यंत दुःखी और दयनीय है। आकस्मिक प्रेरणा ने उसी क्षण उसके आगे यह सत्य भी उद्भासित कर दिया कि उसके दुःख का वह गुप्त कारण उसकी आत्मा के बहुत भीतर जड़ जमाये हुए है, और वर्षों से उसे यम-यातना भुगतने के लिये बाध्य किये हुए है। उसे इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने दिनों तक इतना प्रचंड सत्य उससे कैसे छिपा रह गया। जब से पारसनाथ से उसका परिचय हुआ तब से आज तक नंदिनी ने उसे जिन-जिन रूपों में देखा था, जिस-

जिस तरह का भाव उसकी प्रत्येक बात से, व्यवहार से, रंग से, ढंग से व्यक्त होता हुआ पाया था, उन सब को उसने अपने मन के दर्पण के आगे एक बार सरसरी तौर पर उतारा। और उतारते ही वह एकदम नये रूप में एक अद्भुत सत्य का आभास पाकर सन्न रह गई। उन पिछली स्मृतियों के कुरेदने पर उसे ऐसा लगा कि पारसनाथ सब समय किसी काल्पनिक (या वास्तविक—कौन जाने!) प्रेतात्मा की छाया को अपने साथ लिए रहता था। कहीं किसी भी समय उसने दिल खोलकर उससे कोई बात नहीं की। और तो और, प्रेम-संबंध स्थापित होने के पहले जिस दिन उसके हृदय का आवेग चरम सीमा को पहुँचा हुआ था उस दिन भी उसने सबसे अधिक उमंग की जो बात कही वह केवल यह कि "तुम छाया हो और मैं प्रेत, मैं प्रेत हूँ और तुम छाया!" सोच-सोचकर नंदिनी का भय जितना ही बढ़ता जाता था उसी परिमाण में पारसनाथ के प्रति करुणा का भाव भी उमड़ रहा था। पर इन दोनों भावों की उथल-पुथल के बावजूद इस बात की मार्मिक पीड़ा को वह किसी प्रकार भी भूल नहीं पा रही थी कि उसके भूतपूर्व वेश्या-जीवन की बात मालूम होने पर पारसनाथ उससे अपने अंतस्तल से घृणा करने लगा है, और दोनों के इतने दिनों के आंतरिक (!) प्रेम को एक पल में भुला बैठा है।

कुछ भी हो, वह यथा-संभव शांत भाव से बोली—"इस बात से तुम इस क़दर विचलित हो उठोगे यह मैंने नहीं सोचा था।"

"तुम सोच ही कैसे सकती थीं। दूसरों को धोखे में रखना ही जिसका—पर अब सब व्यर्थ है! सब बेकार है! जो अनर्थ हो चुका है उसका अब कोई प्रतीकार विश्व के किसी भी कोने में नहीं रह गया है। तुम्हारा दोष नहीं है, तुम्हारी जाति का दोष है—वेश्या जाति नहीं, स्त्री जाति-मात्र का!"

इस समय तक पारसनाथ की दयनीय मानसिक दशा देखकर जो करुणा नंदिनी के मन में तिलमिला रही थी, उसकी अंतिम कटूक्ति सुनने के बाद उसके अपमानित नारी-हृदय के प्रचंड विद्रोह की दहकती हुई आग ने उसे एकदम सुखाकर गरम-गरम भाप में परिणत कर दिया। इंजिन के धुँए की तरह उस भाप को बाहर निकालती हुई वह फुफकार-भरे स्वर में बोली—"तो क्या अभी तक तुम यह समझे बैठे थे कि समाज के और पति के बंधन में बंधी हुई एक भले घर की बहू को फुसलाकर भगाये लिए जा रहे हो ? ठीक है, यही बात है ! एक कुलीन घराने की विवाहिता स्त्री को भगाकर उसका धर्म नष्ट करने में तुम जैसे अधम पुरुषों को जो सुख मिलता है वह किसी वेश्या-समाज की लड़की को (फिर चाहे वह विवाहिता ही क्यों न हो) भगाने में कहाँ मिल सकता है ! आज मैं अच्छी तरह समझ गई हूँ कि तुम सचमुच नरक के कीड़े हो—उस नरक के भीतर कुलबुलाते रहने में ही सुख मिल सकता है—घोर विकृत और गलित सुख ! इस समय तक मैं तुम्हें अपना त्राणकर्ता समझती थी और यह विश्वास किये बैठी थी कि इतने दिनों के बाद अंत में एक पुरुष मुझे ऐसा मिला है जिसका सोना सचमुच खरा है—ऐसा पुरुष जो मन की उदारता और हृदय की समवेदना में उस आदर्श से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है जिसकी कल्पना प्रत्येक स्त्री के मन में (जान में या अनजान में) बहुत छोटी उम्र से रहती है, पर जिसे वह वास्तविक जीवन में अंत तक नहीं पाती। मुझे क्या पता था कि तुम भी अपने सब चचाज़ाद भाइयों की ही तरह निकलोगे। तुम सब लोग मिल कर जैसे यह षड़यंत्र रचे बैठे हो कि मैं वेश्या-जीवन से मुक्ति पाने के लिये चाहे कितना ही छटपटाऊँ, लाख प्रयत्न करूँ, पर किसी भी हालत में मैं उस प्रयास में सफल न होने पाऊँ, और अंत में वेश्या की वेश्या ही बनी रहूँ। अपने इसी हताश प्रयास में मैंने श्मशान के उस चांडाल से—तुम्हारे

भुजौरियाजी से—विवाह किया, पर उस ब्रह्मराक्षस ने भरसक यह चेष्टा की कि मैं उस विवाहित स्थिति में भी गुप्त रूप से उसके परिचित राजा-रईसों के साथ व्यभिचार का संबंध स्थापित किये रहूँ, और उस उपाय से उसके कभी न भरे जा सकने वाले पाप के घड़े को सोने की मोहरों से भरती रहूँ। मेरे मन का और मेरी आत्मा का सब स्निग्ध रस सोखकर, मेरा सारा पार्थिव वैभव—मेरी माँ का दिया हुआ और अपना जोड़ा हुआ रुपया—भी उसने हड़प लिया। तुम्हें उसने उस दिन जो छुरा दिखाया उसका कारण यह नहीं था कि वह मुझे चाहने के कारण तुमसे ईर्ष्या कर रहा है। बल्कि यह था कि उसकी दृष्टि में तुम मरभुखे थे। अगर उसे यह उम्मीद होती कि तुमसे मेरा प्रेम-संबन्ध जारी रहने से उसे रुपया मिलता चला जायगा, तो वह अपने साथ मुझे ले जाकर तुम्हारे मकान पर पहुँचा आता। ऐसे पिशाच के साथ अपनी जवानी के पूरे पाँच वर्ष मुझे बिताने पड़े। इतना लंबा अर्सा मैंने प्रतिपल किस तरह जी मसोस कर, अपनी आत्मा को भीतर ही भीतर जला-जलाकर बिताया होगा—यह संसार में मेरे सिवा कोई नहीं जान सकता। जीवन में एक भयंकर भूल का प्रायश्चित्त मैं कर ही रही थी कि तुमने आकर उससे भी बड़ी भूल के भंवर में मुझे डाल दिया। तुमसे मैंने सच्चे अर्थों में प्रेम किया था। और तुम्हारे संग में रहकर यह स्वप्न देखने लगी थी कि जिस कठोर कारागार की गंदी कालकोठरी में मैं इतने दिनों तक बंद पड़ी थी उससे मुक्त करके तुम मुझे एक सुन्दर जीवन के आदर्श-पथ पर ले जाओगे। पर आज तुमने जिस नीचता का, जिस तंगदिली का परिचय दिया है, उससे मेरा सारा स्वप्न पल में नष्ट हो गया है। मैं निश्चित रूप से समझ गई हूँ कि अंत तक वेश्या जीवन बिताने के सिवा मेरे लिये और कोई चारा नहीं है। अच्छी बात है, मैं यही करूँगी। तुम सब जब यही चाहते हो तो यही होगा। तुम अपना

रास्ता पकड़ो, मैं अपना रास्ता पकड़ूँगी। इस समय से तुम्हारे साथ की कोई आवश्यकता मुझे नहीं है। तुम अगर वापस जाना चाहो तो मैं तुम्हें रुपया दिये देती हूँ।"

यह कहकर वह फनफनाती हुई उठ खड़ी हुई। पारसनाथ ने देखा कि दुःख और क्रोध के आँसुओं को वह बरबस पी जाने की चेष्टा कर रही थी। उस चरम क्षण में सहसा पारसनाथ के भीतर आत्मरक्षा की भावना जग उठी, और साथ ही उसकी दृष्टि भी यथार्थवादी बनकर चौकन्नी हो गई। वह कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ, उसके बाद उसने नीचे झुककर नंदिनी के दोनों पैर पकड़ लिये। बोला—अपनी नीचता के कारण मैं कुछ समय के लिये आत्म-विस्मृत और पागल हो उठा था, नन्दिनी! मैं तुमसे हृदय से क्षमा चाहता हूँ। मुझे बहुत दुःखी और अभागा जानकर क्षमा कर दो! मैं जानता हूँ, तुममें इतनी शक्ति और साहस है कि मुझे छोड़ने पर भी तुम अपना मन और मस्तिष्क स्वस्थ और स्थिर रख सकती हो; पर मुझमें अब इतना साहस नहीं रह गया है कि मैं तुम्हें छोड़कर अपना दिमाग़ एक दिन के लिये भी ठीक रख सकूँ। चाहे अच्छे के लिये हो या बुरे के लिये, अब तुम्हारे सिवा मेरी कोई दूसरी गति नहीं है। इसलिये मुझे निराधार मत छोड़ो, अपने चरणों में शरण दो!"

वह उसके दोनों पाँव पकड़े हुए ऊपर उसके मुख की ओर देख रहा था। नन्दिनी न तो छटपटाई, न उसने अपना पाँव हटाया। सहसा दो बूँद आँसू पारसनाथ के मुख पर ऊपर से टपक पड़े। पारसनाथ की आर्तवाणी से उसका नारी-हृदय फिर एक बार बरबस पिघल गया था, और साथ ही उसके आकस्मिक विद्रोह की क्षणिक प्रतिक्रिया भी शुरू हो गई थी।

बहुत चिरौरी करने के बाद पारसनाथ उसे पूरी तरह से शांत कर

पाया। उसके बाद उसने नये सिरे से चाय मँगाई। नाश्ता-पानी के बाद नन्दिनी ने अत्यंत गंभीर भाव से सुदृढ़ स्वर में कहा—"मैं यहाँ से सीधे अपनी बहन के यहाँ जाना चाहती हूँ। तुम्हें अगर कोई एतराज़ न हो तो मेरे साथ चले चलो। वर्ना यहीं बैठे रहो। या अगर वापस जाना चाहो तो ऐसा भी कर सकते हो—जैसे तुम्हारी इच्छा हो।"

उसके बोलने के ढंग में एक सुस्थिर और निश्चित कठोरता का आभास पाकर पारसनाथ के सिर से लेकर पाँव तक आग लग गई। पर उस आग को मन ही मन पीते हुए वह शांत भाव से बोला—"मैं वहीं चलूँगा जहाँ तुम जाओगी।"

तैंतीसवाँ परिच्छेद

होटल का बिल चुकाकर, सामान उठवाकर एक ताँगे पर लदवाया गया। उसके बाद स्वयं भी ताँगे पर बैठ गए। चौक के लिये ताँगा तय किया गया था। चौक पहुँचने पर एक ऊँचे मकान के पास नन्दिनी ने ताँगा रुकवाया। कुलियों से सामान ऊपर रखवाया गया। भाड़ा चुकाने के बाद नन्दिनी सीढ़ियों से होकर ऊपर तीसरी मंज़िल पर गई। पारसनाथ भी मन मारकर, ग्लानि की कड़वी घूँट को चुपचाप पचाने की चेष्टा करता हुआ, उसके पीछे-पीछे चला। ऊपर एक काफ़ी बड़े कमरे में फ़र्श पर बिछी हुई क़ालीन के ऊपर एक परम सुंदरी युवती बैठी हुई थी। उसका सिर खुला हुआ था। उसके मुख पर स्निग्ध-मधुर मुसकान के साथ ही जिज्ञासा का भाव भी वर्तमान था। दो पुरुष—बने-ठने, बाँके छैले—उसे घेरे हुए थे।

स्नेह-मरम स्वर में युवती ने कहा—"तुमने अपने आने की इत्तला भी नहीं दी, दीदी! जीजाजी कहाँ हैं?"

नंदिनी ने कुछ रूखे ढंग से कहा—"वह नहीं आए।"

पारसनाथ की ओर देखकर युवती ने नंदिनी से पूछा—"आपकी तारीफ़ ?"

"आप ही से पूछो !" यह कहकर नंदिनी सीधे भीतर के कमरे में चली गई।

युवती ने पारसनाथ से कहा—"आप खड़े क्यों हैं ? तशरीफ़ रखिए।"

पारसनाथ नंदिनी के व्यवहार से अपने को घोर अपमानित अनुभव करता हुआ अत्यंत संकुचित भाव से खड़ा था। एक तो नंदिनी का उस तरह का व्यवहार, तिसपर उन बाँके छैलों के बीच में वह अपने को या तो हंसों में काग या कौवों में हंस समझकर बहुत सिकुड़ा और सिमटा हुआ एक कोने पर खड़ा था। दोनों बाँके यद्यपि उसे देखकर मंद-मंद मुस्करा रहे थे, तथापि उनकी उस मुसकान की आड़ में विद्वेष और खीझ का भाव स्पष्ट परिस्फुट हो रहा था—जैसे वे पारसनाथ से कहना चाहते हों—"तुम हमारे रंग में भंग करने के लिये दुनिया के किस पर्दे से यहाँ आ टपके हो ?"

पर पारसनाथ जैसे क्रोध, घृणा और ग्लानि के 'मिक्शाचर' को अंतिम घूँट तक पीने के लिये क़सम खाये बैठा था। वह युवती के आदेशानुसार चुपचाप नीचे क़ालीन के ऊपर एक किनारे पर बैठ गया। युवती ने, शायद शिष्टाचारवश, उससे प्रश्न किया—"आप कहाँ से तशरीफ़ लाए हैं ?"

पारसनाथ के उत्तर देने के पहले ही भीतर से नन्दिनी की आवाज़ सुनाई दी—"निर्मला, ज़रा सुनना !"

युवती तत्काल वहाँ से उठकर, उपस्थित छैलों से कुछ देर के

तुम ने मुझ को दीवाना बनाया

लिये क्षमा माँगकर, भीतर चली गई। भीतर दोनों बहनों के बीच आपस में कुछ काना-फूसी चलने लगी। काना-फूसी का शब्द स्पष्ट सुनाई देता था, हालाँकि उस शब्द से यह जानना असंभव था कि क्या बातें हो रही हैं।

इस बीच उपस्थित बाँकों ने पारसनाथ से प्रश्न करना आरंभ किया—"जनाब का इस्मशरीफ़? दौलतख़ाना? कहाँ से आना हुआ? क्या काम करते हैं? यहाँ कब तक रहने का इरादा है?"—आदि-आदि। उन प्रश्नों का उत्तर देते हुए पारसनाथ को ग्लानि की घूँट कटु से कटुतर होती जाती थी। फिर भी उसने प्रत्येक प्रश्न का उत्तर बड़ी शिष्टता से दिया—सच-झूठ जैसा मुँह से निकला। उन बाँकों के पोशाक-पहनावे, आकृति-प्रकृति और बातचीत के ढंग से यह स्पष्ट था कि वे सब अर्द्धशिक्षित—बल्कि अशिक्षित—शोहदे हैं। "तब नन्दिनी की बहन ऐसे लोगों की संगति में पेशा करती है! और नन्दिनी भी निश्चय ही (विवाह के पूर्व) इन्हीं लोगों के हाथ अपनी जवानी बेचती रही होगी! और मैं यह सोचकर विजय के गर्व से फूला नहीं समाता था कि समाज की सुदृढ़ शृंखला में बँधी हुई एक सद्गृहस्थ महिला को भगाने में सफल हुआ हूँ! यह कितनी बड़ी विडम्बना है! भाग्य का कैसा क्रूर व्यंग है! और मञ्जरी की क्या दशा इस समय हो रही होगी! उफ़! क्या अभी उलटे पाँव उसके पास लौट चलूँ? और बच्चा! कू—ऊ—ऊ!....मुन्नू!—कू—ऊ—ऊ!... चुप! चुप! पागल! सब स्वप्न था—सब स्वप्न है—घोर दुःस्वप्न! प्रेतों और छायाओं की सारी भ्रामरी माया है! पागल! पागल कू—ऊ—ऊ!...मुन्नू!...कू—ऊ—ऊ!...चुप! चुप!..." वह भीतर ही भीतर धाड़ें मार-मारकर रोने लगा। कल्पना-जगत् के एक कल्पित स्थान पर खड़ा होकर बड़े-बड़े गरमागरम अदृश्य आँसू बहाने लगा—निरंतर बहाता चला गया। यहाँ तक कि उसी 'भ्रामरी माया' ने उन

आँसुओं की धार से एक गढ़ा भर दिया, जिसपर कूदकर पारसनाथ कुछ देर तक अपने को डुबाए रहा।

इतने में नंदिनी अपनी बहन के साथ बाहर आई। पारसनाथ के मुख का दयनीय भाव वह आज ही सुबह एक बार देख चुकी थी, पर जो दयनीयता इस समय उसके मुख पर छाई हुई थी वह ऐसा आश्चर्य-जनक था कि देखकर नंदिनी चौंक उठी। उसके मन में, न चाहने पर भी, एक अतलव्यापी समवेदना उथल उठी। उसने पारसनाथ को लक्ष्य करके कहा—"यहाँ क्यों बैठे हो! उठो, भीतर चलकर नहा-धोकर खाना खालो।"

पारसनाथ ने एक बार भ्रांत दृष्टि से उसकी ओर देखा, और फिर तत्काल उसने मुँह फिरा लिया, और निर्मला की ओर देखकर जैसे उसका रुख जानने की चेष्टा करने लगा। निर्मला ने एक बार नंदिनी की ओर देखकर पारसनाथ से कहा—"दीदी ठीक ही तो कहती है, जाइए, भीतर हो आइए।"

नंदिनी ने भी कहा—"उठो, उठो, अब देर न करो!"

पारसनाथ उठा और नंदिनी के साथ भीतर चला गया।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

उस दिन जब पारसनाथ रात-भर ग़ायब रहा, तो मंजरी को कुछ चिंता अवश्य हुई, पर विशेष नहीं। वह इस तरह की बातों की आदी हो चुकी थी। पर जब दूसरे दिन भी वह दिन-भर ग़ायब रहा और रात में भी नहीं आया, तो मंजरी की चिंता एकदम चरम सीमा को पहुँच गई, क्योंकि इस हद तक की ज़्यादती पारसनाथ ने पहले कभी नहीं की थी। तीसरे दिन सुबह भी जब वह नहीं आया तो मंजरी ने पासिन से

अत्यंत करुण स्वर में, प्रायः बिलबिलाते हुए कहा—"परबतिया, क्या ग़ज़ब हो गया। बाबू कल रात भी नहीं आए। कहीं किसी कारण से गिरफ़्तार तो नहीं हो गए ! या किसी एक्के, ताँगे या मोटर से दबकर किसी अस्पताल में तो नहीं पहुँचाये गए ! क्या होगा, परबतिया ! मुझपर न जाने यह कौन-सी महाविपत्ति की गाज गिरने जा रही है !" उसके गालों से होकर आँसू ढुलकते जा रहे थे, पर उन्हें पोंछने का होश उसे नहीं था। वह केवल विभ्रांत, विह्वल और व्याकुल दृष्टि से पासिन की ओर देख रही थी। पर वास्तव में पासिन की ओर देखने पर भी वह उसे नहीं देख रही थी। उसकी मानसिक आँखें किसी एक काल्पनिक अस्पताल के किसी वार्ड के एक पलँग पर आहत अवस्था में पड़े हुए पारसनाथ को देख रही थीं। वह देख रही थी कि उसके सिर पर, हाथों पर और पाँवों पर पट्टी बँधी हुई है, और वह असहनीय पीड़ा से छट-पटाता हुआ, व्याकुल वेदना से कराह रहा है।

पासिन ने कहा—"यही तो मुझे भी ताज्जुब हो रहा है, बहू, कि बात क्या हो गई। पर तुम बिलकुल फिकिर न करो। मैं अभी अपने भाई को भेजती हूँ, वह एक-एक करके शहर के सब अस्पतालों में जाकर पता लगा आवेगा, और हर-एक थाने में जाकर पूछताछ करेगा। मैं अभी जाकर उससे कहती हूँ।" यह कहकर वह चली गई।

मंजरी दिन-भर असहनीय मानसिक पीड़ा से बेचैन रही। चिंता के कारण उसने दिन-भर कुछ नहीं खाया। फल यह हुआ कि वह बच्चे को दूध पिलाने में असमर्थ रही। दूध बिलकुल सूख गया था। पासिन ने जब यह हाल देखा तो पास ही एक ग्वाले से पाव-डेढ़ पाव गाय का दूध उधार ले आई। वही बच्चे को पिलाया गया। घर में अभी कुछ आटा रखा हुआ था। पासिन ने चार रोटियाँ पकाकर और एक पानी की तरह पतली तरकारी बनाकर मंजरी को बलपूर्वक खिलाया। शाम को प्रायः सात बजे पासिन ने बड़े दुःख के साथ बताया कि उसका

भाई शहर के सब अस्पतालों में जाकर देख आया और सब थानों में जाकर खोज आया है, पर कहीं पारसनाथ का पता न चला। मंजरी को ऐसा मालूम हुआ जैसे अनंत विपत्तियों का आसमान उसपर एक-बारगी टूट पड़ना चाहता है। वह हताश भाव से पलँग पर लेट गई और दोनों हाथों से उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। बच्चा आज सुबह से केवल रोता था और खाँसता था। शायद ही एक क्षण के लिये वह शांत हुआ हो। इस समय भी, जब कि मंजरी अपनी निरुपाय अवस्था का अनुभव करके एकदम पस्त पड़ी हुई थी, बच्चा बुरी तरह बिल-बिलाता हुआ रो रहा था, और बीच-बीच में खाँसते-खाँसते काफ़ी देर तक दम नहीं ले पाता था। मंजरी सब सुन रही थी। बच्चे के निरंतर रोते रहने की आवाज़ गला फँस जाने की वजह से उस बकरे के मिमि-याने की तरह मालूम होती थी, जिसका सिर एक झटके से काटे जाने की चेष्टा में केवल आधा ही कटकर रह गया हो। सुन-सुनकर मंजरी का कलेजा फटा जा रहा था, जैसे कई तेज़ चाकुओं की चोटें उसके हृदय पर एक-साथ पड़ रही हों, जैसे उसका भाग्य उस बच्चे के बिल-खने और बिलबिलाने के रूप में उसके लिये कसक-कसककर रो रहा हो। उसे ऐसा लगता था जैसे वह अब कोई भी काम किसी भी रूप में करने में असमर्थ है; जैसे अब वह न हिल सकती है, न डुल सकती है, न बच्चे को दूध पिला सकती है, न किसी ढंग से उसे खेलाकर मना सकती है। एक ऐसी निपट निचेष्टा उसमें आ गई थी कि उसे लगता था जैसे उसका सारा शरीर पत्थर का बन गया हो। पारसनाथ के संबंध में एक अस्पष्ट संदेह धीरे-धीरे उसके मन में स्पष्ट से स्पष्टतर होता जाता था। उसका पिछले दिनों का प्रत्येक व्यवहार एक दूसरे ही प्रकाश में उसकी मानसिक आँखों के आगे आ रहा था। यह सत्य उसके भीतर उद्भासित हो रहा था कि प्रथम प्रेम-मिलन की रात में ही पारसनाथ ने उसके प्रति अपना सारा अंतरावेग उँड़ेल डाला था,

और उसके बाद दूसरे ही दिन से उस अंतरावेग की प्रतिक्रिया विचित्र रूपों में पारसनाथ की प्रत्येक बात से और व्यवहार से प्रकट होने लगी थी। उसकी जिस चिंतामूलक मानसिक स्थिति और रूखे व्यवहार का कारण वह उसकी शोचनीय आर्थिक परिस्थिति समझे बैठी थी उसका असली रूप आज श्मशान की चिता के-से प्रचंड प्रकाश में स्पष्ट प्रज्वलित होने लगा। उसे याद आया कि पारसनाथ ने अर्थ की तंगी के प्रश्न को अत्यंत करुण रूप में उसके सामने रखकर विवाह की बात को किस सफ़ाई से टाल दिया था, और उसने भी निपट मूर्खों कि तरह उसकी उस थोथी बात पर विश्वास कर लिया। केवल विश्वास ही नहीं किया, बल्कि तब से पारसनाथ के प्रति उसके मन में करुणा और अधिक वेग से उमड़ उठी थी, और स्नेह भी और अधिक उमङ्ग से उथल उठा था। दिन के बारह घंटों में से प्रायः आठ घंटे वह उसे अकेली छोड़-कर ग़ायब रहता था, और रात में भी ग्यारह-बारह बजे के पहले कभी घर नहीं आता था। कई बार रात-रात भर गायब रहा। तो भी वह अपने विवेक की आँखों को हठपूर्वक बंद किये रही। आज इतने दिनों बाद आँखें तब खुलीं जब बच्चे की माँ बनने के कारण आत्मरक्षा का कोई संबल उसके पास शेष न रहा। यदि बच्चा न होता तो वह स्वतंत्र होने के कारण इस विराट् विश्व में कहीं-न-कहीं अपने लिये ठौर-ठिकाना ढूँढ़ लेती—इतना आत्मबल उसमें था। पर वर्तमान अवस्था में वह एकदम पंगु हो गई है। एक पैसा उसके पास नहीं है। बच्चा बीमार है, उसके इलाज का कोई उपाय वह सोच नहीं पाती। न किसी डाक्टर को घर पर बुला सकती है, न इतनी स्फूर्ति उसमें शेष रह गई है कि बच्चे को लेकर किसी अस्पताल में या डाक्टर के पास हो आवे। स्वयं उसकी तबीअत ठीक नहीं है, और भोजन का कोई डौल नहीं है। क्या होगा ! क्या होगा ! पर क्या सचमुच पारसनाथ उसे छोड़-कर भाग गया है ! कोई भी मनुष्य क्या इस हद तक हृदयहीन पापिष्ठ

बन सकता है ? इस संसार में नीचता के उदाहरणों की कोई कमी अवश्य नहीं है, पर क्या इस हद तक......! वह अधिक कुछ सोच न सकी। इतनी देर तक जो क्रन्दन उसके भीतर बर्फ की तरह जमा हुआ था वह अंतर्ज्वाला के आकस्मिक विस्फोट की आग से गलकर उच्छ्वसित धाराओं में बाहर फूट पड़ा। वह बिलख-बिलखकर रोने लगी। पासिन पास ही स्तब्ध अवस्था में खड़ी थी। उसकी कुछ समझ ही में नहीं आता था कि उस मर्म-विदारक दुःख के लिये क्या सांत्वना दे। मंजरी रोते हुए बच्चे के मुख पर अपना निःसत्त्व स्तन लगाती हुई बिलबिलाते हुए स्वर में कहने लगी—"क्या होगा ? परबतिया, क्या होगा !" इसके सिवा वह और कुछ कह ही नहीं पाती थी।

"धीरज धरो, बहू, धीरज धरो ! सब ठीक हो जायगा। सब ठीक हो जायगा।"—पासिन ने कहा। पर वह स्वयं नहीं जानती थी कि कैसे वह असंभव अवस्था सुधर सकेगी। कुछ भी हो, वह पास ही एक ग्वाले के पास जाकर पाव-भर दूध का प्रबंध और कर लाई। उससे किसी तरह उस समय के लिये बच्चे का काम चलाया गया। पर बच्चे की तबीअत केवल दूध की कमी से ही नहीं, किसी एक दूसरे भयंकर कारण से भी ख़राब होती जाती थी। प्रायः आधी रात में उसे तेज़ बुख़ार आ गया, और उसके गले के भीतर 'घर्र-घर्र' शब्द होने लगा। पासिन अपने बच्चों को छोड़कर रात-भर मंजरी के पास पड़ी रही। पर बच्चे का कोई इलाज वह भी नहीं कर पाई। बच्चे का माथा तवे की तरह जल रहा था। ऐसा मालूम होता था कि वह न सो रहा है, न जाग रहा है। वह केवल अस्पष्ट-चेतन अवस्था में आँखें बंद किये लेटा था, और बड़ी तेज़ी से साँस लेता हुआ 'घर्र-घर्र' आवाज़ से गले के भीतर जमे हुए कफ के साथ जूझ रहा था। बीच-बीच में एक हलकी-सी कराह उसके मुँह से निकलती थी ! ऐसा मालूम होता था कि कराहने की भी शक्ति उसमें नहीं रह गई है। मंजरी अपने अंतर में एक मर्मघाती वेदना की

ऐंठन का अनुभव कर रही थी, और बीच-बीच में अस्फुट कंठ से केवल इतना ही कह पाती थी—"हे भगवान्! क्या होने जा रहा है? परबतिया, क्या होगा!" यह कहती हुई बीच-बीच में बच्चे के मुँह के भीतर ज़बर्दस्ती अपने रसहीन स्तन का मुख डालती जाती थी। बच्चा दो-एक बार अभ्यासवश स्तन चूसता था, और फिर तत्काल छोड़ देता था—दूध के अभाव के कारण नहीं, बल्कि पीने की असमर्थता या अनिच्छा के कारण।

दूसरे दिन पासिन अपनी एक रिश्ते की ननद को बुला लाई। उसने मंजरी से कहा कि उसकी वह ननद बच्चों के इलाज के लिये मुहल्ले-भर में प्रसिद्ध है। मंजरी ने अपनी हताश अवस्था में उसी से प्रार्थना की। उसने एक बार बच्चे की अवस्था देखकर न जाने किन-किन बूटियों का काढ़ा तैयार करके एक कपड़े में उसे छानकर चम्मच से बलपूर्वक बच्चे के मुँह में डाला। उसके बाद यह हिदायत देकर वह चली गई कि हर तीन घंटे के बाद वह दवा बच्चे को पिलाई जाय।

पर उस दवा से बच्चे की दशा सुधरने के बजाय और अधिक गिरती चली गई। गले का घरघराना इतना अधिक बढ़ गया कि साँस लेना कठिन हो गया। अंत में संध्या को प्रायः साढ़े सात बजे के समय गले के कफ की अत्यंत वृद्धि के कारण उसका दम घुट गया और वह चल बसा। मंजरी ज़मीन पर पछाड़ खाकर, गुहार मारकर रोने और चिल्लाने लगी। घंटों तक "हाय मेरे लाल! हाय मेरे लाल!" के सिवा और कोई शब्द ही उसके मुँह से नहीं निकला। पासिन स्वयं रो रही थी, इसलिये मंजरी को दिलासा कैसे देती। पासिन के दो-तीन रिश्तेदार आकर मृत शिशु को अंतिम संस्कार के लिये उठाकर ले गए।

आधी रात तक मंजरी रोती रही। उसके बाद जब थक गई तो फ़र्श पर ही औंधे मुँह लेटी रही। अपने दोनों हाथों पर वह अपना सिर रखे थी। उसके सिर के बाल दोनों ओर बिखरे पड़े थे। साक्षात् प्रेतिनी

का-सा रूप उसका हो गया था। औंधे मुँह लेटे-लेटे कुछ देर के लिये उसकी आँखें झप गईं। तीन दिन से वह एक पलक नहीं सो पाई थी, इसलिये बरबस उसे नींद आ गई। पर कुछ ही समय बाद वह अचानक अकचका कर जग पड़ी, और अपनी विकराल परिस्थिति की वास्तविकता नंगे रूप में उसके सामने आई। वह कहाँ जाये, कौन दयालु और श्री-संपन्न व्यक्ति आश्रय देगा! वह जीए तो कैसे जीए, और मरे तो कैसे मरे! आत्महत्या करने की भी स्फूर्ति उसमें कहाँ रह गई है! पर क्यों वह आत्महत्या करे! अपने किस अपराध के लिये? सहसा न जाने उसके अंतर्मन के किस अँधेरे कोने में राख से दबी पड़ी चिनगारियों ने ऊपर उठकर उसके मृतप्राय प्राणों में प्रतिहिंसा की ज्वालामयी चेतना धधकानी शुरू कर दी। और उसी चेतना ने उसमें आत्मरक्षा की प्रवृत्ति भी जगा दी। वह सोचने लगी—"मैं क्यों मरूँ? अभी मैंने जीवन को देखा ही क्या है, समझा ही कितना है? अभी तो मैंने केवल अपने अनुभवहीन सरल स्वभाव के कारण धोखा खाया है। उस धोखे ने मेरी कमर ही तोड़ डाली है, संदेह नहीं, पर उस टूटी हुई कमर को फिर से सीधा करना होगा। अपने स्वभाव की सरलता के कारण जो प्राणघाती अनुभव मुझे आज हुआ है उससे अगर मैं न उबर पाई, और उससे लाभ न उठा पाई तो मेरी इस कायरता को सहस्र बार धिक्कार है! मैं नहीं मरूँगी, नहीं मरूँगी! मैं जीऊँगी और अपने जीवन की महत्त्वाकांक्षा को पूरा करके छोड़ूँगी, और—उसके बाद? देखी जायगी। मैं नहीं मरूँगी! मरे वह अधम व्यक्ति जो अपने ही हाथों से रचे हुए नरक के बीच में गले तक डूब चुका है। वह निश्चय ही उसमें जलेगा, मरेगा और सड़ेगा। क्योंकि वह यही चाहता है। पर मैं इस घोर नरक के अनुभवों को यदि स्वर्ग की छाया में परिणत न कर पाई, तो मैंने क्या किया!"

इस तरह की कल्पना से उसे उस चरम दुःख की अवस्था में भी

एक अपूर्व और अप्रत्याशित बल प्राप्त हुआ। पर दूसरे दिन जब रात का अँधेरा हटने के बाद नियमित रूप से सूर्य निकला, तो उसका वह सारा काल्पनिक बल काफ़ूर हो गया, और कठोर वास्तविकता अपने विकराल जबड़ों को खोलकर उसे समूचा निगल जाने की धमकी दिखाने लगी। पार्मिन आई, और घर में जो थोड़ा सा आटा और बचा था उससे दो रोटियाँ पकाकर उसने हठपूर्वक मंजरी को खिलाया। खाना किसी तरह पेट में डालने के बाद मंजरी ने कहा—"परबतिया, मैं अब इस मकान में एक दिन भी नहीं रहना चाहती। तुमने मेरी घोर विपत्ति में मदद करके जो-जो तकलीफ़ें उठाई हैं उन्हें मैं मरते दम तक नहीं भूलूँगी। तुम मेरी माँ से भी बढ़कर हो। मुझे केवल इतना ही अफ़सोस है कि मैं तुम्हारे किसी काम में न आ सकी। और न कभी आ पाऊँगी, क्योंकि इसके बाद फिर कभी तुमसे भेंट कहाँ हो पावेगी, इसका कोई भरोसा नहीं है। जो भी हो, मेरी बहुत सी चीज़ें यहाँ पड़ी हुई हैं—बर्तन हैं, कपड़े हैं और छोटी-मोटी चीज़ें हैं। कुछ मेरी हैं, कुछ 'दूसरों' की हैं। इन्हें तुम चाहे बेच डालो, या कुछ करो। मकान-मालिक का थोड़ा-सा किराया बाक़ी होगा, उसे चुका कर जो कुछ बचे उसे तुम रख लेना। इससे अधिक मैं और क्या कर सकती हूँ! मैं अपने साथ अपनी किताबें दो-एक कपड़े और एक बक्स के सिवा और कुछ नहीं ले जाऊँगी।"

परबतिया चुपचाप अंचल से आँसू पोंछने लगी। मञ्जरी ने कहा—"रोओ नहीं पर्बतिया, रोना बेकार है। यह सब अपने-अपने भाग्य का भुगतान है। तुम एक एक्का तय कर दो। दो-चार आने पैसे मेरे पास हैं, किराये-भर को काफ़ी हो जावेंगे। उसके बाद मैं या तो किसी अनाथालय में चली जाऊँगी या और कहीं। एक होटल के मैनेजर से मेरी पहचान है, वहाँ ही जा सकती हूँ। जाओ, एक्का तय कर आओ, रोओ मत, मेरी भली दीदी! जाओ!"

पासिन—संभवतः अपनी विवशता का ख़याल करके—अकस्मात् फूटकर रो पड़ी। मंजरी ने बड़ी मुश्किल से उसे समझाया। चरम संकट के बाद भी अपने मन की तत्कालीन स्थिरता और दृढ़ता पर उसे स्वयं आश्चर्य हो रहा था। अंत में परबतिया गई और एक्का तय करके आई। बक्स एक्के तक पहुँचा कर, मंजरी को उस पर बिठाकर वह रोती हुई बिदा हुई।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

नंदिनी ने अपनी बहन निर्मला की बग़ल में ही एक मकान किराये पर ले लिया, और पारसनाथ को साथ लेकर उसी में रहने लगी। फल यह हुआ कि निर्मला से मिलने-जुलनेवाले दो-एक ख़ास-ख़ास व्यक्तियों ने समय-असमय नंदिनी से भी मिलना-जुलना आरंभ कर दिया। नंदिनी केवल शिष्टाचार के बतौर उन लोगों से बातें करके उन्हें बिदा कर देती थी। पर पारसनाथ इस बात को लेकर बीच-बीच में नंदिनी को जली-कटी बातें सुना दिया करता था। वह पारसनाथ की तत्कालीन मानसिक दशा को दयनीय समझकर उसपर काफ़ी रिआयत करती थी, और उसके कटु व्यंगों का उत्तर भरसक स्निग्ध और शांत भाव से देने का प्रयत्न करती थी। पर पारसनाथ की जलन उसे—नन्दिनी को—कभी घड़ी-भर के लिये भी चैन नहीं लेने देती थी। वह बात-बात में अपनी कटूक्तियों द्वारा उसे मार्मिक चोट पहुँचाया करता था, और जब नन्दिनी कभी-कभी खीझ उठती या रो पड़ती, तो वह तत्काल गिड़गिड़ाकर, अपनी पीड़ित मानसिक अवस्था को अत्यंत दयनीय रूप से उसके सामने रखकर क्षमा माँग लेता। पर फिर दूसरे दिन उसका व्यंग-चक्र नियमित रूप से चलने लगता। अंत में, उसके कटु

वचनों और व्यंगवाणों से नंदिनी इस क़दर तंग आ गई कि उसने भी उसे जानबूझकर जलाने का निश्चय कर लिया। पहले वह केवल शिष्टता-वश बाहर के मिलने-जुलने वाले व्यक्तियों से बातें किया करती थी। बाद में वह जानबूझकर हाव-भाव के साथ उनसे रंग-रस की बातें करने लगी! पारसनाथ भीतर-ही-भीतर जल-भुनकर, मन-ही-मन सिर धुनकर और जी मसोस कर रह जाता था। मज़ा यह था कि नंदिनी ज्यों-ज्यों उसे जलने का कारण देती थी त्यों-त्यों पारसनाथ के मन का लगाव उसके प्रति बढ़ता चला जाता था। पारसनाथ को इस बात पर बड़ा आश्चर्य होता था कि जितना ही अधिक वह नन्दिनी से घृणा करना चाहता है उतना ही उसके प्रति आकर्षित क्यों हुआ जाता है? क्या ईर्ष्या में यह विशेषता है कि वह प्रेमाकर्षण को सान पर चढ़ा देती है? जब तक उसे यह बात मालूम थी कि नंदिनी पूर्ण रूप से उसके वश में है, तब तक कभी एक दिन के लिये भी उसने अनुभूति की उस तीव्रता का अनुभव नहीं किया जिसका अनुभव वह आज कर रहा है, जबकि वह निश्चित रूप से जानता है कि नन्दिनी उसके वश के बाहर हो गई है। इस अनुभूति के मूल में कौन-सी प्रवृत्ति काम कर रही है? क्या यही वास्तविक प्रेम की वेदना है? या यह ज्वलनशीलता उसके पराजित अहम् की प्रतिक्रिया है? ठीक है, यही बात है। नन्दिनी से उसके प्रेम का कोई प्रश्न ही अब नहीं उठ सकता, क्योंकि यह निश्चित है कि दोनों एक दूसरे को अंतर से घृणा करने लगे हैं। फिर भी एक-दूसरे का साथ छोड़ना नहीं चाहते, इसका कारण है। शायद सब नशों में प्रेम ही एक ऐसा नशा है जिसका मज़ा नशे की मूल अवस्था की अपेक्षा खुमार की हालत में अधिक मिलता है। या विभिन्न व्यक्तियों के प्रेम के नशे की प्रतिक्रिया भी भिन्न-भिन्न होती है! मञ्जरी ने प्रेम की जो बोतल उसे पिलाई थी, उसका जो सुख नशे की हालत में प्राप्त हुआ था, खुमार की हालत में

वह उतना ही विरस मालूम होने लगा था। पर नंदिनी के प्रेम की मादकता उतनी उत्तेजक नहीं मालूम हुई जितनी उसकी प्रतिक्रिया मालूम हो रही है। कुछ भी हो, यह निश्चित है कि नंदिनी अब उससे पिंड छुड़ाना भी चाहे, तो वह किसी भी हालत में अब उसे नहीं छोड़ेगा—चाहे उसे ईर्ष्या से कितना ही जलना पड़े, चाहे कितना ही अपमानित होना पड़े।

इस निश्चय के साथ पारसनाथ नंदिनी के अंचल में न जाने किस गोंद की करामात से चिपका रहा। प्रतिदिन के कलह-संशय, राग-द्वेष प्रेम का स्वाँग और घृणा की वास्तविकता के बीच दोनों का जीवन बीतता चला गया। आश्चर्य है कि प्रायः पौने दो वर्ष तक दोनों इस प्रकार की अस्वाभाविक मानसिकता के द्वन्द्व-चक्र के बावजूद पति-पत्नी का-सा संबंध निबाहते चले गए। पर दूसरा वर्ष समाप्त होते-न-होते एक ऐसा व्यक्ति उन दोनों के बीच में आया जिसने उन दोनों के पारस्परिक संबंध की सीमा-रेखा पर विभाजन की एक निश्चित दीवार खड़ी कर दी। उस व्यक्ति की अवस्था तीस से दो-एक वर्ष ऊपर होगी। वह देखने में बहुत सुन्दर था और सभ्य था। उसके शांत और मधुर स्वभाव की शालीनता प्रथम दृष्टि में ही किसी भी व्यक्ति पर अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रह सकती थी। वह विलायती फ़ैशन में रहता था। उसे देखते ही मन पर यह प्रभाव पड़ता था कि वह एक कुलीन घराने का पैसेवाला व्यक्ति है। उसके मुख के भाव से ऐसा जान पड़ता था कि जीवन के गहरे अनुभव से उसका आभिजात्य सुसंयत होने पर भी अधिक पुष्ट हो गया है, और उसी कारण से उसमें आत्मविश्वास का भाव जम गया है। उस व्यक्ति का नाम था ठाकुर वीरेन्द्रकुमार सिंह। वीरेन्द्रकुमार एक उजड़े हुए किंतु तेजस्वी ताल्लुकेदार वंश के टिमटिमाते हुए 'अंतिम तारे थे। उनके पिता के जमाने में ही उनकी सारी संपत्ति 'कोरट' हो चुकी थी। अपने स्वर्गीय पिता

की वह एकमात्र संतान थे। प्रख्यात और प्रभावशाली वंश को अधिक दुर्गति से बचाने के उद्देश्य से उन्होंने विवाह नहीं किया था। उनके अपने खर्च के लिये अब भी काफ़ी संपत्ति बची हुई थी, जिसे वह बड़े ढङ्ग से खर्च करते थे। आमोद-प्रमोद के प्रेमी वह अवश्य थे, और उनका सारा जीवन ऊँचे दर्जे की वेश्याओं के बीच में बीता था। पर उस आमोद-प्रियता को वह एक विशेष सीमा के बाहर नहीं जाने देते थे। वेश्याओं के पीछे वह काफी रुपया खर्च कर चुके थे, और अब भी करते थे। पर इस युक्ति से करते थे कि कभी उन्हें बाहर से रुपया क़र्ज़ नहीं लेना पड़ा। अपनी सीमित संपत्ति को वह दो-एक विशेष व्यवसायों द्वारा यथाशक्ति बढ़ाते भी जाते थे। ग़रज़ यह कि उनके जमाखर्च का हिसाब देखे जाने पर ख़र्च का खाता जमा के खाते से दौड़ में पिछड़ा ही रहता था।

नंदिनी से उनका परिचय तब हुआ जब वह वेश्याओं के निकट संपर्क में आने के कारण उनके बाहरी और भीतरी जीवन के संबंध में विशेष जानकारी प्राप्त कर चुके थे। तरह-तरह की वेश्याओं के स्वभाव-चरित्र का गहरा अनुभव होने का ही यह फल था कि नंदिनी ने प्रथम दृष्टि में ही उन्हें प्रबल रूप से आकर्षित कर लिया। वह उन्हें जैसी ही सुसंस्कृत जान पड़ी वैसी ही सहृदय भी। साथ ही उनके स्वभाव की स्फूर्ति और सजीवता ने उन्हें और अधिक मोह लिया। प्रारंभ से ही वह केवल शिष्टाचार के बतौर ही नहीं, बल्कि आंतरिक सम्मान से उसके साथ पेश आए। फल यह हुआ कि नंदिनी पर भी उनकी आकृति-प्रकृति और शील-स्वभाव का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। पारसनाथ के स्वभाव से उनके शांत और संयत स्वभाव की तुलना करने पर वह और अधिक प्रभावित हुई।

ठाकुर साहब ने पहले निर्मला के यहाँ गाना सुनने के उद्देश्य से आना शुरू किया था। वहीं नंदिनी के साथ उनका परिचय हुआ।

धीरे धीरे उन्होंने नियमित रूप से उसके यहाँ आना जाना शुरू कर दिया। प्रायः प्रतिदिन शाम को दो-तीन घंटा वह उसके साथ गपशप में बिताते थे। पारसनाथ को ऐसा महसूस होने लगा जैसे किसी हिंसक जंतु ने उसके भीतर पैठकर उसके कलेजे को बुरी तरह झँझोड़ना शुरू कर दिया है। उस जंगली जानवर से अपने को छुड़ाने की जितनी ही चेष्टा वह करता उतना ही अधिक उसके तीखे पंजों से क्षत-विक्षत होकर लहू-लुहान हो जाता। इसके सिवा और कोई लाभ छटपटाने से न होता। फिर भी वह छटपटाता ही रहता, और बात-बात में नंदिनी को कटु व्यंग के चाकू से छेदते रहने की चेष्टा करता रहा। एक दिन रात के समय नंदिनी को एकांत में पाकर उसने कहा—"तुम फिर से वेश्या का पेशा स्वीकार करने के लिए बेचैन हो उठी हो, और अपनी स्वभावगत निर्लज्ज नीचता का परिचय फिर से देना चाहती हो!"

क्रोध को बलपूर्वक पीने की चेष्टा करते हुए नंदिनी ने ऊपर से बनावटी शांत भाव जताकर कहा—"हाँ, मैं यही चाहती हूँ। मैं वेश्या थी और वेश्या होकर रहूँगी—इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है!"

"होकर रहोगी नहीं, तुम बराबर ही वेश्या रही हो। भुजौरियाजी से शादी करने पर भी तुमने मेरे साथ प्रेम-संबंध स्वीकार करके अपनी वेश्या-वृत्ति का ही परिचय दिया है। अब यहाँ आकर तुमने ढोंग का नक़ाब अच्छी तरह उतार डाला है।" इस मार्मिक कटूक्ति से नंदिनी बेतरह तिलमिला उठी। जिस व्यक्ति को उसने एक दिन अपने आदर्श की कल्पना का सजीव रूप समझा था, वह इस हद तक अमानुषिक निष्ठुरता और पाशविक नीचता का परिचय दे सकता है, यह उसने कभी नहीं सोचा था। इस बार उसके भीतर क्रोध का भाव तनिक भी नहीं जगा, बल्कि लोमहर्षक आतंक ने

उसे धर दबाया। उसके भीतर मानवता के प्रति रहा सहा विश्वास भी भूकंप के एक भयंकर धक्के से ढहने की तैयारी करने लगा। कुछ देर तक वह स्तब्ध खड़ी रही। उसके बाद धीरे से बोली—"हाँ, तुम ठीक ही कहते हो। मैं बराबर ही वेश्या रही हूँ। वेश्या कभी एक व्यक्ति के साथ बँधी नहीं रह सकती, ख़ासकर उस व्यक्ति के साथ जिससे आर्थिक लाभ होने के बजाय, उलटा उसे खिलाना-पिलाना पड़े। इसलिये आज तक तुम्हारा और मेरा जो संबंध रहा है, आज से, इसी क्षण से, उसका ख़ातमा समझो। आज तक मुझमें इस बात की क्षीण आशा वर्तमान थी कि तुम्हारी मति सुधर जायगी। पर अब मेरे मन में यह निश्चित धारणा जम गई है कि तुम इस जन्म में बदल नहीं सकते, बल्कि समय के साथ-साथ पतन के गढ़े की ओर अधिक गहराई में गिरते चले जाओगे। केवल तुम ही नहीं गिरोगे, बल्कि अपने संसर्ग में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को भी अपने साथ ही ढकेले लिए जाओगे। फिर भी मेरा जो पतन हो चुका है उससे अधिक अब हो नहीं सकता। इसलिये अगर तुम चाहो तो तुम्हारे खाने, पीने और रहने की सुविधा में कोई कसर अब भी नहीं होगी, पर इसके सिवा कोई भी दूसरा संबंध तुम्हारे साथ अब मेरा नहीं रहा। तुम यहाँ रहना चाहो तो रहो और जाना चाहो तो जाओ—जैसी तुम्हारी इच्छा। खूब सोच लो!"

पारसनाथ को अपने ऊपर ऐसा तरस आया जैसा कभी नहीं आया था। उसकी इच्छा हुई कि गुहार मार कर रोवे, और अपने रोने की आवाज़ से सारी पृथ्वी और आकाश को गुँजा दे। वह कई दिनों से इस बात पर अच्छी तरह ग़ौर कर रहा था कि उसकी मनोवृत्तियाँ दिन पर दिन विकृत से विकृततर होती चली जाती हैं, और वह विकृति धीरे-धीरे उस सीमा को पहुँचती जाती है जो उपचार के परे है। आत्म-सम्मान की जिस भावना को वह पहले ही खो चुका था

वह जैसे अब एकदम रसातल को पहुँच चुकी थी—कहीं खोजने पर भी उसका पता नहीं मिलता था। तिस पर मज़े की बात यह थी कि उसकी स्त्रैण—बल्कि नपुंसक—भावुकता दिन पर दिन बढ़ती चली जाती थी, और ज़रा-ज़रा सी बात पर वह उत्तेजित हो उठता था। एक झूठे आत्म-सम्मान के मनोभाव की ओछी गंध उसमें अब भी शेष थी, और वह बात-बात में यह कहने का आदी हो गया था—"यह सरासर मेरा अपमान है! मैं इस तरह की बातें सहने का आदी नहीं हूँ!" और तिस पर भी वह बड़े मजे से हर तरह के अपमान की बात सहकर दो वर्षों से नंदिनी को घेरे हुए था। उसकी इस तरह की बातें सुनकर नंदिनी को हँसी भी आती थी और दुःख भी होता था। भावुकता की वृद्धि के साथ ही साथ वह बात-बात में क्रोधावेश में आकर नपुंसक आँसू भी गिरा देता था। इन सब कारणों से नंदिनी को अपनी स्थिति बड़ी जटिल मालूम होने लगती थी। पारसनाथ के कटु वचनों से खीझकर जब कभी-कभी वह भी पलटे में कुछ कह बैठती तो उसकी आँखों में आँसुओं का आभास देखकर वह करुणा से एकदम पिघल जाती थी। यही कारण था उसके संग से मुक्त होने की एकांत इच्छा रखते हुए भी वह अपने किसी आदमी के द्वारा बलपूर्वक उसे मकान से बाहर खदेड़ने में अपने को असमर्थ मालूम करती थी।

भीतर ही भीतर बिलबिलाने पर भी पारसनाथ ने अपने आँसुओं को बरबस रोककर कहा—"तुम मुझे अपने घर से निकालने की चाहे लाख चेष्टा करो, पर मैं अब किसी तरह भी नहीं निकल सकता। मैं तुम्हें अपने साथ भगाकर यहाँ नहीं लाया, बल्कि तुम मुझे भगा लाई हो। मेरा जीवन एक निश्चित पथ पर चल रहा था—दुःख से या सुख से। पर तुमने बीच में आकर उसे इस तरह छिन्न कर दिया कि अब वह तार जुड़ नहीं सकता। अब मुझमें ऐसी भयंकर जड़ता आ गई है कि

में किसी तरह का भी चित्र अंकित नहीं कर सकता, और अपने पेट-भर के लिये भी रोटी नहीं कमा सकता। तुम्हारा साथ देकर मैंने जो अनर्थ किया है उसका उल्लेख तुम्हारे आगे मैं इस जन्म में नहीं कर सकता, और जो रास्ता छूट गया है उस पर लौट चलने का कोई उपाय भी मेरे लिये अब नहीं रह गया। इसलिये मैं अब तुम्हें छोड़ नहीं सकता—चाहे लाख अपमानित होऊँ, चाहे दुर्गम की चरम सीमा को पहुँच जाऊँ।” यह कहकर वह जैसे धरना देने के इरादे से दरवाजे के चौखटे पर बैठ गया। नंदिनी ने आज इस बात पर ग़ौर किया कि इधर कुछ समय से उसके मुख की आकृति भी बड़ी भयावनी हो उठी है। विशेष कर उसकी आँखें चोरों, गुंडों और पेशेवर दुष्कर्मियों की तरह दिखाई देने लगी थीं। वह सचमुच आजकल किसी अनिष्टकारी प्रेत से भी अधिक डरावना दिखाई देने लगा था। नंदिनी को पारसनाथ का वह कथन फिर याद आया—“मैं प्रेत हूँ और तुम छाया!” उसने सोचा—“मैं छाया हूँ या नहीं, यह प्रश्न ही दूसरा है, पर सामने हत्या देकर बैठा हुआ यह व्यक्ति निश्चय ही प्रेत है। कैसे इस जीवित प्रेत से छुटकारा मिलेगा? कैसे? एक ब्रह्मराक्षस से बड़ी मुश्किल से छुटकारा मिला तो ऐसे रसिक प्रेतात्मा के चंगुल में आ फँसी हूँ, जो पिछले व्यक्ति से भी कई गुना अधिक भयंकर सिद्ध हो रहा है। अगर उसका लिहाज़ करके मैं इसी त्रिशंकु की-सी अवस्था में लटकी रह गई तो मेरा मरण निश्चित है। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। जब मैंने वेश्या का जीवन फिर से स्वीकार करने का इरादा कर ही लिया है, तो उस इरादे को जल्दी से जल्दी पूरा कर लेना चाहिये।”

वह सोचकर उसने उसी दिन ठाकुर साहब के उस अनुरोध का पालन करने का निश्चय कर लिया जिसे वह इतने दिनों तक बराबर टालती जाती थी। ठाकुर साहब को मालूम हो गया था कि नंदिनी पर मुजरा किसी ज़माने में बड़ा ठाटदार हुआ करता था। इसलिये

कुछ दिनों से वह उससे अत्यंत विनम्रतापूर्वक अनुरोध कर रहे थे कि एक दिन पूरे साज़ो-सामान के साथ उसका मुजरा हो जावे। नंदिनी उनकी इस बात को परिहास में टालकर तत्काल किसी दूसरे ही विषय की चर्चा चला देती थी। पर आज उसके विद्रोह ने एक और निश्चित क़दम बढ़ाने का पक्का इरादा कर लिया। वह उसी क्षण निर्मला के पास गई और उससे मीरासी, तबलची आदि बाजगीरों का प्रबंध कर देने के लिये कहा।

शाम को ठाकुर साहब नियमित समय पर आए, और आज भी उन्होंने डरते-डरते उसी बात के लिये सविनय अनुरोध किया। नंदिनी ने बड़े नाज़ के साथ मंद-मधुर मुस्कराते हुए कहा—"अच्छी बात है। जब आपकी इतनी प्रबल इच्छा है, तो यही होगा।" यह कहकर उसने अपना नौकर भेजकर बजवैयों को बुलाया। बाक़ायदा, पूरे ठाट से मुजरा शुरू हुआ। ठाकुर साहब पुलकित भाव से गाना सुनते रहे, और एक क्षण के लिये भी नहीं उकताए। पारसनाथ छाती पर पत्थर रखकर भीतर के कमरे के एक पलँग पर लेटा सुन रहा था।

छत्तीसवाँ परिच्छेद

तब से नंदिनी ने नियमित रूप से गायिका का पेशा स्वीकार कर लिया। पारसनाथ से अब वह किसी तरह की भी कोई बात नहीं करती थी। पारसनाथ जब कभी अपने जले दिल के फफोले फोड़ने के लिये उसे घेरना चाहता, तो वह कतराकर निकल जाती। आरंभ में कुछ दिनों तक वह भीतर-ही-भीतर बहुत बौखलाया और छटपटाया, पर बाद में धीरे-धीरे वह एक प्रकार से आदी हो गया, यहाँ तक कि वह कभी कभी स्वयं भी मुजरे के अवसर पर बीच महफ़िल में जाकर बैठ जाता

—उसके आत्म-सम्मान की भावना इस क़दर जड़ बन गई थी। अवस्था यहाँ तक पहुँची कि जिस व्यक्ति के कारण उसके भीतर ईर्ष्या की आग धधक उठी थी उसका परिचय व्यक्तिगत रूप से प्राप्त करने के लिये वह उत्सुक हो उठा। दो-तीन मौक़े ऐसे आ गए जब ठाकुर साहब से आठ-आठ, दस-दस मिनट तक उसकी बातें हुईं। उसके बाद ठाकुर साहब के अत्यंत सभ्य और शिष्ट व्यवहार से प्रभावित होकर वह धीरे-धीरे उनके साथ अपेक्षाकृत बेतकल्लुफ़ी से बातें करने का आदी हो गया। ठाकुर साहब को जब यह मालूम हुआ कि पारसनाथ एक अच्छा चित्रकार है, तो इस बात ने उनकी रईसाना तबीअत को गुदगुदा दिया। यह जानकर कि पारसनाथ की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है वह उसे 'पेट्रोनाइज़' करने के लिये उत्सुक हो उठे, हालांकि पारसनाथ से इस संबंध में कुछ कहने का साहस उन्हें नहीं हुआ, क्योंकि वह यह बात ताड़ गए थे कि उस-में एक प्रकार के झूठे अभिमान की तीखी अनुभूति वर्तमान है। उसके भीतरी जीवन के संबंध में विशेष बातें मालूम न होने पर भी ऊपरी बातों से वह यह अनुमान लगा पाए थे कि वह एक 'निराश प्रेमिक' है।

एक दिन ठाकुर साहब तीसरे पहर, चार बजे के क़रीब, नंदिनी के यहाँ आए। नंदिनी को उस दिन उसके एक पुराने परिचित राजा साहब के यहाँ चाय-पार्टी में निमंत्रण था। ठाकुर साहब किसी तरह शाम गुज़ारना चाहते थे। उन्होंने पारसनाथ से यह प्रस्ताव किया कि किसी होटल में जाकर पान-भोजन किया जाय। इधर कुछ दिनों से पारसनाथ की मद्य-पिपासा प्रबल हो उठी थी। नंदिनी ने उसके खाने-पीने और रहने की सुन्दर सुविधा कर दी थी, और जेब-ख़र्च के लिये भी वह उसे माहवार एक निश्चित रक़म दे दिया करती थी। पर वह आजकल इतना अधिक पीने लगा था कि उतने जेब-ख़र्च से पूरा

नहीं पड़ता था। इसलिए किसी भी व्यक्ति की तरफ़ से आया हुआ 'पान' का प्रस्ताव उसे सहर्ष मान्य था।

दोनों एक मध्यश्रेणी के होटल में गए। ठाकुर साहब ने एक बढ़िया ह्विस्की का आर्डर दिया। जब पीने का क्रम चलने लगा और दोनों बहुत कुछ तरंगित हो गए, तो ठाकुर साहब ने एक सिगार जलाते हुए कहा—"आपसे आज एकांत में मिलने का सौभाग्य प्राप्त होने पर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। जब से मुझे मालूम हुआ कि आप चित्रकार हैं तब से मैं इस बात के लिये मौका ढूँढ़ रहा था कि आपसे दिल खोलकर बातें करूँ। नन्दिनी बाई के सामने किसी कारण से आपसे खुलकर बातें करने का साहस मुझे नहीं होता था। जो भी हो, क्या मैं यह पूछने की धृष्टता कर सकता हूँ कि नन्दिनी बाई से आपका परिचय कब, किस सिलसिले में हुआ।"

पारसनाथ ने जब 'नन्दिनी बाई' सुना तो उसके हृदय को अज्ञात में एक धक्का-सा पहुँचा। उसे याद आया कि वह कितने सम्मान से उसे 'नन्दिनी देवी' कहकर पुकारा करता था। "तब मुझे क्या पता था कि वह नख से लेकर शिख तक केवल 'बाई, ही बाई है!"—उसने सोचा। एक क्षण के लिये भी उसने इस दृष्टि से नहीं सोचा कि नन्दिनी वेश्या-जीवन से मुक्ति पाने के लिये वर्षों से सच्चे हृदय से छटपटा रही थी, और इसी उद्देश्य को सामने रखकर वह भुजौरियाजी से विवाह करने को राज़ी हुई थी, पर भुजौरियाजी उसे जिस प्रकार का जीवन बिताने को बाध्य करना चाहते थे उससे वेश्या-जीवन कहीं अच्छा था। उसके बाद उसके हताश हृदय ने यह आशा की थी कि पारसनाथ के साथ वह सच्चे प्रेम से पूर्ण, सम्माननीय गृहस्थ-जीवन बिताने में समर्थ हो पावेगी। पर पारसनाथ ने भागने के बाद ही जिस विचित्र मनोवृत्ति का परिचय देना शुरू कर दिया था, उसने नंदिनी के

लिये यह असंभव हो गया कि वह उसके साथ सहज संबंध स्थापित किये रहे। कोई गति न देखकर उसने खीझ और आत्मविद्रोह की भावना से प्रेरित होकर फिर से वेश्या का जीवन बिताने का निश्चय किया था। हालाँकि नंदिनी ने क्रोध और आत्म-करुणा के आवेश में अपनी सारी स्थिति की सचाई उसे समझा दी थी और उसका अंतर्मन स्वयं भी समझा हुआ था, फिर भी उसका सचेत मन अपने को किसी प्रकार भी दोषी ठहराने को तैयार नहीं था। और सब समय, हर घड़ी वह इस भावना को मन में पाले रहता था कि नंदिनी ने उसके साथ घोर नीचतापूर्ण और कृतघ्न व्यवहार किया है, जैसा कि केवल एक वेश्या ही कर सकती है। इसलिये जब ठाकुर साहब ने 'नंदिनी बाई' कहा, तो पारसनाथ को प्रथम क्षण में एक हलका सा धक्का अवश्य पहुँचा, पर दूसरे ही क्षण उसकी प्रतिहिंसापूर्ण मनोवृत्ति को इस बात से विशेष सुख का अनुभव हुआ कि यदि नंदिनी के संसर्ग में आने से वह आत्म-सम्मान और पुरुषार्थ गँवाकर पतन की चरम सीमा को पहुँचा है, तो वह भी 'देवी' से केवल 'बाई' बनकर रह गई है।

ठाकुर साहब के प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने कहा—"मैं उन्हें चित्रकला सिखाया करता था।"

ठाकुर साहब का मुख पुलक-भरी प्रसन्नता से चमक उठा। उन्होंने कहा—"क्या नंदिनी बाई चित्रकला भी जानती हैं? सचमुच! उन्होंने तो मुझसे इस बात का कोई ज़िक्र नहीं किया! खैर, इस विषय पर उनसे फिर कभी बातें होंगी। जो भी हो, क्या मैं एक और बात की धृष्टता कर सकता हूँ?"

पारसनाथ ने जिज्ञासु-दृष्टि से उनकी ओर देखा। ठाकुर साहब बोले—"नंदिनी बाई के साथ आपका केवल शिक्षक और शिक्षार्थिनी का ही संबंध रहा है या—?"

एक घूँट और लेने के बाद पारसनाथ ने गंभीर दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए परम धैर्य के साथ कहा—"आपका संदेह ठीक है। हम दोनों का संबंध विशेष रूप से घनिष्ठ रहा है।"

एक अस्पष्ट किंतु गंभीर व्यंग का आभास ठाकुर साहब के मुख पर छाकर तत्काल विलीन भी हो गया। उस भाव को बड़ी सफ़ाई से सहज सहृदयता में बदलते हुए उन्होंने कहा—"मेरा यह भी अनुमान है कि वह अब भूत-काल की बात हो गई है, और वर्तमान में आप दोनों के बीच एक गहरी खाई खुद चुकी है। है न ?"

खीझ-भरी उदासी के साथ पारसनाथ बोला—"जी हाँ। आपने ठीक ही अनुमान लगाया है।"

सिगार 'ऐश ट्रे' पर रखकर ठाकुर साहब ने एक गहरी घूँट ली। उसके बाद ज़रा सँभलकर बैठ गए, और फिर बोले—"देखिए साहब, दूसरों के व्यक्तिगत जीवन की बातों को जानने या उनमें दख़ल देने का कोई अधिकार मुझे नहीं है। फिर भी आपके 'प्राइवेट' जीवन की बातों में मुझे क्यों इतनी दिलचस्पी मालूम हो रही है, मैं स्वयं नहीं जानता। पर चूँकि इस समय दोनों हमप्याला हैं, इसलिये आशा करता हूँ कि आप मेरी अनधिकार चेष्टा को क्षमा कर देंगे। आज तक न नंदिनी बाई से आपके विषय में कोई बात मुझे मालूम हुई है, और न आपसे उनके संबंध में। फिर भी आपके मुख पर मैं हर समय जो एक गहरी उदासी की छाया देखता आया हूँ और इस बात पर ग़ौर करता रहा हूँ कि आप दोनों एक दूसरे के इतने निकट रहने पर इतने दूर-दूर रहते हैं, उससे मेरे मन में एक विशेष संदेह उत्पन्न हुआ है। आपने अभी बताया है कि आप दोनों का घनिष्ठ संबंध रह चुका है। वह घनिष्ठता किस हद तक रही है, इसका ठीक-ठीक अंदाज़ लगाना कठिन है। फिर भी इतना मैं निश्चित रूप

से कह सकता हूँ कि नंदिनी बाई ने व्यावसायिक दृष्टि-कोण को सामने रखकर आपसे घनिष्ठता का संबंध स्थापित नहीं किया होगा। देखिए, मैं इस समय तरंग में हूँ, इसलिये मेरी बात पहले पूरी तरह धैर्य से सुन लीजिए, तब आपको जो-कुछ कहना हो, कहिएगा। अपने जीवन में मैं बहुत-सी वेश्याओं के घनिष्ठ संपर्क में आया हूँ। उस अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि नंदिनी बाई बाहर से एक ठेठ वेश्या का जीवन बिताने पर भी भीतर से विशुद्ध नारी हैं। उनकी अंतरात्मा में वेश्यापन की बू-बास भी नहीं है। इसी लिये मैं कह रहा था कि आपसे उनका संबंध कभी व्यावसायिक नहीं रहा होगा। यह सब होने पर भी आजकल आप दोनों के बीच घोर अनबन के चिह्न मैं स्पष्ट देख रहा हूँ। इस अनबन का कारण चाहे कुछ भी रहा हो, पर इतना स्पष्ट है कि वह कारण नंदिनी बाई की तरफ़ से नहीं आया होगा। बल्कि आपकी असहनशीलता ही (साफ़गोई के लिये मुझे क्षमा कीजिएगा) इस अनबन के मूल में रही होगी। आपके मुख पर सब समय जो एक विशेष प्रकार की खीझ और घृणा का भाव छाया रहता है वह इस बात का प्रमाण है कि आप व्यक्तियों के प्रति—विशेष कर स्त्री-जाति के प्रति—बहुत ही असहनशील हैं! भाई साहब, आपको यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि भारतीय वेश्या के समान करुणाशील और उदार प्राणी का जोड़ मिलना कठिन है। मैं इस ज्वलंत सत्य पर पर्दा नहीं डालना चाहता कि यथार्थ जगत् की बहुत-सी वेश्याएँ ऊपर से बड़ी लोभी, संकीर्ण-हृदय, मूर्ख और घोर स्वार्थी लगती हैं, पर अगर उनके भी बाहरी जीवन का कड़ा चमड़ा चीरकर देखा जाय तो भीतर स्वस्थ प्रेम और सच्ची करुणा के सैकड़ों सोते फूटते हुए दिखाई देंगे। अपने नरक-वास की हज़ारों गंदगियों के भीतर भी वे न जाने स्वर्ग की शांत और सुखद छाया को अपने सनातन नारीत्व के स्नेह-अंचल के किस अज्ञात कोने में छिपाये रहती

हैं। क्षणिक और तात्कालिक स्वार्थ की संकीर्ण दृष्टि से देखने के कारण अधिकांश पुरुषों को इतना धैर्य नहीं रहता कि वे उनके भीतर के सच्चे नारीत्व का पता लगा सकें। वे जब उपन्यासों या कविताओं में वेश्या के नारी-हृदय की करुणा का गुण-गान पढ़ते हैं, और वास्तविक जीवन की वेश्या के रूखे, गंदे और स्वार्थपूर्ण व्यवहार से परिचित होते हैं, तो उनके हृदय को गहरा धक्का पहुँचता है। पर अगर वे सहानुभूति से पूर्ण अंतर्दृष्टि से देखें और धैर्य से काम लें, तो धीरे-धीरे उनकी निराशा पुलक, विस्मय और श्रद्धा में बदल जायगी। मैं यह दावा तो नहीं कर सकता कि मेरी अंतर्दृष्टि बड़ी पैनी है, फिर भी इतना जरूर है कि मैंने वर्षों के अनुभव से किसी भी वेश्या को सहानुभूति की दृष्टि से देखने की आदत डाल ली है। इसका फल यह होता है कि मैं उसके अंतर्जीवन का पट अपने-आप उघड़ने की प्रतीक्षा बड़े धैर्य के साथ करता रहता हूँ। इस उपाय से एक गलीज से गलीज वेश्या के अंतर में छिपे हुए नारीत्व की महिमा सत्य के स्वाभाविक प्रकाश से जगमगा उठती है। बाहरी जीवन के कई पर्तों के भीतर दबे हुए उस उज्ज्वल सत्य के अचानक उघड़ने में एक ऐसा अनोखा रस प्राप्त होता है जिसका स्वाद बार-बार चखते रहने की इच्छा मेरे लोभी मन में बनी रहती है। यही कारण है कि वेश्याओं के प्रति आंतरिक सहानुभूति रखते हुए भी मैं उन्हें उसी रूप में देखते रहना चाहता हूँ जिस रूप में उन्हें पूँजीवादी समाज ने सदियों से बँधे पड़े रहने के लिये बाध्य कर रखा है। यह एक ऐसा अनोखा विरोधाभास मुझमें वर्तमान है जिसकी कोई कैफ़ियत मेरे पास नहीं है। अपनी इस हीनता से छुटकारा पाने की बहुत कोशिश मैंने की है, पर सफल नहीं हो पाया हूँ। यह जानते हुए भी कि नंदिनी बाई सुशिक्षित और सुसंस्कृत हैं, मैं उन्हें मुजरे के साज में देखने की आकांक्षा को न दबा सका। इस विषय पर मैं इस प्रकार सोचता हूँ—'यह जो नारी

आर्थिक विवशता से या समाज की कुव्यवस्था की बाध्यता से मेरे आगे हाव-भाव बताकर गा रही है यह कामी पुरुषों द्वारा किये जाने-वाले सैकड़ों अमानुषिक अन्यायों के भार से दबी है। तिसपर भी वह अपने अंतर के अगम मन्दिर में शुभ्र नारीत्व का कभी न बुझनेवाला दीपक जलाये हुए है—मैं इसी दीपक का पतंग बनने की इच्छा रखता हूँ। सूर्य के प्रकाश में दीपक का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। चूंकि समाज द्वारा सम्मानित नारी का चरित्र बाहर से शुभ्र और निष्कलंक और प्रकाशमय होता है, इसलिये उसके भीतर का वह दीपक सब समय निस्तेज पड़ा रहता है। मुझे सूर्य के प्रकाश की अपेक्षा अगम अंधकार के बीच में जले हुए दीये की लौ अधिक सुन्दर लगती है, यही कारण है कि मैं घोर सामाजिक अंधकार में डूबे हुए वेश्या-हृदय की गहनता में जलने वाले प्रकाश का इतना बड़ा प्रेमी हूं। किस बात से मैं किस बात पर आ पड़ा। नशे से उत्पन्न भावुकता ऐसी ही होती है। मैं यह कहना चहता था कि नंदिनी बाई चाहे हजार वर्ष तक वेश्या का जीवन बिताती रहें, पर उनके अंतर का मंगलमय प्रकाश कभी धीमा नहीं पड़ेगा। आपने उन्हें समझने में बहुत भूल की है, भाई साहब! यदि आप कुटिल से कुटिल परिस्थिति में भी धैर्य धारण किये रहते तो एक दिन अपने-आप उनके अगम अंतर के किवाड़ खुल पड़ते और उसके भीतर के उसी दीपक के दर्शन आपको हो जाते जिसका उल्लेख मैंने अभी किया है। पर अब उस भूल को सुधारने का कोई उपाय आपके लिये शेष नहीं रह गया है। इसलिये आप व्यर्थ से भटक रहे हैं और उनके यहाँ बेकार धरना दिये बैठे हुए हैं।"

ठाकुर साहब की अंतिम बात के लिये पारसनाथ क़तई तैयार नहीं था। वह उनकी उलटी सीधी 'दार्शनिक' बातों का ठीक-ठीक तात्पर्य समझने की कोशिश कर ही रहा था कि अचानक ठाकुर साहब ने उसपर

सीधा वार कर दिया। वह यह सोचकर मन-ही-मन अवज्ञापूर्वक मुस्करा रहा था कि नशे की हालत में ठाकुर साहब अपनी ही बातों के चक्कर में बुरी तरह उलझ गए हैं; पर जब उन्होंने अंत में बिना किसी हेर-फेर के अपने मन की असली बात कही, तो पारसनाथ की आँखें खुलीं, और वह समझ गया कि ठाकुर साहब ने जानबूझकर, उसे भरमाने के लिये, उस तरह की 'दार्शनिक' बातें की थीं। इधर कुछ समय से उसकी स्वाभाविक संदिग्धता यों ही बढ़ी हुई थी, तिसपर जब उसने इस तरह की बात सुनी तो उसका वहम इस क़दर बढ़ गया कि उसके मन में भय और शंका के बादल छा गए। उसे ऐसा लगा कि उसके मस्तिष्क की चेतना को एक घने काले कुहरे ने ढक दिया। वह उस कुहरे से अपने सिर को ऊपर उठाने की बहुत चेष्टा करने लगा, पर कोई फल नहीं हुआ। उसने चुपचाप बोतल से अपने ख़ाली गिलास में शराब उँड़ेलकर, उसमें बराये-नाम सोडा मिलाकर दो-एक गहरी घूँटें लीं। फल यह हुआ कि उसकी जड़ चेतना फिर कुछ डगमगाई, और ठाकुर साहब की सारी बातों का एक दूसरा ही अर्थ उसके सामने आया। उसने सहसा आँखें मींचकर, एक निराली उद्भ्रांत दृष्टि से ठाकुर साहब की ओर देखकर कहा—"आप भुजौरियाजी के चाहे कितने ही बड़े मित्र क्यों न हों, पर मुझे आप अपने जाल में नहीं फाँस सकते। आप सी० आई० डी० के कैसे ही चालाक कर्मचारी क्यों न हों, पर आप मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, क्योंकि मैं भी बड़े-बड़े घुटों के साथ रह चुका हूँ। नंदिनी को मैंने नहीं भगाया, बल्कि वह स्वयं मुझे भगाकर लाई है, इसलिये मैं आपके मित्र, भुजौरियाजी से नहीं डरता। रही मञ्जरी की बात। आपका कहना है कि वह एक वेश्या थी और नरक की हज़ारों गंदगियों के बीच भी स्वर्ग की शांत छाया को अपने भीतर छिपाए थी। पर आपको मालूम होना चाहिये कि वह नंदिनी की तरह वेश्या नहीं थी। वह एक भले घर की लड़की

थी। परिस्थितियों की विवशता के कारण होटल में ठहरने वाले यात्रियों को अपने रूप की झलक दिखाकर वह उनसे पैसा स्वीकार करने को बाध्य हुई थी। उसकी माँ की मृत्यु के बाद मैंने उसे अपने यहाँ आश्रय दिया था। हम दोनों के बीच प्रेम-संबंध स्थापित हुआ, और उसने एक सुंदर, प्यारे-से बच्चे को जन्म दिया। इसके बाद नंदिनी ने मुझे अपने प्रेम-जाल में फँसा लिया। इसलिये मञ्जरी और उसके बच्चे को मौत की रखवाली में छोड़कर चले आने के लिये दोषी मैं नहीं, नन्दिनी है। मैं जानता हूँ कि आपने मेरे पेट की सब बातें निकालकर मुझे पुलिस के हवाले करने के उद्देश्य से आज मुझे पीने का निमन्त्रण दिया है। पर आपको चाहिये कि मुझे न घेरकर नन्दिनी को गिरफ़्तार करें। लेकिन शायद नन्दिनी भी मुझे गिरफ़्तार कराने के षडयंत्र में आपके साथ शरीक है। ठीक है, उसकी सब चालें आज एक-एक करके मेरी समझ में आ रही हैं......"

ठाकुर साहब विमूढ़ दृष्टि से पारसनाथ की ओर ताकते रह गए। उसकी बात का एक अक्षर भी उनकी समझ में न आया। भुजौरियाजी को उन्होंने अपने जीवन में न कभी देखा था, न कभी इसके पहले उसका नाम ही सुना था। क्या वास्तव में इस नाम का कोई व्यक्ति है, या यह पारसनाथ की मनगढ़ंत कल्पना है? यदि वास्तव में कोई व्यक्ति है तो नन्दिनी से उसका क्या संबंध है? और यह मंजिरी दाल-भात में मूसरचंद की तरह बीच में कहाँ से आकर कूद पड़ी? "आपने कहा है कि मंजिरी एक वेश्या थी!" पर उन्होंने तो इस तरह की कोई बात नहीं कही! तब यह मामला क्या है? निश्चय ही उसका मन किसी गहरी चोट से व्यथित है, और उन्होंने अपनी बात से उस पीड़ित स्थान को खरोंच दिया है। उस पुराने घाव के ताज़ा होने का असर उसके दिमाग़ पर भी हो गया है। उन्हें अपनी बात के लिये दुःख हुआ। वह जान गए थे कि पारसनाथ बहुत ही आत्ममग्न प्राणी है।

ऐसे व्यक्तियों के विकृत मन को कुछ समय के लिये फिर से केन्द्र पर लाने का एकमात्र उपाय वह यही जानते थे कि उनके विशेष गुणों की प्रशंसा द्वारा उनके आत्म-सम्मान को जगाया जाय। इसी उद्देश्य को सामने रखकर वह बोले—"मारिए गोली इन सब बातों को। मैंने सुना है कि आप बहुत ही उच्च कोटि के चित्रकार हैं। क्या आप एक चित्र मेरे लिये तैयार नहीं कर देंगे? मैं बहुत धनी नहीं हूँ, फिर भी आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके चित्र का मैं भरसक उचित सम्मान करूँगा,—आर्थिक सम्मान भी। आर्थिक सम्मान इसलिये नहीं कि आप ग़रीब हैं, और आपको अर्थ की आवश्यकता है, बल्कि इसलिये कि किसी भी श्रेष्ठ कलाकार के प्रति पत्र और पुष्प की अंजलि चढ़ाना कला के प्रत्येक प्रेमी का कर्तव्य है।"

पारसनाथ ने क्षण-भर तक अत्यंत गंभीर भाव से, परीक्षक की तरह बड़े गौर से, ठाकुर साहब की ओर देखा। उसके बाद धीरे-धीरे एक मार्मिक व्यंग का तीखा भाव उसके मुख पर झलक उठा। पूर्ण दृष्टि से, निस्संकोच भाव से, ठाकुर साहब की आँखों की ओर देखते हुए नाटकीय स्वर में बोला—Et tu, Brute? भुजोरिया भी अपने को कला का प्रेमी बताता था, और इसी सूत्र से उसने मुझे फाँसना चाहा था। उसके बाद अब आपकी बारी है। पर आप बहुत देर से आए हैं, मिस्टर! अब पारसनाथ किसी के चंगुल में फँस नहीं सकता—इसलिये कि अब वह चित्र बनाने का पेशा सदा के लिये छोड़ चुका है—Othello's occupation is gone!"

पारसनाथ की बातों का ढंग देखकर ठाकुर साहब का सारा नशा हिरन हो गया। उन्होंने बहुत घबराहट के साथ कहा—"पारसनाथ बाबू, आपको काफ़ी नशा हो चुका है; अब चलिए, घर को वापस चला जाय।"

"घर को वापस ? पर मेरा मकान इस संसार में कहीं है भी ! Home ! home ! Sweet home ! There's no place like home ! There's no place like home !—यह मैं मानता हूँ, पर जिस कवि ने यह गीत रचा था वह आवारा था, कहीं उसका घर-द्वार नहीं था। मैं भी उसी कवि की तरह हूँ। नन्दिनी के मकान को अगर मैं अपना घर कह सकता हूँ, तो यह होटल भी मेरा घर है। हाँ, सचमुच यह होटल मेरा घर है। मैं अब यहाँ से उठने का नहीं। हजरते दाग जहाँ बैठ गए बैठ गए, और होंगे तेरी महफ़िल से भड़कने वाले !..." कहते ही उस नशे की—बल्कि पागलपन की—हालत में भी उसे याद आया कि दाग़ का वह शेर (सही या गलत, जैसा-कुछ भी हो) उसके संबंध में अक्षरशः सत्य बैठा है, क्योंकि नन्दिनी के लाख भड़काने पर भी वह निपट निर्लज की तरह उसके यहाँ धरना दिये बैठा है, और उनके व्यंगों के बावजूद वह अन्त में फिर उसी के यहाँ वापस जावेगा—भले ही इस समय तैश में आकर वह कुछ का कुछ कह रहा हो।

ठाकुर साहब ने बेतरह घबराकर कहा—"उठिए पारसनाथ बाबू, अब काफ़ी हो चुका। चलिए !"

पर पारसनाथ गिलास की शेष शराब को एक घूँट में समाप्त करके बोला—"Oh no ! Never in my life ! अब मैं मरते दम तक यहीं डटा रहूँगा। जब तक जहन्नुम से शैतान के दूत आकर मुझे उठा न ले जावें, तब तक I won't budge an inch ! होटल में पीने का निमन्त्रण देकर बीच में उड़न्छू होना चाहते हो ? यह नहीं होने का ! ब्वाय, लाओ एक और बोतल—यही शराब। कौन शराब है यह ! (बोतल का लेबिल पढ़कर) 'किंग जान' ! हाँ 'किंग जान' जल्दी !" यह कहकर उसने बोतल की शेष शराब को एक ही बार में अपने

गिलास में ढाल दिया, और ठाकुर साहब से झूठे मुँह भी नहीं पूछा कि तुम भी लोगे या नहीं। ठाकुर साहब स्तब्ध भाव से बैठे रहे, और उसकी हरकतों को चुपचाप देखते रहे।

अंतिम गिलास को समाप्त करने के बाद पारसनाथ बुरी तरह झूमने लगा, और कुर्सी पर सँभलकर बैठने में अपने को असमर्थ मालूम करने लगा। पर उस दशा में भी वह न भूला कि उसने एक दूसरी बोतल के लिये आर्डर दिया है। ठाकुर साहब उठ खड़े हुए और पारसनाथ के पास जाकर धीरे से उसका हाथ पकड़कर बोले—"उठिए पारसनाथ बाबू, अब देर हो गई है।" पारसनाथ ने आँखें बंद किये ही अलसाई आवाज़ में कहा—"ऊँहूँ! पहले एक बोतल और मँगाइए—वर्ना मैं टस से मस नहीं होने का!"

लाचार ठाकुर साहब ने एक अद्धा और मँगाया। पारसनाथ ने उस अद्धे का भी आधा किसी तरह मरते-मरते पिया, और उसके बाद वह गिलास को पकड़ने के लिये भी समर्थ न रहा। बड़ी मुश्किल से ठाकुर साहब उसे वहाँ से उठाकर एक ताँगे पर रखने में समर्थ हुए। उसे नन्दिनी के यहाँ पहुँचाकर, पलँग पर लिटाकर, सारा क़िस्सा उन्होंने नन्दिनी के आगे कह सुनाया। नन्दिनी सुनकर, एक लंबी साँस लेकर चुप हो रही।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

उस दिन नशे की हालत में पारसनाथ को पागलपन का जो 'फ़िट' आया था वह बाद में कुछ समय के लिये दब अवश्य गया, पर दबने का परिणाम केवल यह हुआ कि उसने उसके भीतर की गहराई में जड़ें पकड़ लीं। उसके मन में यह वहम पैठ गया कि सारा

संसार उसके विरुद्ध षड़यंत्र रच रहा है, और उसके आस-पास का प्रत्येक व्यक्ति जासूस की तरह उसकी हर बात और हर हरकत पर ग़ौर कर रहा है। नंदिनी से मिलने जो भी नया आदमी आता था वह यदि एक बार भी सहज कौतूहलवश उसकी ओर देखता या साधारण शिष्टाचार के बतौर उससे उसका परिचय पूछता, तो उसके मन में यह निश्चित धारणा जम जाती कि वह सी० आई० डी० का कोई आदमी है और उसे पुलिस के हवाले करने के फेर में है। और सब बातें वह इस ढंग से करता था, जिससे उसके होश और हवास दुरुस्त होने के संबंध में किसी के मन में शंका नहीं होती थी, पर बीच-बीच में अपने विरुद्ध रचे गये काल्पनिक षड़यंत्रों और अपने पीछे लगे हुए 'जासूसों' की चर्चा चलाकर वह लोगों को चक्कर में डाल देता था। मज़ा यह था कि उन 'षड़्यंत्रों' और जासूसी चक्करों का वर्णन वह इस सफ़ाई से और इस तरतीब से करता था कि कभी-कभी अनजान आदमी को सत्य का धोखा हो जाता। उससे परिचित प्रत्येक व्यक्ति समझ लेता कि वह उसकी मनगढ़ंत कल्पना है, इसलिये वह अक्सर अपरिचित व्यक्तियों के आगे ही अपने उन काल्पनिक दुःखों का रोना रोने लगता और उनके सहानुभूतिपूर्ण शब्दों से बहुत कुछ सांत्वना प्राप्त करता।

दूसरों से सांत्वना प्राप्त करने की प्रवृत्ति उसमें धीरे-धीरे इस हद तक बढ़ गई कि वह नंदिनी के मीरासी, तबलची, नौकर-चाकर आदि निम्न श्रेणी के आदमियों के साथ दुख-सुख की बातें करने का आदी हो गया। वह उन लोगों के साथ इस तरह पेश आता जैसे वे उसके समान-स्तर के व्यक्ति हों। विशेष करके नंदिनी के मुसलमान तबलची अब्बास से उसकी खूब घुलती थी। अब्बास बड़ा बाँका, फुर्तीला और मिलनसार नौजवान था। जब वह फुरसत के समय अपने संगियों के साथ बैठकर गप्पें उड़ाने में व्यस्त रहता उस समय पारसनाथ भी चुपके से उस मंडली के बीच में आकर बैठ जाता और आते ही कहता—

"यार अब्बास, एक सिगरेट तो पिलाओ ।" अब्बास उसे बहुत मानता था और उससे हार्दिक सहानुभूति रखता था। वह जानता था कि नंदिनी का बर्ताव पारसनाथ के साथ ऊपर से चाहे कैसा ही रूखा क्यों न हो, पर भीतर से अब भी वह उसके प्रति कोमल है। पर जिस बात ने अब्बास को सबसे अधिक प्रभावित किया था वह थी पारसनाथ की शिक्षा और संस्कृति। संगीत के विषय में पारसनाथ का वैज्ञानिक ज्ञान असाधारण था ही, साथ ही राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के विभिन्न पहलुओं को लेकर वह ऐसी तर्कसिद्ध बातें, रोज़मर्रा की सरल किंतु मुहावरेदार भाषा में ऐसे रोचक ढंग से सुनाता कि अब्बास और उसके साथी बड़ी दिलचस्पी से सुनते। अब्बास ने आठवें दर्जे तक पढ़ा था। उसका बाप एक दर्जी के यहाँ काम किया करता था। बाप के मर जाने पर उसका अपना कहने को कोई नहीं रहा। फ़ीस और किताबों का खर्चा जुटाने में असमर्थ होने के कारण उसने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया। उसके पड़ोस ही में एक बूढ़ा 'उस्ताद' रहा करता था, जिसकी सेवा-टहल करके उसने तबला बजाना सीख लिया। 'उस्ताद' ने समय आने पर एक नामिखिया वेश्या के यहाँ उसे तबलची के पद पर नियुक्त करा दिया। तब से वह कई वेश्याओं के यहाँ नौकर रह चुका था। नंदिनी की बहन निर्मला के साथ भी वह दो वर्ष तक रहा था। वास्तव में तबला बजाने में उसका हाथ सध गया था। साथ ही वह बहुत से दूसरे तबलचियों की तुलना में बहुत शिष्ट था। इसलिये नंदिनी ने अपेक्षाकृत अधिक तनख्वाह पर उसे नियुक्त किया था। आर्थिक विवशता के कारण उसका पढ़ना-लिखना छूटने पर भी उसकी 'ज्ञान' की पिपासा मिटी नहीं थी। जिस संकीर्ण कूप के भीतर उसे रहना पड़ता था उसके बाहर विपुल विश्व में कौन-कौन सी महा-घटनाएँ घट रही हैं, इस विषय की जानकारी प्राप्त करने की लालसा उसके मन में बराबर बनी रहती थी। वह उर्दू का

कोई एक साप्ताहिक पत्र नियमित रूप से पढ़ा करता था, और जो कुछ पढ़ता उसे अपनी निर्बाध कल्पना के हवाई घोड़े पर चढ़ाकर अपने साथियों के आगे दून की हाँका करता था। इसलिये पारसनाथ से जब उसे ऐसे तथ्यों का पता लगता जो आश्चर्यजनक होने पर भी क़रीब-क़रीब सोलहों आना सत्य होते थे, तो वह मंत्रमुग्ध होकर गद्गद-भाव से उनमें दिलचस्पी लेता था। और सबसे बड़ी बात (जैसा कि पहले कहा जा चुका है) यह थी कि पारसनाथ उसके और उसके साथियों के स्तर तक नीचे उतर कर समानता का व्यवहार दिखाकर बातें करता था। इस उपाय से पारसनाथ जैसे अपने स्तर के समाज को लक्ष्य करके यह कहना चाहता था—"यह देखो, तुम लोगों ने मुझे इस क़दर सताया है कि आज मैं तबलचियों, सीरासियों, भाँड़ों और कथकों के साथ मित्रता स्थापित करने के लिये बाध्य हुआ हूँ। उन लोगों से सिगरेट माँगकर पीता हूँ, उनसे पैसे कर्ज़ लेकर ठर्रा पीता हूँ, और एक प्रकार से उन्हीं लोगों के ज़रिये से मुझे भोजन प्राप्त होता है—क्योंकि नंदिनी की रोज़ी उन्हीं लोगों की सहायता से चलती है, और मैं नंदिनी के न चाहने पर उसका आश्रित बना हुआ हूँ। देखो, देखो, अपने कुचक्रों का, अपने अत्याचारों का फल देखो! तुम सब लोगों ने मिलकर एक प्रतिभाशाली चित्रकार की क्या दुर्गति कर डाली है—ज़रा इस बात पर ग़ौर करो! तुम ही लोगों ने मिलकर पहले मुझे जारज सिद्ध करके घर-घाट से निकाल दिया, उसके बाद भुजौरिया के वेष में मुझे ठगना चाहा और फिर केवल पुस्तकों के कवर-डिज़ाइन तैयार करनेवाला चित्रकार बनकर रह जाने के लिये बाध्य किया, उसके बाद मञ्जरी की अंधी माँ के रूप में मुझे परेशान किया, और अंत में नंदिनी और उसके प्रेमिक के द्वारा मुझे ज़लील किया। अब भी तुम लोग अपने षड्यंत्रों से बाज़ नहीं आते हो, और अज्ञात और अदृश्य रूपों से मुझ पर चोट पर चोट करते जाते हो। सताओ, सताओ, तुम लोगों का

जितना जी चाहे सताओ, पर किसी उपाय से भी मेरा अस्तित्व मिटाने में समर्थ नहीं हो सकोगे। तुम लोग अगर धूर्त और कुचक्री हो, तो मैं भी बेशर्मों का शिरमौर हूँ।"

नन्दिनी ने यह सोचकर उसे शराब के लिये रुपया देना बंद कर दिया था कि, उसे डर था कि शराब पीते रहने से वह कहीं पूरा पागल न हो उठे। पर अब्बास और उसके दल के लोग उसके प्रति सम्मान रखते थे और करुणा भी, इसलिये उसके ठर्रे का ख़र्चा किसी-न-किसी तरह जुटा देते थे। एक दिन अत्यंत दयनीय भाव से उसने अब्बास से कहा—"यार अब्बास ठर्रा पीते बहुत दिन हो गए, कलेजा जलने लगा है और ज़बान का ज़ायका ख़राब हो गया है। आज ह्विस्की पीने की इच्छा है।" अब्बास ने कुल रुपये अपनी गाँठ से ख़र्च करके एक बोतल ह्विस्की की लाकर चुपके से उसके हाथ में दे दी, और धीरे से कहा—"लुकछिप कर पीजिएगा। बाबूजी, कहीं बाईजी को मालूम हो जावेगा तो ग़रीब की नौकरी जाती रहेगी।"

चोरी-छिपे बोतल में से एक पौवा ख़तम करके जब वह बाहर आया तो अचानक कहीं पास-पड़ोस से एक छोटे से बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई दी—"किहाँ-किहाँ-किहाँ! कहाँ-कहाँ-कहाँ!" पारसनाथ नशे की हालत में उस आवाज़ को सुनकर चौंक उठा। अब्बास से बोला—"वह सुनो! वह किसका बच्चा रो रहा है?"

उसके मुख का असाधारण रूप से घबराया हुआ भाव देखकर अब्बास को विस्मय हुआ। वह बोला—"होगा किसी का बच्चा, इतना बड़ा मुहल्ला है—कौन जाने किसका बच्चा है। पर आप चौंक क्यों उठे?"

पारसनाथ की घबराहट पहले से भी अधिक बढ़ गई थी। बच्चा निरंतर रोता चला जाता था—"किहाँ-किहाँ-किहाँ! कहाँ-कहाँ-कहाँ!"

पारसनाथ का कलेजा कटा जा रहा था। और भय और आशंका बढ़ती चली जा रही थी। उसने उन्माद-ग्रस्त दृष्टि से शून्य की ओर देखते हुए कहा—"मैं जानता हूँ, यह किसका बच्चा है! यह निश्चय ही उसी का बच्चा है—"उसी का! वह पता लगाते-लगाते आ पहुँची है!"

अत्यंत आश्चर्य से अब्बास ने पूछा—"किसका बच्चा, बाबूजी?"

पारसनाथ ने झिड़ककर कहा—"अरे, उसी का! बन क्यों रहे हो! तुम्हें तो सारा क़िस्सा मालूम है! जब वह मैले चिथड़े पहने बच्चे को गोद में लिए—नंगी और भूखी—लाटूश रोड और ऐबट रोड के चौराहे पर बिलबिलाती हुई कह रही थी—'अरे, कोई मेरे इस अनाथ बच्चे पर तरस खाकर कुछ दे दो बाबा! चार दिन से मैं भूखी हूँ, और दो दिन से मेरा बच्चा दूध के बिना तड़फड़ा रहा है। अरे, कोई ईश्वर के नाम पर दया करो बाबा!' तब तुम भी तो मेरे साथ वहाँ पर खड़े थे, अब्बास! उसे देखते ही मैं कतरा कर भाग निकलने के लिये बेचैन हो उठा। इसलिये तुम्हारा हाथ खींचकर तुम्हें पकड़कर मैं क़ैसरबाग़ की ओर ले गया, और रास्ते में सारा क़िस्सा मैंने तुम्हें कह सुनाया। तिस पर भी तुम अनजान से बन रहे हो। बड़े अफ़सोस की बात है! यह वही औरत है, और जो बच्चा रो रहा है वह उसी का है। जाओ अब्बास, जाओ, फ़ौरन जाकर पता लगाओ कि यहाँ वह किसके यहाँ आकर ठहरी है। पर नहीं—उसके पास जाना तुम्हारे लिये भी ख़तर-नाक है और मेरे लिये भी। न जाने यह खुफ़िया पुलिस की कौन-सी चाल है! असल में अब मुझे ही यहाँ से भागकर किसी दूसरी जगह डेरा जमाना होगा।"

अब्बास आँखें फाड़-फाड़ कर विस्मय-विमूढ़ भाव से उसकी ओर ताकता रह गया। वह कभी पारसनाथ के साथ लाटूश रोड और ऐबट रोड के चौराहे पर नहीं गया था, न उसने उसके साथ में किसी दूसरी

जगह उस तरह की स्त्री देखी थी, और न कभी पारसनाथ ने इस संबंध में कोई किस्सा ही उसे सुनाया था। पर इस बात पर भी उसे विश्वास नहीं होना चाहता था कि पारसनाथ एकदम मनगढ़न्त बात को सचाई के साँचे पर ढालकर उसे बेवकूफ बनाने की इच्छा रखता है। उसने बड़े नम्र भाव से कहा कि इस तरह की कोई घटना उसके सामने नहीं हुई। पारसनाथ फिर एक बार उसी तरह झिड़ककर बोला—"हुई क्यों नहीं! मुझे अच्छी तरह याद है, तुम मेरे साथ थे। मैं बच्चे को देखकर एक बार कहने ही को था—'मुन्नू! बच्चू!' पर उसी दम मैंने अपने को जब्त कर लिया और तुम्हें अपने साथ घसीटकर भगा।"

उसकी मानसिक आँखों के आगे बच्चे का वही रूप प्रत्यक्ष सत्य के बतौर नाच रहा था जिसे कुछ वर्ष पहले उसने देखा था। इन कुछ वर्षों के अर्से में बच्चे के तनिक भी बढ़ने की संभावना उसकी कल्पना में नहीं समा पाती थी। बच्चा खाँसी के 'फिट' से बड़ी कठिनाई के साथ मुक्ति पाकर दोनों हाथ और दोनों पाँवों को अत्यंत उल्लास के साथ हिलाता हुआ ऊपर को उछलने की चेष्टा कर रहा था, और उसके पुचकारते ही और अधिक उमंग से उछलता हुआ कूक उठता था—"कू-ऊ-ऊ!"

"मुन्नू!"

"कू-ऊ-ऊ-!"

"बच्चू!"

"कू-ऊ-ऊ-ऊ!—किहाँ-किहाँ! चिहाँ-चिहाँ!"

"अब्बास, ज़रा देख तो आओ, बच्चा इतनी देर से क्यों रो रहा है! उसकी माँ उसे छोड़कर कहाँ चली गई है, ज़रा देख तो आओ!"

अब्बास उठ खड़ा हुआ और खिड़की से बाहर झाँककर देखने

लगा कि बच्चे के रोने की आवाज़ किस मकान से आ रही है। प्रायः मिनट-भर तक देखने के बाद वह फिर बैठ गया, और बोला—"मैंने देख लिया, यह आवाज़ पंडितजी के यहाँ से आ रही है—पंडित शिव-शंकर शर्मा। वह चौक के बड़े नामी पंडित हैं, बाबूजी। यह उन्हीं का बच्चा रो रहा है।"

"हाँ, हाँ, मैं जानता हूँ, वह उन्हीं का बच्चा है, पर यह जान तो आओ कि वह इतनी देर से रोता क्यों है।"

अंत में अब्बास को उठना ही पड़ा। "अच्छी बात है, मैं जाकर पूछ आता हूँ।" कहकर वह चला गया।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

मंजरी ने पहले उसी होटल में जाने का विचार किया था जहाँ पारसनाथ की पहली मुलाक़ात हुई थी। पर रास्ते में उसने सोचा कि उसकी वर्तमान स्थिति में होटल किसी प्रकार भी सुरक्षित स्थान नहीं है। तब उसका अपना एक ठिकाना था, एक ठौर था। पर अब जब उस होटल में ही रहना और वहीं खाना पड़ेगा तो दुर्गति से बचना उसके लिये असंभव हो जावेगा। तब वह कहाँ जावे? अनाथा-लय की कल्पना उसके मन में उदित हुई। वहाँ जाकर वह मैनेजर से कहेगी कि उसे अच्छा-से-अच्छा या बुरा-से-बुरा कोई काम दे दिया जावे। खाना बनाने, यहाँ तक कि चौका-बर्तन साफ़ करने का काम भी, वह स्वीकार कर लेगी। बदले में उसे केवल भोजन मिल जाय, इतने से ही वह संतुष्ट रहेगी। केवल एक शर्त वह यह रखेगी कि उससे किसी प्रकार का अनुचित प्रस्ताव करने की ज़्यादती कोई न करने पावे, न कोई किसी प्रकार का अशिष्ट परिहास ही करे। फिर उसे याद आया

कि अभी हाल ही में उसने किसी एक पत्र में अनाथालयों के कुछ पेशेवर मैनेजरों की काली करतूतों के संबंध में लोमहर्षक बातें पढ़ी थीं। ऐसी हालत में किसी भी अनाथालय में वह अपनी इज़्ज़त बचाकर रह सकेगी, इसकी कौन 'गारन्टी' है ? तब क्या उपाय होगा ? एक्के पर बैठे-बैठे इस तरह की बातें सोचते-सोचते अपनी निपट असहाय अवस्था का ख़याल करके उसका दिल दहल उठा। एक बार उसकी इच्छा हुई कि अनाथालय में जाकर आज ही रात कमरा बंद करके गले में फाँसी लगाकर प्राण त्याग दे। फिर सोचा कि उसके इस कांड से अनाथालय के प्रबंधक पर बिना किसी अपराध के क़ानून-संबंधी आफ़त आ सकती है। "आवे आफ़त !"—उसने मन-ही-मन कहा—"इससे मुझे क्या ? दया-माया का कोई मूल्य इस संसार में नहीं है ! इतने अनुभव के बाद भी क्या इस संबंध में कोई संदेह अभी तक बाक़ी रह गया है ? मुझे जब स्वयं अपनी चरम दुर्गति की अवस्था पर तरस नहीं आ रहा है, तो दूसरों के लिये चिंतित होने की कौन आवश्यकता मेरे लिये है ! और फिर इन बदमाशों पर जितनी ही आफ़त आवे उतना ही अच्छा है। मैं अवश्य फाँसी लगाकर मरूँगी !"

कुछ दूर आगे चलकर उसने बाईं ओर एक इमारत देखी जिसके फाटक पर खुदा हुआ था—"नारी-संस्कृति-निकेतन।" अचानक मंजरी का माथा ठनका। क्यों न इस संस्था में भरती हो जाय ? यह संस्था संस्कृति का निकेतन हो चाहे न हो, कम से कम इतना तो अवश्य होगा कि उसका संचालन कोई महिला करती होगी। पर कौन जाने, यह भी अनाथ और असहाय अबलाओं को फँसाने का एक जाल हो सकता है ! इस विश्व-प्रपंच में न किसी मनुष्य पर विश्वास किया जा सकता है न किसी संस्था पर। जब सर्वत्र यही हाल है तो होटल क्या बुरा है ! वहाँ के लोग कम से कम यह ढोंग तो नहीं रचते कि वे निराश्रय अबलाओं को शरण देकर उनका उद्धार करते हैं ! वे

साफ़-साफ़ यह जता देते हैं कि स्त्रियों के व्यवसाय की वृद्धि से उनके व्यवसाय की उन्नति होती है। "नहीं, मैं किसी संस्कृति-निकेतन में नहीं जाऊँगी,"—उसने मन-ही-मन कहा।

पर कुछ ही दूर आगे चलने के बाद सहसा उसका निश्चय बदल गया और उसने एकेवाले से एके को लौटा लेने के लिये कहा। जब लौटाने के बाद एका फाटक के पास पहुँचा, तो उसने फाटक के बाहर उसे खड़ा करवा दिया और स्वयं साहस करके भीतर चली गई। कुछ ही दिन पहले तक उसका स्वभाव इस क़दर संकोचशील था कि वह कभी एक अपरिचित आश्रम में प्रवेश करके एक अपरिचित महिला से बातें करने का इरादा न कर पाती। पर उसकी वर्तमान हताश अवस्था ने उसकी विद्रोही आत्मा को एक आश्चर्यजनक बल प्रदान कर दिया था। भीतर प्रवेश करने पर फाटक के पास ही उसे चौकीदार मिला। मंजरी ने उससे पूछा कि उस संस्था की संचालिका महोदया कौन हैं और इस समय कहाँ हैं। चौकीदार ने उनका नाम बताते हुए कहा कि वह इस समय लड़कियों को पढ़ा रही हैं। मंजरी ने कहा—"मैं चार मिनट के लिये उनसे अकेले में मिलना चाहती हूँ।" चौकीदार बोला—"काग़ज़ के एक टुकड़े में अपना नाम और काम लिख दीजिए।" मंजरी ने उससे काग़ज़ और पेंसिल मँगवाकर अपना नाम लिख दिया, और काम के संबंध में केवल इतना ही लिखा—"एक आवश्यक व्यक्तिगत विषय।"

चौकीदार भीतर गया और प्रायः चार मिनट बाद लौटकर बोला—"चलिए, आपको बुलाया है।"

मंजरी उसके पीछे-पीछे चली। चौकीदार उसे एक एकांत कमरे में ले गया। वहाँ कुछ देर तक प्रतीक्षा करते रहने के बाद एक चश्मा-धारिणी प्रौढ़ा महिला ने प्रवेश किया। मंजरी शिष्टाचार के बतौर

अभिवादन के लिये उठ खड़ी हुई। प्रौढ़ा महिला ने किंचित गंभीर भाव से कहा—"विराजिये। कहिए क्या आज्ञा है?" यह कहकर वह पास ही एक कुर्सी पर बैठ गई। मंजरी ने देखा कि उनका स्वर गंभीर होने पर भी उसमें यथेष्ट मात्रा में कोमलता वर्तमान है। उसका साहस कुछ बढ़ा। उसने अत्यंत नम्र भाव से कहा—"मैं आपके यहाँ कोई काम पाने की आशा से आई हूँ।"

"आप खड़ी क्यों हैं, विराजिये!"

मञ्जरी धीरे से पासवाली कुर्सी पर बैठ गई।

महिला ने कहा—"जगह तो हमारे यहाँ आजकल कोई भी खाली नहीं है। कुछ ही समय पहले तक छोटे दर्जों को पढ़ाने के लिये एक अध्यापिका की आवश्यकता हमें अवश्य थी, पर वह जगह भी अब भर गई है।"

मंजरी ने धीरे से, संकोच के साथ प्राणपण से जूझते हुए कहा—"मैं चूल्हे-चौके का काम भी कर सकती हूँ।"

महिला ने परम आश्चर्य से उसकी ओर देखा। उसके बाद वह बोली—"पर—रर—माफ़ कीजिएगा, आपने कहाँ तक शिक्षा पाई है?"

"बी-एस-सी 'ज्वायन' किया था, पर किसी कारण बीच ही में छोड़ देना पड़ा।"

"तो—तो—आप क्या चूल्हे-चौके का काम सचमुच कर सकेंगी?"

"मेरा तो ऐसा ही ख़याल है।"

"स्पष्ट ही आप विवशता के कारण यह काम स्वीकार करना चाहती हैं। क्या मैं पूछ सकती हूँ कि आप अपने घरवालों की सम्मति जानकर यह काम करने को तैयार हुई हैं, या अपनी स्वतंत्र इच्छा से?"

अत्यंत उदास भाव से मञ्जरी ने कहा—"मेरा न कोई सगा-संबंधी जीवित है, न कहीं मेरा घर ही है।" कहते ही वह इस क़दर संकुचित हो उठी जैसे उससे कोई भारी अपराध हुआ हो।

प्रौढ़ा महिला के मुख का शांत और गंभीर भाव एकदम बदल गया और उनके मुख पर एक विषादपूर्ण म्लान छाया घिर आई। उन्होंने कुछ सोचकर कहा—"जब तक किसी दूसरी जगह आपका कोई ठिकाना लग नहीं जाता तब तक मेरे साथ आराम से रहिए। कोई काम होगा तो आपको दे दिया जायगा। मुझे अभी एक कक्षा में पढ़ाना है, तब तक आप आफ़िस के कमरे में चलकर बैठें।"

यह कहकर वह उठ खड़ी हुई और मञ्जरी को अपने साथ आफ़िस के कमरे में ले गईं। इसके बाद एक नौकर से कहकर उन्होंने मंजरी का जो थोड़ा-बहुत सामान एक्के पर पड़ा था उसे मँगा लिया, और एक्केवाले का किराया चुका देने के लिये कह दिया।

कुछ ही दिनों के अंदर प्रौढ़ा महिला से मंजरी की काफ़ी घनिष्ठता हो गई, और उसने अपने जीवन का सारा इतिहास उन्हें कह सुनाया। प्रौढ़ा महिला की सहृदयता का परिचय पाकर वह मुग्ध हो गई, और अपने जीवन की कोई भी बात—गुप्त से गुप्त भी—उसने उनके आगे नहीं छिपाई। उन्होंने किसी तरकीब से मंजरी को दो-तीन मध्य-कक्षाओं को अँगरेजी पढ़ाने के काम पर नियुक्त कर दिया। वेतन बहुत साधारण था, पर मंजरी के लिये वेतन का कोई प्रश्न ही उस समय नहीं था। वह प्रौढ़ा महिला के ही यहाँ भोजन करती थी और उन्हीं के साथ रहती थी। वहाँ वह हर तरह से संतुष्ट थी, केवल एक बात रह-रहकर समय असमय उसके मन में उठा करती थी। डाक्टरी सीखने की जो आकांक्षा उसके मन में बहुत दिनों से घर किये हुए थी, पर बीच में परिस्थितियों की विवशता के कारण दब-सी गई थी, वह इधर फिर से बड़े वेग से

उभरने लगी थी। आज तक उसका जीवन जिन कठिन बंधनों से जकड़ा रहा, अब उसकी घोर प्रतिक्रिया आरंभ हो गई थी। प्रौढ़ा महिला के यहाँ सब बातों का आराम होने पर भी उसका अनुभूतिशील हृदय अब वहाँ भी परतंत्रता की वज्र-कठिन बेड़ियों से अपने को बंधन-ग्रस्त समझ रहा था। पूर्ण आत्म-स्वातंत्र्य की चरम लालसा उसके भीतर प्रबलता से जग उठी थी। पर किस उपाय से वह विरोधी समाज के सहस्रों वज्र-कठोर शृंखलाओं से छुटकारा पाने में समर्थ हो सकेगी, इस संबंध में कोई भी निश्चित बात वह सोच ही नहीं पाती थी। यदि किसी उपाय से वह डाक्टरी की पूरी शिक्षा प्राप्त कर लेती, तो उसकी महत्वाकांक्षा की भी पूर्ति हो जाती, और संभवतः आत्म-स्वातंत्र्य की ओर भी एक बहुत बड़ा क़दम बढ़ा लेती। पर उसके लिये आर्थिक समस्या का समाधान कहाँ से हो!

एक दिन उसने उन्हीं प्रौढ़ा महिला—संस्कृति-निकेतन की संचालिका महोदया—के आगे अत्यंत संकोच के साथ अपने जीवन की उस एकांत अभिलाषा का उल्लेख किया। पहले तो उन्होंने उस बात को एक अनुभवहीन लड़की की चंचल आकांक्षा के रूप में ग्रहण किया। पर बाद में जब उन्हें मालूम हुआ कि वह प्रतिदिन, प्रतिपल केवल उसी एक आकांक्षा को अंतरतम मन में पालकर जी रही है, वर्ना जीवन की कटुता का जो चरम अनुभव उसे हो चुका है उसके बाद निश्चय ही वह आत्महत्या कर लेती, तो उन्होंने अत्यन्त गंभीर भाव से उस प्रश्न पर सोचना शुरू कर दिया। डाक्टरी की पढ़ाई में जो ख़र्चा बैठेगा उसका समाधान कैसे हो, इस बात पर वह दिन-रात विचार करने लगीं। अंत में उन्हें एक उपाय सूझा। एक धनी महिला से उनका घनिष्ठ परिचय था जो समाज-सुधार के कामों में काफ़ी दिलचस्पी लिया करती थीं। उनसे काफ़ी देर तक बातें करने के बाद संस्कृति-निकेतन की संचालिका महोदया ने उन्हें इस बात के लिये राज़ी कर लिया कि वे

प्रतिमास चालीस रुपया मंजरी को दिया करें, और बीस रुपया उन्होंने स्वयं अपनी गाँठ से देने का निश्चय कर लिया। मंजरी को उन्होंने कुछ नहीं बताया कि ख़र्च का प्रबंध उन्होंने किया है। एक दिन उन्होंने मंजरी को एकांत में बुलाकर कहा—"तुम अगर डाक्टरी पढ़ना चाहती हो, तो मैं उसका प्रबंध कर सकता हूँ। कलकत्ते के मेडिकल कालेज में मेरे परिचित एक सज्जन एक अच्छे पद पर हैं। मैं उनके लिये एक चिट्ठी लिखकर तुम्हें दे दूँगा। वह तुम्हें वहाँ बिना किसी दिक्क़त के भर्ती करा देंगे। रुपये का प्रबन्ध हो जायगा। प्रतिमास तुम्हें साठ रुपया मिल जाया करेगा। यदि कभी किसी ख़ास कारण से और अधिक रुपयों की ज़रूरत पड़े तो बिना किसी संकोच के लिखना।"

जब प्रौढ़ा महिला ने साठ रुपया महीने की बात कही तो मंजरी पुलकित भाव से, आश्चर्य के साथ उनकी ओर देखती रह गई। वास्तव में उसे पढ़ाई के ख़र्चे का ठीक अंदाज़ नहीं था, पर प्रौढ़ा महिला जानती थीं कि साठ रुपया महीना कम-से-कम चाहिये। उन्हें यह भी मालूम था कि डाक्टरी के किताबों के लिये भी एक काफ़ी बड़ी रक़म की आवश्यकता पड़ेगी। इस संबंध में उन्होंने सोच लिया था कि अपने परिचित सज्जन को लिखकर 'सेकेन्ड हैन्ड' किताबें मंजरी के लिये ख़रीदने का अनुरोध करेंगी।

इस घटना के प्रायः एक सप्ताह बाद मंजरी कलकत्ते को रवाना हो गई। जिन महाशय के लिये वह पत्र ले गई थी वह वास्तव में सज्जन निकले। उन्होंने मंजरी को कालेज में भर्ती करवा दिया, स्त्रियों के एक बोर्डिङ्ग हाउस में उसके रहने का प्रबंध करा दिया, और आवश्यक पुस्तकें भी जुटा दीं। मंजरी बड़ी लगन से अध्ययन करने लगी। प्रायः तीन महीने बाद उन्हीं सज्जन की चेष्टा से मंजरी के लिये दो जगह 'ट्यूशन' का भी प्रबंध हो गया। दो नयी रोशनी के मारवाड़ी सेठों

की लड़कियों को एक-एक घंटे के लिये पढ़ाने का काम उसे मिल गया। वेतन भी ख़ासा अच्छा तय हुआ। 'ट्यूशन' का प्रबंध होते ही मंजरी ने नारी-संस्कृति-निकेतन की सचालिका महोदया को अत्यंत विनम्रतापूर्वक कृतज्ञता जताते हुए लिख दिया कि अबसे वह उसके लिये ख़र्चा भेजने का कष्ट न करें क्योंकि प्रबंध हो गया है। इस प्रकार वह स्वावलंबन द्वारा आत्म-स्वातंत्र्य की पहली सीढ़ी पर चढ़ी।

वर्ष पर वर्ष बीतता चला गया। मंजरी बड़े अध्यवसाय के साथ अध्ययन में जुटी रही। कोर्स समाप्त होने के प्रायः एक वर्ष पहले मन्मथ-नाथ राय नामक एक अधेड़ अवस्था के बंगाली सज्जन से मंजरी का घनिष्ठ परिचय हो गया। राय महाशय मेडिकल कालेज के प्रौढ़ और प्रवीण अध्यापक थे। शल्य-चिकित्सा के क्षेत्र में उनकी दक्षता तमाम कलकत्ते में विख्यात थी। इस विशेष डाक्टरी कला में वह अपना सानी नहीं रखते थे। नाजुक से नाजुक स्थानों के आपरेशन ऐसे जादू की-सी सफ़ाई से करते थे कि देखकर दाँत-तले उँगली दबानी पड़ती थी। स्वभाव के ऐसे सच्चे, सहृदय और बमभोले थे कि कालेज का सारा 'स्टाफ़' और सब छात्र उनका बड़ा सम्मान करते थे और उन्हें आंतरिक श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। अपने काम के सिवा दुनिया की और किसी की बात की ख़बर उन्हें बहुत कम रहती थी। यहाँ तक कि उन्हें कभी इस बात की विशेष आवश्यकता महसूस नहीं हुई कि एक जीवन-संगिनी ढूँढ़कर पारिवारिक जीवन की सौम्य शांति का सुख भोगें—हालाँकि वह पचास के क़रीब पहुँच चुके थे। पर जबसे उन्होंने मंजरी को देखा, और उसकी लगन और तन्मयता का परिचय पाया तब से इस संबंध में उनकी अन्यमनस्कता भंग हुई। दूसरे छात्र-छात्रियों से वह उदासीन और अनमन भाव से बातें करते थे, पर मंजरी को देखते ही वह स्नेहपूर्वक मंद-मंद मुस्कराने लगते। जब किसी नये प्रयोग की शिक्षा वह अपने छात्रों को देते, तो दूसरे छात्रों की प्रायः पूर्ण उपेक्षा

करके सबसे पहले मंजरी को ही लक्ष्य करके समझाते रहते। उनकी विशेष कृपा का भाजन बनने के कारण मंजरी अत्यंत संकोच का अनुभव करने लगती। पर सच पूछा जाय तो वह भी मन-ही-मन राय साहब के प्रति आंतरिक स्नेह का अनुभव करने लगी—यद्यपि उस स्नेह के यथार्थ रूप का विश्लेषण करने की चेष्टा उसने कभी नहीं की। धीरे-धीरे राय साहब का स्नेहभाव उसके प्रति बढ़ता चला गया, और वह क्लास के बाहर भी उससे बातें करने के लिये उत्सुक रहने लगे। मंजरी का भी प्रारंभिक संकोच धीरे-धीरे मिट गया और वह सहज भाव से उनके साथ बातें करने की आदी हो गई। प्रारंभिक दो वर्षों में वह राय साहब के गुरु-गंभीर रूप का यथेष्ट परिचय पा चुकी थी। पर उससे घनिष्ठता बढ़ाने के बाद उनका वह रूप जब स्निग्ध हास और सहृदय उल्लास में परिणत हो गया तो मंजरी को आश्चर्य के साथ ही बड़ा सुख भी हुआ। कोई प्रतिष्ठित पद-प्राप्त अधेड़ व्यक्ति किसी कारण से बच्चों का-सा उल्लसित भाव प्रकट कर सकता है, इस बात का अनुभव इसके पहले उसे नहीं था। राय साहब दिनभर अपने काम में, मरीज़ों की देख-भाल में, इस क़दर व्यस्त रहते थे कि उन्हें फ़ुरसत का समय बहुत कम मिलता था। फिर भी वह समय मिलते ही मञ्जरी से मिलने उसके बोर्डिंग में चले जाते और कभी कभी उसे मोटर में सैर कराने के लिये भी ले चलते। उसकी अंतरात्मा यह महसूस करने लगी कि इस तरह के सच्चे स्नेह का परिचय उसे जीवन में पहली बार मिला है। पिता के स्नेह से वह सदा वंचित रही, माता का स्नेह उसके लिये कठोर बंधन-स्वरूप हो गया था, और पारसनाथ का प्रेम झूठा, विश्वास-घातक और जघन्य कुटिलता से भरा हुआ सिद्ध होगा। पर राय साहब के स्वभाव की सरलता, सचाई और सहृदयता उसे अविवादास्पद जान पड़ी। वह सोचती—"अगर यह स्नेह भी कपट से भरा प्रमाणित हुआ, तो मैं स्वयं अपने ऊपर विश्वास करना छोड़ दूँगी। यह सच है कि

मिस्टर राय वृद्धावस्था के निकट पहुँच गए हैं, और उनमें जवानी की सहज दीप्ति और स्वाभाविक स्फूर्ति शेष नहीं रह गई है; पर किसी की जवानी से मुझे क्या करना है ! जवानी के भड़कीले रंग में कैसी धोखेबाज़ी की अस्थायी चमक और पालिश होती है, यह मैं खूब देख चुकी हूँ। इन रोमांटिक प्रेमियों से भगवान् बचावे। मैं रोमांस की नहीं, सहृदयता की भूखी हूँ। मुझे प्रेमी की आवश्यकता नहीं है, मुझे या तो स्नेहशील संरक्षक चाहिये या चाहिये ऐसा सरल-स्वभाव, सकरुण और असहाय व्यक्ति जिसकी संरक्षकता का भार मैं स्वयं अपने ऊपर ले सकूँ। राय साहब में मैं ये दोनों विशेषताएँ वर्तमान पाती हूँ।"

छः वर्ष का लंबा कोर्स समाप्त करने के बाद मंजरी ने जब सम्मान के साथ डाक्टरी की परीक्षा पास करके अपने जीवन के चिर-आकांक्षित स्वप्न को सत्य करने में सफलता पा ली, तो डाक्टर राय ने एक दिन उसके आगे विवाह का प्रस्ताव किया। प्रस्ताव करते समय उनके मुख पर नव-विवाहित किशोर वर की तरह एक सुमधुर लज्जा की लालिमा छा गई, जो मंजरी को बहुत ही प्रिय लगी। उस दिन मंजरी के हर्ष-गद्‌गद हृदय में जिस सुख का अनुभव हुआ वह अभूतपूर्व था। उसने सलज्ज मुसकान से पुलकित स्वर में प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। राय साहब के बंगाली मित्रों ने एक अबंगाली महिला से विवाह करने के विपक्ष में बहुत बातें कहीं, और कुछ ने तो खुल्लम-खुल्ला विरोध करके उन्हें मित्र-मंडली से बहिष्कृत कर देने तक की धमकी दिखाई। पर राय साहब दार्शनिक प्रकृति के व्यक्ति थे। इसलिये उन्होंने किसी की बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, और एक दिन काफ़ी धूमधाम से दोनों का विवाह हो गया।

विवाह होने के बाद ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों दोनों यह अनुभव करने लगे कि उनका विवाहित जीवन उत्तरोत्तर सुखमय

बनता जा रहा है। दोनों एक-दूसरे को जितनी ही अधिक निकटता से जानते चले गए उसी परिमाण में दोनों का पारस्परिक प्रेम भी बढ़ता चला गया। राय साहब के 'मित्रों' ने सोचा था कि उस 'विषम' विवाह का परिणाम अच्छा नहीं होगा, और दोनों शीघ्र ही एक-दूसरे से उकता जावेंगे। पर समय के साथ ही साथ उन लोगों को अपनी आशा के एकदम विपरीत प्रमाण सुस्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे। वास्तव में राय दंपति के पारस्परिक सौहार्द का दृष्टांत अद्वितीय था, जिसने विवाह-शास्त्र के साधारण प्रचलित नियमों को मूलतः खंडित कर दिया था।

विवाह होने के बाद मंजरी के स्वास्थ्य में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया था। रक्त की वृद्धि से उसके मुख पर एक निराली सजीवता झलकने लगी थी। सौंदर्य की जो विशेषताएँ इतने दिनों तक उसके अस्वस्थ मुख पर सिकुड़ी और सिमटी हुई पड़ी थीं वे स्वास्थ्य की उन्नति के साथ ही साथ उभर उठीं। अपने पिछले जीवन की कटु-स्मृतियों को वह बहुत-कुछ भूल गई। उसका केवल काया-पलट ही नहीं हुआ, बल्कि उसे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे उसके मन ने भी नये अनुभवों के जादू से अपनी केंचुली बदल डाली है। अपने पिछले जीवन के मनोभावों से नये जीवन की अनुभूतियों का कहीं कोई साम्य ही उसे नहीं दिखाई देता था—जैसे किसी ने उसके पिछले और आज के जीवन के बीच में रात और दिन का-सा व्यवधान खड़ा कर दिया हो। दोनों जीवन-काल एक-दूसरे से संबंधित होने पर भी मूलतः भिन्न थे। पिछला जीवन जैसे अमावस्या की काली रात का विकट दुःस्वप्न था, जो भयंकर से भयंकर होने पर प्रातःकाल सूर्य निकलने पर अपने भयावनेपन का लेश भी नहीं छोड़ जाता।

प्रारंभ में कुछ दिनों तक पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे से अँगरेज़ी में

बातें करते थे—एकांत में सोते समय भी। पर बाद में राय साहब ने बीच-बीच में टूटी-फूटी हिंदी में बोलना शुरू कर दिया। मंजरी उनके मुख से बंगला-उच्चारण से फुलाई गई खिचड़ी हिंदी सुनकर हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती थी। कभी-कभी राय साहब विशुद्ध बँगला में उससे बातें करते थे। छः सात साल तक बंगालियों के बीच में रहने से मंजरी बड़े मज़े में बँगला का अक्षर अक्षर समझ लेती थी। वह स्वयं बँगला बोल भी सकती थी। पर उसे यह भय था कि जिस प्रकार राय साहब हिंदी बोलने पर उसके निकट परिहास के पात्र बने हैं, इसी प्रकार बँगला बोलने पर वह भी उसी प्रकार उसकी खिल्ली उड़ाना शुरू कर देंगे, इसलिये उसे साहस नहीं होता था। कुछ समय तक वह उनकी बँगला का उत्तर हिंदी में ही देती रही। पर बाद में उसने एक नया तरीका अख्तियार कर लिया। हिंदी वाक्यों के बीच में वह एक-आध वाक्य बँगला का इस ढंग से बोलती थी जिससे यह जान पड़े कि वह जानबूझकर परिहास के लिये ही बँगला बोल रही है। इस उपाय का फल यह हुआ कि उसे धीरे-धीरे ठेठ बँगला में बोलने का साहस हो आया। जब उसे धड़ल्ले से बंगला बोलने की आदत पड़ गई तो राय साहब के परिचित सज्जनों के घरों की स्त्रियाँ उसके साथ निकटता का अनुभव करने लगीं। इस प्रकार वह एक काफ़ी बड़े बंगाली-समाज की सदस्या-सी बन गई। राय साहब भी उसके निकट संसर्ग में आने से धीरे-धीरे खासी अच्छी हिंदी बोलना सीख गए। और वे दोनों कभी हिंदी में प्रेमालाप करते और कभी बँगला में।

डाक्टरी पास करते ही मंजरी ने 'प्रेक्टिस' करनी शुरू कर दी थी। राय साहब को उसका 'प्रेक्टिस' करना कुछ अच्छा नहीं मालूम हुआ। उनकी यह दलील थी कि जब वह काफी रुपया कमा लेते हैं, तो मञ्जरी को आर्थिक लाभ के लिये मरीज़ों को देखने की कोई आवश्यकता नहीं है। पर वास्तव में आर्थिक लाभ का कोई प्रश्न ही

मंजरी के दिमाग़ में नहीं था। दीन-दुःखियों की सेवा करना ही उसका प्रधान उद्देश्य था। वह सोचती कि यदि इतने परिश्रम, अध्यवसाय और धैर्य के बाद डाक्टरी पास करने पर भी वह पीड़ितों की कोई सेवा न कर पाई तो उसके जीवन की सारी साधना ही विफल हो गई। पर डाक्टर साहब से उसने कभी यह नहीं कहा कि वह आर्थिक लाभ के लिये 'प्रेक्टिस' नहीं कर रही है। वह उनकी आपत्ति के उत्तर में परम स्नेहपूर्वक मुस्कराकर कहती—"अर्थ के संचय में कभी संतोष नहीं करना चाहिये, यह आधुनिक युग के ज्ञानियों की राय है। न मालूम जीवन में कब किस तरह की आवश्यकता आ पड़े!" राय साहब भी कोई उपाय न देखकर चुपचाप मुस्कराकर रह जाते।

इस प्रकार स्नेह-प्रेम, सुख और संतोषमय जीवन की छाया राय दंपति के सौभाग्य-चक्र के ऊपर मङ्गलमय वितान ताने रही।

——

उनतालीसवाँ परिच्छेद

पारसनाथ के साथियों को—अब्बास और उसकी मंडली के दूसरे व्यक्तियों को—इस बात पर विश्वास नहीं होता था कि उसे बीच-बीच में कुछ समय के लिये वास्तविक पागलपन के दौरे आ जाते हैं। विश्वास न होने का कारण यह था कि पारसनाथ अपनी उद्भ्रांत कल्पना से निकली हुई बातों को इस ढङ्ग से, संयत और सुसंबद्ध रूप से कहता था कि वे एक ऐसे व्यक्ति के मुँह से निकली हुई मालूम होती थीं जिसके होश-हवास एकदम दुरुस्त हों। वे लोग केवल यह सोचते थे कि पारसनाथ का स्वभाव साधारण व्यक्तियों से कुछ अधिक वहमी है। यह बात कुछ अंशों में ठीक भी थी। पारसनाथ का क्षणिक पागलपन वहम का ही विकसित रूप था, और अभी किसी ख़ास ख़तरे

की हालत को नहीं पहुँचा था। नंदिनी से भी उसके वहमी मन का हाल छिपा न रहा। उसे इस बात से बहुत दुःख हुआ, पर सच बात यह थी कि उसका अंतर्मन पारसनाथ के संग से बेहद उकता गया था। यहाँ तक कि अपने अनजान में वह उससे घृणा करने लगी थी। मञ्जरी के इतिहास से यद्यपि वह तनिक भी परिचित नहीं थी, तथापि उसका अंतर्मन जान गया था कि पारसनाथ का वहम उसके भीतर बद्धमूल कुछ घोर दुष्कर्मी प्रवृत्तियों और विकृतियों की ही प्रतिक्रिया का परिणाम है। उसकी घृणा का यही कारण था। पर साथ ही प्रतिहिंसा की इस प्रवृत्ति को दबाकर करुणा की एक हिलोर बरबस उसके भीतर उथल उठती थी और पारसनाथ की दयनीय दशा पर उसे तरस आने लगता था।

समय बीतता चला गया। पारसनाथ की मानसिक दशा न अधिक कुछ बिगड़ी, न कुछ विशेष सुधरी ही। पर प्रगति कुछ अच्छाई की ओर ही दिखाई दी। बाद में धीरे-धीरे उसके मन से आत्म-सम्मान खोने की ग्लानि भी बहुत-कुछ जाती रही, और उस ग्लानि के कम होने का यह असर हुआ कि उसके जड़ताग्रस्त मन से वहम भी बहुत-कुछ जाता रहा।

एक दिन सुबह जब वह नींद खुलने के बाद भी आलस्यवश पलँग पर ही लेटा हुआ था, तो बग़लवाले कमरे से एक अपरिचित स्त्री के बोलने की आवाज़ उसके सुनने में आई। वह नया कंठ-स्वर नंदिनी के गले की आवाज़ से थोड़ा-बहुत मिलता हुआ होने पर भी उसमें बड़ा अंतर था, और वह पारसनाथ को बहुत ही प्रिय और सुखद लग रहा था। उसमें क्या विशेषता थी इस बात का अंदाज़ वह नहीं लगा पाता था, पर चित्त को इस क़दर शांति पहुँचानेवाली आवाज़ उसने जीवन में शायद ही कभी सुनी हो। वह स्त्री कौन है और कहाँ से आई है, इस बात का पता लगाने की चेष्टा में वह लेटे लेटे

नंदिनी के साथ उसका वर्तालाप बड़े ग़ौर से सुनने लगा। वह नंदिनी के साथ घुल-घुलकर बातें कर रही थी, जैसे दोनों का जन्मगत परिचय हो। कुछ देर तक ध्यानपूर्वक दोनों की बातें सुनते रहने के बाद उसने यह अंदाज़ लगाया कि संभवतः दोनों सगी बहनें हैं। उसे याद आया कि भुजौरियाजी से अपने विवाह की चर्चा चलाते समय एक दिन नंदिनी ने अपनी बहनों का उल्लेख किया था, जिससे स्पष्ट था कि उसकी एक से अधिक सगी बहनें हैं। निर्मला उससे छोटी थी, और यह नवागता बहन निश्चय ही उससे बड़ी थी, क्योंकि नंदिनी उसे 'दीदी' कहकर पुकार रही थी। नवागता स्त्री किसी एक व्यक्ति का उल्लेख करके स्पष्ट शब्दों में उसकी निंदा कर रही थी, और उसकी ज्यादतियों का वर्णन कर रही थी। पहले पारसनाथ ने समझा कि वह अपने पेशे से संबंधित किसी एक व्यक्ति की कंजूसी की शिकायत कर रही है। ऐसा उसने क्यों समझा यह वही जाने, क्योंकि वास्तव में कंजूसी की कोई चर्चा किसी रूप में न नयी आई हुई स्त्री ने चलाई थी न नंदिनी ने। बाद में जब उसने और अधिक ध्यान से सुना तो मालूम हुआ कि मामला कुछ दूसरा ही है। नवागता स्त्री असल में नंदिनी के आगे यह शिकायत कर रही थी कि अपने जिस 'प्रेमिक' के साथ वह भाग निकली थी वह उसे धुत्ता देकर, बड़ी दयनीय दशा में उसे छोड़कर चंपत हो गया है। वह कह रही थी—"निर्मला ने अगर वक्त पर मेरे लिये तार से रुपया न भेजा होता, नंदो, तो मेरी क्या दुर्गति हो गई होती, यह तुम नहीं सोच सकतीं।"

नंदिनी बोली—"निर्मला ने मुझसे पहले ही कह दिया था कि जिस आदमी के साथ तुम भगी हो निश्चय ही तुम्हारे गहने-पत्ते लेकर एक दिन तिड़ी हो जायगा। अंत में वही बात हुई। निर्मला ने मुझको भी विवाह करने के पहले चेतावनी दे दी थी कि उसका परिणाम मेरे लिये अच्छा नहीं होगा। उसकी वह बात भी सच निकली।

निर्मला हमारी बहुत ही समझदार बहन है, दीदी, उसकी बात न मान कर हम लोगों ने बहुत दुख उठाया है, और आगे भी उठावेंगे—अगर उसकी मर्ज़ी के खिलाफ़ कोई काम करेंगे तो! मेरे विवाह का विरोध तुमने भी किया था, पर उस हद तक नहीं, जिस हद तक निर्मला ने। और अंत में तुम स्वयं उसी प्रकार के चक्कर में जा फँसीं।"

इसी तरह की बातें दोनों में हो रही थीं। पारसनाथ काफ़ी देर तक लेटे-लेटे सुनता रहा। दिन में जब अब्बास और उसके साथ के आदमी बाहर बैठक के कमरे में प्रतिदिन की तरह आज भी आकर गपशप करने लगे, तो पारसनाथ भी उनके बीच में जाकर बैठ गया। बैठते ही अभ्यासवश उसने कहा—"यार अब्बास, एक सिगरेट पिलाओ।" अब्बास ने जेब से सिगरेट निकालकर उसे पीने को दी। पारसनाथ दीवार से पीठ अड़ाकर फ़र्श पर बिछी हुई क़ालीन में पाँव फैलाकर बैठ गया, और सिगरेट पीने लगा। सिगरेट पीता हुआ वह, बिना किसी ज्ञात उद्देश्य के, सामने बाईं तरफ़वाले कमरे की ओर देखने लगा। सहसा उस कमरे के दरवाज़े का पर्दा हटाकर एक महिला ने उसकी ओर झाँका। महिला की आयु छब्बीस-सत्ताईस वर्ष के लग-भग होगी। उसका स्वास्थ्य न बहुत अच्छा था न बहुत बुरा, पर उस गोरे-चिट्टे मुख पर एक असाधारण चमक थी, और चित्र-लिखित-सी भौंहों और काली तथा घनी बरौनियों की विशेषता बहुत आकर्षक थी। तिस पर उसने एक मार्मिक कटाक्ष से पारसनाथ की ओर देखा, जो उसके लिये सहज और साधारण-सी बात होने पर भी पारसनाथ के लिये असाधारण महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। उस विचित्र रूपवती महिला को देखते ही पारसनाथ को ऐसा महसूस हुआ कि उसे जीवन में आज एक नया अनुभव हुआ है। उसके जड़ता-ग्रस्त मन में आज बहुत दिनों बाद अजीब बेचैनी समा गई। कुछ देर बाद महिला भीतर चली गई, और पारसनाथ न जाने क्या सोचता रह गया।

उस दिन से पारसनाथ के जड़ और विकृत जीवन में एक नया परिवर्तन आ गया। जिस महिला को उसने उस दिन देखा था वह नंदिनी की बड़ी बहन थी। उसका नाम हीरा था। नंदिनी शहर के राजा-रईसों की 'पार्टियों' में व्यस्त रहती थी, और हीरा अक्सर घर पर अकेली रहती थी। चूँकि स्वभावतः उसे अकेलापन अच्छा नहीं लगता था, इसलिये वह अपनी बहन की 'पोज़ीशन' का ख़याल न करके अब्बास की मंडली में आकर बैठ जाती और उनके गपशप में बड़ी दिलचस्पी से भाग लेती। असल में हीरा यद्यपि अपनी दोनों बहनों से अधिक रूपवती और सहृदय थी, तथापि वह न उनकी तरह सुसंस्कृत थी न संगीत-कला का ही विशेष ज्ञान उसे था। इसलिये सुसंस्कृत समाज में उसकी पूछ नहीं होती थी और साधारण श्रेणी के व्यक्तियों से ही उसका पाला पड़ता था। वर्षों के अनुभव के बाद अपने पेशे से वह भी नंदिनी की ही तरह उकता गई थी, और इस चिंता में थी कि यदि कोई सहृदय व्यक्ति मिले (चाहे वह विशेष धनी न भी हो) तो वह उसके साथ जीवनव्यापी प्रेम-संबंध स्थापित कर ले, और संभव होने पर उससे विवाह ही कर ले। दीर्घ प्रतीक्षा के बाद उसे एक ऐसा व्यक्ति मिला जिसके विषय में उसके मन में यह धारणा जम गई कि वह उसके मन का आदमी है, और उसे हृदय से चाहता है। उस व्यक्ति ने उसे बताया कि वह चाँदी और सोने की खानों से संबंधित किसी कंपनी का पत्तीदार है, और अविवाहित है। हीरा उसके बहकाने में आ गई, और एक दिन उसके साथ निकल भागी। बाद में मालूम हुआ कि न वह किसी सोने या चाँदी की खान में पत्तीदार है, न अविवाहित ही है। बचपन में ही उसका विवाह हो चुका था। उसकी पत्नी अभी जीवित थी और उससे उसके तीन बच्चे भी थे। पर उसने अपनी पत्नी को एक प्रकार से छोड़ दिया था, और स्वयं अनेक कुचक्रों से भले आदमियों को ठगकर पेशेवर शोहदों का जीवन

बिताया करता था—हालाँकि उसका बाहरी ठाठ देखकर कोई यह नहीं कह सकता था वह शोहदा है। उसके कुछ दिनों तक हीरा को पटने के एक किराए के बँगले में टीमटाम के साथ रखा। बाद में उसके सरल और सहृदय स्वभाव का लाभ उठाकर वह धूर्त उससे कुछ नक़दी लेकर, बँगले में उसे अकेली छोड़ कर, एक रात लापता हो गया। हीरा के पास वापस जाने के लिये एक पैसा भी नक़द नहीं बचा। तिसपर बँगले के मालिक ने किराए के लिये उसे तंग करना शुरू किया। उसने अपना कोई गहना बेचने के पहले निर्मला को तार भेज कर सारी स्थिति समझा देना उचित समझा। निर्मला ने तार पाते ही तार द्वारा दो सौ रुपया उसके लिये भेज दिया। लखनऊ वापस आने पर उसने ग्लानि के कारण पहले की तरह एक अलग कोठे पर जमने का विचार छोड़ दिया। वह सीधे नंदिनी के यहाँ आकर उतरी और उसी के यहाँ रहने लगी। निर्मला के यहाँ जगह की कमी से तथा और भी कुछ कारणों से उसने अपने रहने की सुविधा नहीं समझी।

कोठेवालियों का-सा जीवन बिताना उसने भले ही छोड़ दिया हो, पर अपने सरस हृदय की स्वाभाविक दुर्बलता को वह त्याग नहीं सकती थी। शांति और संतोषमय गृहस्थ-जीवन बिताने की और किसी सहृदय पुरुष का सच्चा, निःस्वार्थ और स्थायी प्रेम पाने की जो लालसा उसके मन में बहुत दिनों से थी वह पिछले कटु अनुभव से भी नहीं दब पाई थी। पारसनाथ के मनोविकार-ग्रस्त, उद्भ्रांत व्यक्तित्व को जो पारलौकिक छाया उसके शीर्ण मुख पर और चमकती हुई आँखों में सब समय घिरी रहती थी वह हीरा को अपार रहस्यमयी लगती थी, और इसी कारण से अत्यंत आकर्षक भी मालूम होती थी। और पारसनाथ को भी उसकी भोली छवि बहुत मोहक लगने लगी थी।

आरंभ में कुछ दिनों तक पारसनाथ उससे कुछ बोला नहीं; केवल

चुपचाप उसकी प्रत्येक हरकत, रंग-ढंग और बात-व्यवहार पर ग़ौर करता रहा। हीरा उसका रुख देखकर चाहने पर भी उससे कुछ बोल नहीं पाती थी। एक-आध प्रश्न उसने किया था, पर पारसनाथ रूखा उत्तर देकर चुप लगा गया था। प्रायः एक हफ़्ते बाद पारसनाथ के मौन की प्रतिक्रिया शुरू हुई। एक दिन जब हीरा और पारसनाथ दोनों अब्बास की मंडली में बैठे हुए थे, तो पारसनाथ ने, बिना किसी पूर्व चर्चा के, अचानक हीरा से कहा—"बाईजी, आप अपनी दोनों बहनों की तुलना में अधिक सुन्दर हैं। मुझे अफ़सोस है कि पहले आपसे मेरी मुलाक़ात नहीं हुई।"

हीरा को यह क़िस्सा मालूम था कि नंदिनी पारसनाथ के साथ भगकर लखनऊ वापस आई है। वह यह भी जानती थी कि उन दोनों का प्रेम-संबंध रह चुका है। केवल इतना वह नहीं जानती थी—जानने पर भी समझने की बुद्धि नहीं रखती थी—कि पारसनाथ ने बाद में नंदिनी को किस क़दर अपमानित किया और कैसी मार्मिक चोट पहुँचाई। वह इस घटना के संबंध में इस तरह सोचती थी कि कुछ समय तक नंदिनी पारसनाथ को चाहती रही, और बाद में किसी कारण से उससे विरक्त हो गई। इसमें वह नंदिनी का ही दोष समझती थी, क्योंकि पारसनाथ के संबंध में वह प्रत्यक्ष देख रही थी कि वह अभी तक उसके साथ लगा हुआ है, और उस व्यक्ति के समान नहीं है जिसके साथ वह स्वयं भाग निकली थी। इस कारण भी पारसनाथ उसकी नज़र में बहुत ऊँचा चढ़ गया था। भीतर की असली बात वह कुछ नहीं जानती थी।

कुछ भी हो, जब पारसनाथ ने उसके रूप की प्रशंसा करते हुए कहा कि "मुझे अफ़सोस है, पहले आपसे मुलाकात नहीं हुई", तो इस बात के संबंध में उसने यह नहीं सोचा कि वह कहनेवाले की धूर्तता

हो सकती है या व्यंग हो सकता है। इस बात से उसका आत्म-गौरव जग उठा। पर वह केवल सोल्लास मुस्कराकर रह गई, बोली कुछ नहीं।

पारसनाथ ने कहा—"अगर आप आज्ञा दें तो मैं आपकी एक तस्वीर खींचना चाहता हूँ।"

हीरा ने पूछा—"आपके पास कोई अच्छा-सा केमरा है क्या?"

पारसनाथ आज बहुत दिनों बाद मुस्कराया। अत्यंत शिष्ट और शालीन भाव से उसने कहा—"जी नहीं। मैं पेंसिल से आपकी तस्वीर काग़ज़ पर उतारूँगा, फिर उसके बाद उस पर रंग करूँगा।"

अकृत्रिम आश्चर्य से, पुलकित भाव से हीरा बोली—"अच्छा! आप क्या तस्वीर बनाना भी जानते हैं!"

"जी हाँ, आपकी दुआ से थोड़ा-बहुत जानता हूँ।"

अब्बास के संग में रहने से वह 'आपकी दुआ से,' कहना सीख गया था।

"तब तो ज़रूर आप मेरी तस्वीर खींच दीजिए!"—नाज़ के साथ हीरा ने कहा।

पारसनाथ उसी दम काग़ज़-पेंसिल मँगवा कर चित्र अंकित करने लगा। इस काम में ढाई तीन घंटा लग गया, हीरा बड़े धैर्य से इतने अर्से तक स्थिर बैठी रही। पेंसिल का काम ख़तम हो जाने पर पारसनाथ उस चित्र को रंगमय बनाने के काम पर बड़ी लगन से जुट गया। दो चार दिन की पूरी मेहनत के बाद जब चित्र तैयार हो गया तो उसने हीरा को उसे अर्पित कर दिया। हीरा उस चित्र पर इतना मुग्ध हो गई कि बहुत देर तक उसे देखती रह गई। वह चित्र फ़ोटो की अपेक्षा कई गुना अधिक सजीव और सुंदर था। उसने बड़े

चाव से उस चित्र पर फ्रेम मढ़ाकर उसे अपने कमरे में पलँग के सिरहाने टाँग दिया।

उस चित्र की चर्चा चलाते हुए उसने पारसनाथ से कहा—"आप तो एक जादूगर मालूम होते हैं।"

पारसनाथ ने उदास भाव से मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"जी हाँ, मुझे भी कुछ ऐसा ही लगता है। सुना है कि पिछले ज़माने के जादूगर किसी आदमी को पकड़कर उसे जानवर बना दिया करते थे। मेरी इस जादूगरी का क्या कहना कि मैं स्वयं अपने को कुत्ता बनाये बैठा हूँ, और दुरदुराया जाने पर भी दूसरों के फेंके हुए टुकड़ों पर जीने की क़सम खाये बैठा हूँ। ऐसा कहा जाता है कि जिन आदमियों को जादू से जानवर बनाया जाता था उनको पशु-रूप में जीवन बिताने पर भी अपनी मनुष्य-योनि की सब बातें याद रहती थीं, और बुद्धि भी उनमें मनुष्यों की-सी ही होती थी। पर मनुष्यों का-सा आचरण करने में वे स्वभावतः असमर्थ रहते थे। मेरा भी ठीक वही हाल है। कुत्ते की-सी अवस्था होने पर भी मैं जानता हूँ कि मुझमें मनुष्य की सभी शक्तियाँ वर्तमान हैं, पर चाहने पर भी उन शक्तियों को काम में लाने की क्षमता मुझमें नहीं रह गई है।"

हीरा के लिये यह एक और रहस्यवादी बात थी। वह उसका मर्मगत आशय ठीक से कुछ समझी नहीं। फिर भी अपनी बुद्धि के अनुसार उसने उसका एक विशेष अर्थ लगा लिया। उसने कहा—"आप हर तरह से योग्य और बुद्धिमान होने पर भी अपनी रोज़ी का कोई ठिकाना लगाने से डरते हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है।"

"आप ठीक कह रही हैं, हीरा बाई, यह बात आश्चर्य की ही है, इसमें शक नहीं। स्वयं मुझे अपने मन की इस हालत पर आश्चर्य होता है। फिर भी मुझे विश्वास है कि मेरे मन की यह दशा अब अधिक समय तक ठहरने नहीं पावेगी।"

कौतूहलवश हीरा ने पूछा—"इस नये विश्वास का कारण क्या है, क्या मैं जान सकती हूँ?"

पारसनाथ ने बड़े इतमीनान के साथ कहा—"कारण यह है कि अब आपसे मेरा परिचय हो गया है।"

हीरा के सुन्दर गौरवर्ण मुख पर प्रसन्नता की दीप्ति झलक उठी, हालाँकि पारसनाथ की बात वह ठीक से समझ नहीं पाई थी। उसने कहा—"तो इससे क्या हुआ! मेरा परिचय आपके किस काम आ सकता है!"

"आप बहुत भोली हैं, हीरा बाई, इसलिये मेरा आशय नहीं समझ पा रही हैं। आपका परिचय मेरे पिछले जीवन की सब भूलों को धोकर मुझे फिर से कुत्ते से मनुष्य बना सकता है, बशर्ते आपकी कुछ भी कृपा मुझ पर हो।"

हीरा ने अपनी समझ के अनुसार पारसनाथ की बात का ऊपरी अर्थ लगा लिया। और एक प्रकार से ठीक ही लगाया। पर उस ऊपरी बात के अन्तराल में जो गुप्त और मार्मिक रहस्य छिपा हुआ था उसे वह नहीं समझ पाई, और न समझने की कोई विशेष इच्छा ही उसके मन में उत्पन्न हुई। जितना-कुछ वह समझ पाई थी वही उसके लिये इतना अधिक था कि उसकी सारी आत्मा उससे भर गई थी। उसके जन्म से कुचला और ठुकराया गया नारी-हृदय इतने दिनों तक जड़ और चेतनाहीन-सा बना हुआ था। यद्यपि भूकम्प के हलके धक्कों का मृदु-मृदु कंपन वह बीच-बीच में अनुभव करती रहती थी, तथापि उन कंपनों का महत्त्व समझने की चेष्टा उसने कभी नहीं की, और बराबर उनके प्रति उदासीन ही बनी रही। पर आज पारसनाथ की केवल एक बात से उसके अंतर के अतल में जैसे एक अग्निमयी क्रांति मच उठी, जिसके फलस्वरूप उसके हृदय

का रुद्ध मुख ज्वालामुखी के एक प्रचंड विस्फोट से खुल गया, और उसका सारा व्यक्तित्व एक भीषण भूकंप के आन्दोलन से डाँवाडोल हो उठा। उसके सरल किंतु चंचल चित्त में इसके पहले कोई भी अनुभूति ऐसी गहरी मार्मिकता के साथ स्पंदित नहीं हुई थी। उसकी चकित हरिणी के समान आँखों में एक गहन-गंभीर भाव की छाया घिर आई।

उसने कहा—"मैं तो नाचीज़ हूँ, पारसनाथ बाबू,—एक तुच्छ और हीन प्राणी हूँ। अगर मैं जीवन में आपकी किसी भी सेवा में आ सकी, तो अपने को कृतार्थ समझूँगी। भला मैं आपको उबारने की क्या सामर्थ्य रखती हूँ! फिर भी विश्वास रखिए कि मैं तन-मन से आपके साथ हूँ।"

पारसनाथ को जैसे एक नया जीवन और नयी स्फूर्ति मिली। उसे ऐसा लगने लगा, जैसे उसके पिछले जीवन के पतन की सब घटनाओं और समस्त पाप-परितापमूलक भावनाओं का कोई अस्तित्व ही कभी नहीं रहा,—जैसे आज जीवन में प्रथम बार एक नारी से उसके प्राणों का परिचय हुआ हो। उसके सचेत मन ने उस समय के लिये उसके अंतर्मन के ऊपर ऐसे जबर्दस्त धोखे की टट्टी खड़ी कर दी कि वह अपने स्वभाव की मूलगत हीनता के साथ ही अपने नारकीय दुष्कर्मों को एकदम भूल गया। इस बात पर कोई विचार ही उसके मन में उत्पन्न नहीं हुआ कि जिस प्रकार वह उसके पहले कई सहृदय स्त्रियों को अपने फंदे में फँसाकर उनके साथ अधम व्यवहार कर चुका है, संभवतः उसी प्रकार हीरा के साथ भी अन्त में वह उसी तरह पेश आवेगा। बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के वह इस बात पर विश्वास किये बैठा था कि हीरा को पाने से उसके जीवन की मूल गति ही एकदम पलट सकती है, और उसके मन की विशृङ्खल और अस्त-व्यस्त अवस्था सुसंगत और सुस्थिर बन सकती है।

मुख पर एक रहस्यमय भाव झलकाते हुए वह बोला—"आप अपने को नाचीज़ बताती हैं, पर मैं जान गया हूँ कि आप अपने भीतर कौन-सी शक्ति छिपाये बैठी हैं। जो भी हो, आज आपने मुझे जो भरोसा दिया है उससे मुझे बहुत बड़ा बल मिल गया है। आपके इस कृपा-भाव से मैं आपको धन्यवाद देकर उसका महत्त्व नष्ट नहीं करना चाहता, इसलिये इस विषय में अधिक कुछ नहीं कहूँगा।"

——

चालीसवाँ परिच्छेद

उस दिन से हीरा के साथ पारसनाथ की घनिष्ठता दिन दूनी और रात चौगुनी—इस रफ़्तार से बढ़ती चली गई। अब्बास ने आश्चर्य से इस बात पर ग़ौर किया कि जब से पारसनाथ हीरा का कृपापात्र बना तब से उसके स्वभाव में और व्यवहार में आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया है। कुछ समय पहले उसकी बातों से बीच-बीच में पागलपन के जो स्फुट लक्षण प्रकट होने लगे थे वे बिलकुल ग़ायब हो गए। एक अनोखा उल्लास और एक निराली सजीवता उसके रूप में, रंग में, बात में और व्यवहार में व्यक्त होने लगी। अब्बास को पारसनाथ का वह बदला हुआ रूप देखकर आंतरिक हर्ष हुआ और वह भरसक उन दोनों के संबंध को घनिष्ठ से घनिष्ठतर बनाने की चेष्टा में अपनी तरफ़ से कोई बात उठा नहीं रखता था। मौक़ा पाने पर वह हीरा के आगे पारसनाथ की अनुपस्थिति में उसके 'असाधारण और अलौकिक' गुणों का बखान बड़े गंभीर भाव से फ़ारसी और अरबी लफ़्ज़ों की भरमार के साथ करता था और पारसनाथ के आगे हीरा की विशेषताओं का वर्णन करता था। पारसनाथ किसी उपाय से स्वस्थ हो और प्रसन्न हो, यह उसकी आंतरिक आकांक्षा थी। उसका यह

अनुमान था कि नंदिनी ने उसके साथ बड़ा अन्याय किया है, इसलिये वह किसी उपाय से उस अन्याय का प्रतीकार चाहता था। उसकी समझ में हीरा उस प्रतीकार का सबसे उपयुक्त साधन थी।

नंदिनी भी हीरा के साथ पारसनाथ की घनिष्ठता के प्रति उदासीन नहीं थी प्रारंभ में यह बात उसे कतई अच्छी नहीं मालूम हुई कि हीरा एक ऐसे व्यक्ति को चाहने लगी है, जो (उसकी समझ में) निश्चय ही पहले व्यक्ति से भी बड़ा धोखेबाज़ सिद्ध होगा। उसने हीरा को संकेत-रूप से यह बात समझाई थी। पर जब उसने देखा कि हीरा न तो पिछले अनुभव से कोई लाभ उठाने को तैयार है, न उसके संकेत को ही कोई महत्व देना चाहती है, तो उसने इस संबंध में फिर उससे कोई बात नहीं की। इसके अलावा उसने देखा कि हीरा पेशे के प्रति उसी तरह विद्रोही हो उठी है, जिस तरह वह स्वयं एक बार हुई थी, एक-न-एक प्रेमिक के सहारे के बिना वह जी नहीं सकती —इसलिये जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ ! उसने सोचा—अधिक से अधिक दो-तीन बार ठोकरें खाने के बाद उसी की तरह फिर से उसका विचार स्वयं बदल जायगा। इस बात पर भी वह ध्यान दे रही थी कि हीरा के साथ हेलमेल बढ़ाने के बाद से पारसनाथ शारीरिक और मानसिक रूप से भी स्वस्थ-सा दिखाई देने लगा है। कौन जाने, उसकी बुद्धि इस बार ठिकाने लग जाय, और वह वास्तव में हीरा को...! पर नहीं, यह नामुमकिन है ! जिस प्रकार उसे समाज के इन घातक कीड़ों ने वेश्या-जीवन के विरुद्ध उसके विद्रोह को बलपूर्वक दबाकर आजीवन वेश्या बने रहने के लिये बाध्य किया है, उसी प्रकार हीरा भी चाहे लाख सिर पटके और छटपटावे, अंत में उसे भी वेश्या की वेश्या बने रहने के लिये विवश किया जायगा। पर कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि वह हीरा के किसी भी निर्णय में दखल नहीं देगी। ठोकरें खाने के बाद वह स्वयं जिस निष्कर्ष पर पहुँचेगी वही उसके लिये सबसे

अधिक उपयुक्त होगा। इस तरह सोचकर नंदिनी सब कुछ देखने-सुनने पर भी चुप थी।

पारसनाथ ने देखा कि हीरा अपनी बहनों की तरह संगीत-कला में एक प्रकार से अनाड़ी है और इस कारण से वह अपनी हीनता के बोध से अपने अज्ञात में बहुत पीड़ित रहती है। इसलिये उसने अपना 'अनंत अवकाशमय' समय उसे संगीत की विशिष्ट शिक्षा देने में लगाने का निश्चय कर लिया, और शीघ्र ही उस निश्चय को कार्यरूप में परिणत करना भी शुरू कर दिया। वह दिन भर में प्रायः पाँच घंटे हीरा को गाना सिखाया करता। नंदिनी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पारसनाथ गाने-बजाने की कला में इतना अधिक पारंगत है। उसे इस बात का पता अवश्य था कि पारसनाथ गाना जानता है और उसका गला मीठा है। पर वह इसके पहले यह नहीं जानती थी कि वह इस कला का पूरा उस्ताद है। हीरा उसके शिष्यत्व में बड़ी लगन से सीखने लगी। फल यह हुआ कि चंद महीनों के अंदर उसका संगीत-ज्ञान यदि नंदिनी से अधिक नहीं बढ़ा तो उसके मुकाबले तक अवश्य पहुँच गया। इन पाँच घंटों के अलावा प्रतिदिन प्रायः दो घंटा नियमित रूप से पारसनाथ उसे हिंदी और अँग्रेज़ी की ऊँची शिक्षा दिया करता था। प्रायः डेढ़ वर्ष तक यह क्रम जारी रहा।

इसके बाद एक दिन पारसनाथ ने हीरा से कहा—"तुम्हें यह नहीं सुहाता कि अपनी बहन की कमाई खाओ, और उसके अधीन रह-कर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास का पथ जानबूझकर रोके रहो।"

हीरा ने कहा—"आपको शायद मालूम नहीं है कि हम तीनों बहनों में कभी किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहा है। तीनों एक-साथ पली हैं, एक-साथ बढ़ी हैं, और प्रायः एक-साथ ही तीनों ने जीवन में प्रवेश किया है। इसमें संदेह नहीं कि बाद में हम तीनों का बाहरी

जीवन अलग-अलग ढंग से बीता है, पर उससे हम लोगों की आत्मीयता में कभी नाममात्र को अंतर नहीं आ पाया है। इसलिये नंदिनी के 'अधीन' रहकर मेरे व्यक्तित्व के नष्ट होने की जो आशंका आपके मन में उत्पन्न हुई है वह मुझे बिलकुल निराधार मालूम होती है।"

पारसनाथ विचित्र व्यंगपूर्वक मुस्कराया। हीरा को यदि मानव-स्वभाव की विकृतियों का गहरा ज्ञान होता, और यदि उसने मनुष्य के मुख पर विभिन्न अवस्थाओं और विविध रूपों में उभरने और विलीन होनेवाली रेखाओं का अध्ययन करना सीखा होता, तो पारसनाथ की उस मुस्कान की आड़ में वह देखती कि एक लोमहर्षक और नारकीय प्रतिहिंसा अपने कुटिल दाड़ों को दिखा रही है। बहुत ही शिष्ट और शांत स्वर में, परम हितैषिता का भाव जताते हुए पारसनाथ बोला—"यह आत्मीयता ही तो तुम्हारे जीवन की प्रगति में सबसे अधिक बाधक सिद्ध हुई। जिस प्रकार दो निकटवर्ती पौदों के पारस्परिक आलिंगन का यह फल होता है कि सतेज शक्तिशाली पौदा अपेक्षाकृत क्षीण पौदे को अपनी छाया से ढककर बढ़ने नहीं देता, उसी प्रकार एक संग पले-पुसे दो व्यक्तियों का भी यही हाल होता है। स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास मनुष्य की उन्नति के लिये परम आवश्यक है। इसलिये आत्मीयता के बंधन को काट डालना सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है। तुम में रूप है, यौवन है, और कुछ ऐसे विशेष गुण हैं जो तुम्हारी दोनों बहनों में से किसी में भी नहीं हैं। तिस पर भी तुम नंदिनी की तुलना में निस्तेज पड़ी हुई हो और उपेक्षित जीवन बिता रही हो, इसका एकमात्र कारण यह है कि नंदिनी में तुमसे अधिक स्फूर्ति है, और है ऊँची महत्त्वाकांक्षा। वह आत्मीयता के ऊपर उठ गई है और तुम अभी तक आत्मीयता के बंधन में अपने को फँसाये हुए हो।"

जब पारसनाथ ने बार-बार इस प्रकार के 'लेक्चर' पिलाने शुरू

कर दिए, तो एक दिन हीरा ने सचमुच नंदिनी के यहाँ से डेरा उठा लिया और पारसनाथ के साथ एक अलग मकान में जाकर रहने लगी। इधर कुछ समय से पारसनाथ की कूटबुद्धि आश्चर्यजनक प्रगति के साथ विकास को प्राप्त होती चली जा रही थी। वह जानता था कि अभी हीरा के पास कई हज़ार रुपये मूल्य के गहने और थोड़ी-बहुत पूर्व-संचित नक़दी शेष है। पर दोनों की बेकारी हालत में उस संचित धन पर एकदम से टूट पड़ना अदूरदर्शिता होगी, यह सोचकर उसने हीरा के आगे एक प्रस्ताव रखा। उसने कहा—"देखो हीरा, मुझे इस बात पर दृढ़ विश्वास हो गया है कि तुम अब मेरे जीते-जी कभी वेश्या का व्यभिचारमय-जीवन नहीं बिता सकती। पर नाच-मुजरे से तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये, क्योंकि वह एक कला है।"

"कला को बेचकर पैसे कमाना क्या कला का व्यभिचार नहीं है?" यह प्रश्न करते हुए हीरा को मन-ही-मन हर्ष हो रहा था, हालाँकि बाहर से उसके मुख पर गंभीर भाव वर्तमान था। वह भीतर ही भीतर सोच रही थी कि पारसनाथ जैसे सुसंस्कृत व्यक्ति के संसर्ग में डेढ़-दो वर्ष रहकर उसकी नैतिक भावना इस क़दर सूक्ष्म और सुकुमार हो उठी है कि अब वह 'कला के व्यभिचार' के प्रश्न पर भी विचार करने की अधिकारिणी हो गई है।

पारसनाथ बोला—"नहीं, मैं इसे कला का व्यभिचार कदापि नहीं कहूँगा, बल्कि 'आनेस्ट लेबर'—ईमानदारी से की गई मज़दूरी—कहूँगा। कला ख़रीद-फ़रोख्त के ऊपर की चीज़ है, यह ग़लतफ़हमी पूँजीवादी ने समाज में फैलाई है।"

वह यह सोचकर भीतर-ही-भीतर हँस रहा था कि अपने निपट स्वार्थ की सिद्धि के लिये उसने मार्क्सियन तर्क का खूब दुरुपयोग किया है! "शठता शठता! यह मेरी घोर शठता है! पर यह शठता मेरी

रग-रग में इस हद तक समा गई है कि मेरी रक्त की धारा के साथ घुल-मिलकर एकाकार हो गई है। अब मैं उससे उबरने की व्यर्थ चेष्टा हरगिज़ नहीं करूँगा, बल्कि समाज से अपने वैर का बदला लेने के लिये और अधिक धूर्तता सीखता जाऊँगा।"—उसने अपने-आपसे मन-ही-मन यह बात कही। यदि उसकी अंतरात्मा उससे उस समय यह प्रश्न करती—"तुम ख़ूब सोच समझकर ईमानदारी से कहो कि समाज ने क्या वास्तव में तुम्हारे साथ किसी प्रकार का वैर साधा है?" तो वह निश्चय ही कोई ठीक उत्तर नहीं दे पाता। अपनी अंतरात्मा की इस आवाज़ को वह वर्षों से प्रतिदिन प्रतिपल भरसक दबाने की चेष्टा करता रहता था कि समाज ने उसके साथ कोई ख़ास शत्रुता नहीं की है, बल्कि उलटे उसी ने पग-पग पर समाज की पीठ पर छुरे से आघात किया है।

हीरा ने कहा—"तो क्या सचमुच आपकी यही राय है कि नाचने और गाने का पेशा करके रुपया कमाऊँ?"

"हाँ हीरा, नहीं तो तुम इस तरह बेकार रहकर कब तक अपना निर्वाह कर पाओगी?" मन-ही-मन उसने ये शब्द भी जोड़ दिए—"और मेरा निर्वाह भी!"

हीरा कुछ अनमने भाव से उसकी ओर देख रही थी। उसे चिंता-मग्न देखकर पारसनाथ ने फिर कहा—"तुम्हें मालूम होना चाहिये कि आजकल भले घरों की सुशिक्षित लड़कियाँ भी सामूहिक रूप से सार्वजनिक घरों में नाचकर और गाकर पैसा कमाती हैं। हमारे देश में नृत्यकला के जो दो-चार प्रसिद्ध पीठस्थान हैं वहाँ लड़कियाँ जब किसी शहर में अपनी कला का प्रदर्शन करती हैं तो लोग टिकट ख़रीदकर उनका नाच देखते हैं। तुम्हारे व्यवसाय में केवल यह अंतर रहेगा कि तुम नृत्य-शालाओं में नहीं, बल्कि अपने कोठे पर नाचोगी या

गाओगी, और तुम्हारे श्रोता या दर्शक सर्वसाधारण नहीं, कुछ गिने-चुने व्यक्ति रहेंगे। जब तक तुम अपना शरीर नहीं बेचतीं तब तक इस पेशे में कोई बुराई मैं नहीं देखता।"

चूँकि हीरा के भीतर वेश्या-जीवन के संस्कार किसी हद तक अब तक भी बद्धमूल थे, इसलिये पारसनाथ के कुतर्कों के जाल में वह फँस गई। उसने बाक़ायदा नाचने और गाने का पेशा शुरू कर दिया। पारसनाथ एक वेश्या का 'नायक' बनने की समस्त लज्जा और ग्लानि की भावनाओं को शराब की बोतलों में डुबाते जाने की चेष्टा करता रहता था। पर इस चेष्टा में उसे कुछ भी सफलता मिलती हुई नहीं दिखाई देती थी। कभी-कभी उसके मन में अचानक यह प्रश्न भूत की तरह उसके मन के पाताल-लोक से उठ खड़ा होता कि वह किस आकांक्षा की पूर्ति की प्रतीक्षा में, किस उद्देश्य से जी रहा है? वह आत्महत्या क्यों नहीं कर लेता? ऐसे क्षण में वह सोचता कि जब एक जारज सन्तान की हैसियत से उसे अपने जीवन की क्षति का पूरण विकृत ही उपायों से करना है, तो आत्महत्या उन विकृत उपायों में सबसे उत्तम है। पर इतने वर्षों तक विकृतियों के विकास के साथ-ही-साथ उसके भीतर अपनेपन के प्रति एक सर्वशोषी ममता का भाव विकसित होते-होते चरम अवस्था को पहुँच गया था। उसने उसे जीवन के गंदे से गंदे कीचड़ में शूकर और श्वान के समान लोटने में ही एक अत्यन्त वीभत्स 'सुख' का स्वाद चखा दिया था। उस 'सुख' की चिपचिपी गंदगी को किसी भी हालत में छोड़ने की इच्छा उसके मन में उत्पन्न नहीं होती थी।

पर दिन पर दिन वह चिपचिपापन इस क़दर बढ़ता चला जाता था कि उसमें पड़े रहना शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से उसके लिये प्रायः असम्भव हो उठा।

इकतालीसवाँ परिच्छेद

एक दिन पारसनाथ ने हीरा से कहा—"एक ही जगह इस तरह पड़े रहना अच्छा नहीं लगता। मेरी राय है कि हम दोनों यहाँ से किसी दूसरी जगह चले जावें। मैंने यह भी सोच लिया है कि हम दोनों का विवाह अब जल्दी हो जाना चाहिये। इस तरह का अस्वाभाविक सम्बन्ध अधिक समय तक नहीं चलाया जा सकता। पर लखनऊ में विवाह करना मैं किसी कारण से अच्छा नहीं समझता। विवाह करके जब हम लोग लौटकर आवें तब लोग जानें कि हम लोगों का असली सम्बन्ध क्या है!" हीरा को इस प्रस्ताव से हार्दिक प्रसन्नता हुई। उसने पुलकित भाव से कहा—"इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है! कहाँ जाना चाहते हो? कब?"

"यहाँ से कलकत्ता जावेंगे। यहाँ विवाह हो जाने के बाद फिर देखी जावेगी। अब जल्दी ही चलना चाहिये।"

"तो कल ही क्यों नहीं चलते? हमें यहाँ करना ही क्या है!"

पर तैयारी में तीन-चार दिन लग गए। उसके बाद दोनों कलकत्ते के लिये रवाना हो गए। वहाँ पहुँचकर एक होटल में जाकर ठहरे। यह सोचकर पारसनाथ को बहुत प्रसन्नता हो रही थी कि नंदिनी को उन दोनों के भगने का समाचार जब मालूम होगा तो उसे बहुत दुःख होगा। वह उसे किसी-न-किसी उद्योग से पीड़ा पहुँचाना चाहता था। हीरा के साथ हेलमेल बढ़ाने का एक उद्देश्य प्रारंभ से ही उसके मन में यह भी था। और इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर वह हीरा को नाच और गाना सिखाने और अँगरेजी पढ़ाने के लिये तैयार हुआ था। नंदिनी की बहन को उसकी प्रतियोगिता में खड़ा करने में पारसनाथ को बड़ा सुख मिल रहा था। अंत में जब उसे कलकत्ते भगा ले

गया तो वह निश्चित रूप से जानता था कि नंदिनी इस बात से कभी प्रसन्न नहीं हो सकती।

कुछ भी हो, होटल में प्रायः एक सप्ताह साधारण भाव में, बिना किसी विशेष घटना के गुज़र गया। इतने दिनों के परिचय से पारसनाथ के प्रति हीरा का विश्वास घटने के बजाय बढ़ता चला गया था। इसलिए वह निश्चित थी। पर पारसनाथ किसी कारण से बहुत चिंतित और बहुत परेशान दिखाई देता था, इसलिये हीरा ने एक दिन सरल भाव से कहा—"मालूम होता है यहाँ के शोर और भीड़ में तुम्हारा जी लग नहीं रहा है, इसलिये किसी दूसरी जगह चले चलें, जहाँ एकांत हो और जहाँ तुम सुख और शांति से रह सको।"

पारसनाथ ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—"नहीं, यह बात नहीं है। मेरा जी यहाँ खूब लग रहा है। पर मैं एक बात सोच रहा हूँ। वर्षों से मैं बेकार पड़ा हुआ हूँ। पर चुँकि अब मैं जल्दी ही तुम्हारे साथ विवाह करके पारिवारिक जीवन बिताने की बात तय कर चुका हूँ, इसलिये आजकल मुझे कोई ऐसा काम करने की चिंता सवार है जिससे मैं काफी रुपया कमाकर गृहस्थ-जीवन की आर्थिक समस्या हल करने में समर्थ हो सकूँ। इधर दो-तीन दिन इधर-उधर घूम-फिरकर एक काम का ठिकाना मैंने लगा भी लिया है। कलकत्ते के आसपास की कुछ जगहों में हवाई अड्डे बन रहे हैं। इनमें से एक का ठीका मेरे पहचान के एक आदमी के ज़रिये से मुझे भी मिल सकता है। इस काम में मुझे कई लाख रुपये का लाभ हो सकता है। पर पहले ज़मानत के रूप में काफ़ी रुपये जमा करने होंगे।"

हीरा ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—"कितने?"

"कम से कम पन्द्रह हज़ार, जो मेरे बूते के बहार की बात है।"

हीरा ने सहज सरल विश्वास के साथ कहा—"इतनी-सी बात के

लिये तुम इस क़दर चिंतित हो उठे हो ! यह कौन-सी बड़ी बात है ! मेरे पास क़रीब सात-आठ हज़ार रुपया नकद होगा, और बाक़ी के लिये मेरे गहने काफ़ी हैं।"

पारसनाथ ने झूठमूठ का आश्चर्य जताते हुए कहा—"सच ? तब तो बड़ा भारी काम हो जायगा। तुम विश्वास रखो हीरा, कि हम लोग इतने रुपयों से डेढ़-दो साल के भीतर इतना रुपया कमा लेंगे कि फिर ज़िंदगी भर के लिये निश्चिंत हो जावेंगे।"

हीरा ने कहा—"मैं यह सब कुछ नहीं जानती, मैं केवल यह जानती हूँ कि तुम्हें इस समय पन्द्रह हज़ार रुपये की आवश्यकता है। इतना जानना मेरे लिये काफ़ी है। यह लो, मैं अभी दिये देती हूँ।" यह कहकर उसने एक विशेष बक्स से सौ-सौ रुपये के नोटों के रूप में सात हज़ार रुपये निकालकर पारसनाथ को दे दिए। उसके बाद अपने कुल क़ीमती गहने उतारकर उसके हाथों में रख दिए !

उन गहनों के छूते ही पारसनाथ के शरीर में एक अनोखी बेचैनी की बिजली-सी दौड़ गई और उसके हृदय में धड़कन पैदा हो गई। क्षण-भर के लिये वह उन्हें लेने से हिचका, और जी में आया कि अपने शठता-पूर्ण विचार की सारी पोल स्पष्ट शब्दों में हीरा के आगे खोलकर उससे क्षमा माँग ले। पर दूसरे ही क्षण उसकी नारकीय मनोवृत्ति ने फिर से विजय प्राप्त कर ली, और जी कड़ा करके उसने सब गहने ले लिये। एक बड़े से रूमाल में रुपयों और गहनों को एक-साथ बाँधकर एक हैंडबेग के भीतर बंद करके वह चलने के लिये तैयार हुआ। उसने कहा—"तुमने आज बड़े भारी आत्मत्याग का परिचय दिया है, हीरा, इसे मैं जीवन में कभी नहीं भूलूँगा। अच्छा, तो मैं जाता हूँ, क्योंकि यह काम जितनी जल्दी मिल जाय उतना ही अच्छा है। मैं शाम तक लौटूँगा। कुछ देर भी हो जाय तो चिंता न करना।"

यह कहकर वह चला गया। उसके जाते ही हीरा के भीतर क्षण-भर के लिये एक ठंडी सिहरन-सी दौड़ गई, और उसका हृदय अकारण ही फड़फड़ा उठा। पर दूसरे ही क्षण उसमें स्थिरता आ गई, और वह अपने कमरे के उत्तर की तरफ की खिड़की के पास बैठकर अनमने भाव से बाहर सड़क का दृश्य देखने लगी।

पारसनाथ जब हैंडबेग को लेकर बाहर सड़क पर आया तो सोचने लगा कि अब कहाँ चलना चाहिये। उसका इरादा कलकत्ते आने के पहले से ही हीरा को बुत्ता देकर भाग निकलने का था। जिस उद्देश्य से वह कलकत्ते आया था उसकी पूर्ण पूर्ति आज हो गई थी। वह सोच रहा था—"जिस वेश्या ने मुझे धोखे में रखकर अपने साथ भाग निकलने के लिये फुसलाया, और उसके बाद मेरा घोर अपमान और तिरस्कार किया, उसकी बहन के साथ अगर पलटे में मैं भी वैसा ही व्यवहार करूँ तो यह किसी तरह भी अनुचित नहीं है। उस घमण्डी वेश्या की बहन को मैंने एक निश्चित पथ तक आगे बढ़ाकर अंत में एकदम से डोर खींच ली है, और उसे नङ्गा-बूचा करके एक ऐसी जगह में लाकर छोड़ दिया है जहाँ निश्चय ही मालिक, मैनेजर, नौकर-चाकर सभी होटल का 'बिल' वसूल करने के उद्देश्य से उस पर ज़्यादती करके उसे ज़लील से ज़लील बनाये बिना न छोड़ेंगे—क्योंकि मुझ पर पूर्ण विश्वास करके मुझे सब कुछ दे देने के बाद अब उसके पास बिल चुकाने के लिये भी रुपया शेष नहीं रहा है। प्रतिहिंसा इससे अधिक और क्या हो सकती है! और उसके पूरा होने में जो सुख है उसका अनुभव मुझसे अधिक और कौन कर सकता है! पर इतने रुपयों से मैं करूँ क्या! और इन्हें लेकर जाऊँ कहाँ?"

उसकी मानसिक अवस्था उस समय निद्रा-विचरण के रोगी की सी हो रही थी। उसी अवस्था में अनमने भाव से उसने सियालदह

स्टेशन को जानेवाली ट्राम पकड़ ली। ट्राम में बैठने पर भी वह नहीं जान पाया कि क्यों उसने खास तौर से सियालदह की ट्राम पकड़ी है।

स्टेशन के पास उतरकर जब वह आने-जाने वाले यात्रियों की भीड़ के बीच में आगे बढ़ा तो उसे याद आया कि दार्जिलिङ्ग और कालिंपांग की ओर जानेवाली गाड़ियाँ उसी स्टेशन से छूटती हैं। कुछ क्षणों के लिये उसकी मानसिक आँखों के आगे अपने जीवन के प्रारंभिक युग के चलचित्र बिजली की गति से एक-एक करके उद्घाटित होने लगे, और प्रायः तेरह-चौदह वर्ष पहले की विचित्र सुख-दुःखमयी वेदना की अनुभूतियाँ उसके भीतर विकल पुलक की सिहरन उत्पन्न करने लगीं। वह सोचने लगा कि सत्य, शिव, और सुन्दर की किन मनोमोहक आशाओं और आकांक्षाओं को लेकर उसका प्रारंभिक जीवन बीता था, और आज कितनी विराट् वीभत्सता और अतलव्यापी नारकीयता में उसकी परिणति हो गई है! एक ही व्यक्ति के जीवन के दो कालों के बीच में भीषण और दुर्लंघ्य व्यवधान कैसे खड़ा हो गया! इसमें क्या प्रकृति का हाथ है, या उसके भाग्य का, या स्वयं उसकी हीन प्रवृत्तियों का! सोच-सोचकर उसके अवचेतन मन से लेकर उसके सचेत मन तक एक लोमहर्षक आतंक की लहर दौड़ गई, और क्षण भर के लिये उसे ऐसा जान पड़ा जैसे प्रलयकारी भूकंप उसके सचेत मन की सारी ज़मीन को हिलाकर उसे उलटा देने की तैयारी पर है। पर किसी अज्ञात शक्ति के प्रतिरोध से यह आंदोलन तत्काल दब गया। उसके दब जाने के बाद जब पारसनाथ के चित्त में फिर से जड़तामयी स्थिरता छा गई, तो उसने सोचा—"एक दिन मैंने कलाकार के मांगलिक जीवन का स्वर्गीय स्वप्न देखा था, और आज मैं अगर एक वेश्या का नायक बनने के बाद दगाबाज लुटेरा बन गया हूँ, और पंद्रह हजार रुपयों की पाप की गठरी अपने साथ लिए

चला जा रहा हूँ, तो इसमें आतंकित होने की कौन-सी बात है ? जीवन का चक्र आदि काल से लेकर आज तक बराबर भीषण संघर्ष-विघर्षों से पूर्ण रहा है; जो कल राक्षस था वह आज देवता है, जो कल देवता था वही आज राक्षस बना हुआ है। यह क्रम तो चलता ही रहता है। मैं आज जानबूझकर राक्षस बना हुआ हूँ—इसी में मुझे एक निराले सुख का अनुभव हो रहा है। प्रकृति को यही मंजूर है, इसलिये इसमें बुराई क्या है !" पर उसके सचेत मन के चट्टान के नीचे से विकट अट्टहास का दबा हुआ स्वर निरंतर उसके कानों में प्रेतों और छायाओं के नृत्यताल में गूँजता हुआ एक अनोखी बेचैनी की कुलबुलाहट उसके भीतर पैदा कर रहा था।

बयालीसवाँ परिच्छेद

जब पारसनाथ ने अन्यमनस्क अवस्था में स्टेशन के भीतर पाँव रखा तो कुछ देर तक भ्रांत भाव से इधर-उधर देखता रहा। उस दिन शनिवार था, और आस-पास के गाँवों में रहनेवाले आफ़िसों के 'बाबू' लोग 'वीक-एंड' में घर जाने की हड़बड़ी में स्टेशन पर भीड़ लगाये हुए थे। पारसनाथ के पूर्णतः अनिश्चित मन में अचानक एक अपूर्व-कल्पित विचार उत्पन्न हुआ। उसने सोचा कि पाप के उस बोझ को लेकर पूर्व बंगाल के किसी एक छोटे से क़स्बे में अज्ञातवास किया जाय, और वहीं किसी हीनवंशीय बंगालिन के साथ विवाह करके सारा जीवन उसी अज्ञात निर्वासन में बिता दिया जाय। आश्चर्य की बात है कि उसका सचेत मन हीरा की निपट असहाय अवस्था की बात एकदम भूल-सा गया था, जैसे वह किसी पूर्व जन्म की घटना हो और इस जन्म की बातों से उसका कोई सम्बन्ध ही न हो। अपने भूत,

वर्तमान और भविष्य की बिलकुल दूसरी ही बातों की चिंता उसे घेरे हुई थी।

एक विशेष स्टेशन को ध्यान में रखकर वह टिकट खरीदने के उद्देश्य से टिकट-घर की ओर बढ़ा। पाँच क़दम आगे बढ़ा होगा कि अकस्मात् एक आदमी को बाहर की सीढ़ियों से ऊपर—स्टेशन की इमारत के भीतर—आते देखकर वह ठिठक कर खड़ा रह गया। वह आदमी उसके 'पिता' का नैपाली नौकर चंद्रबहादुर था, जो कालिपांग में रहता था और जिससे वह भली भाँति परिचित था। इतने वर्षों बाद भी उसकी सूरत-शकल में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया था। उसके साथ एक आदमी और था। पारसनाथ उससे नज़र बचाकर भाग निकलना चाहता था, पर चन्द्रबहादुर ने उसे देख लिया था। केवल देख ही नहीं लिया था, बल्कि पहचान भी लिया था, और वह ऊँची आवाज़ में पुकार रहा था—"छोटे बाबू! छोटे बाबू!" एक बार पारसनाथ ने सोचा कि सुनी-अनसुनी करके भाग निकले, पर फिर एक अप्रिय किन्तु अदम्य कौतूहल दुर्निवार वेग से उसके भीतर जाग उठा। अत्यंत गंभीर मुद्रा बनाकर वह अपने स्थान पर खड़ा रहा।

चंद्रबहादुर तेज़ क़दम बढ़ाता हुआ उसके पास आ पहुँचा। "राम राम!" कह कर उसने परम स्नेह भाव से पूछा—"छोटे बाबू, आप आज यहाँ कहाँ से आ गए और कहाँ जा रहे हैं?"

पारसनाथ ने उसी गंभीर मुद्रा से अत्यन्त कर्कश स्वर में कहा—"मेरी बात रहने दो, पहले तुम बताओ, तुम कहाँ से आ रहे हो?"

"मैं बड़े बाबू के साथ यहीं—कलकत्ते आया हुआ हूँ। आज अपनी पहचान के एक आदमी को गाड़ी में बिठाने आया हूँ। आप इतने वर्षों तक कहाँ रहे, बाबूजी? बड़े बाबू आपकी वजह से बहुत

बेचैन रहते हैं। हर घड़ी आपको याद करते रहते हैं। ख़ासकर जब से आपकी माताजी का स्वर्गवास हुआ है तब से आपके लिये उनकी बेचैनी और ज्यादा बढ़ गई है.......''

पारसनाथ के ऊपर का जो चमड़ा इतने दिनों की धूप और पानी के सम्मिलित प्रभाव से बहुत चीमड़ और सख्त हो गया था, उसे किसी ने एक तेज़ और तीखे तीर से छेद डाला। उसने विचलित भाव से कहा—''क्या माँ का स्वर्गवास हो गया! कब?'' 'स्वर्गवास' कहते हुए उसे एक विचित्र प्रकार की सांत्वना मिल रही थी—जिसका कारण वह स्वयं नहीं जानता था।

''आज तीन वर्ष हुए होंगे। बड़े बाबू को जब उनकी बीमारी की ख़बर मिली तो वह तुरंत घर गए। वहाँ से उन्हें कलकत्ते ले आए। बड़े-बड़े डाक्टरों का इलाज कराने और दिन-रात सेवा-टहल करते रहने पर भी जब माँजी को न बचा पाए तो दोनों हाथों से अपना सिर पीट कर औरतों की तरह रोने लगे। तब से बड़े बाबू की तनदुरुस्ती बहुत गिर गई है, और गिरती चली जा रही है। वह हर घड़ी आपको याद करते हुए कहते हैं—'बबुआ का मुँह अगर मरने के पहले एक बार देख पाता तो चैन से मरता, चंद्रबहादुर! पर इस जन्म में अब उससे मिलने की कोई उम्मीद नहीं रह गई है। वह कमज़ोर दिल का आदमी है। मुझे यह भी शक है कि मेरी कड़ी बातें सुनकर कहीं उसने आत्महत्या न कर ली हो। मैं बहुत अधम पापी हूँ, चंद्रबहादुर! मैंने ज़िन्दगी-भर उसकी माँ को सताया, और उसके बाद अपने इकलौते बेटे को भी गँवा बैठा। मरने के बाद भी मुझे चैन नहीं मिलेगा!' वक्त-बेवक्त इसी तरह की बातें कहकर औरतों की तरह विलाप करते रहते हैं। मुझे उनकी हालत देखकर रोना आता है, छोटे बाबू! आज भगवान की कृपा से आपसे अचानक मुलाक़ात हो गई है। अब आप मेरे साथ सीधे बड़े बाबू के पास चलिए।''

पारसनाथ ने देखा, चंद्रबहादुर की आँखें सचमुच डबडबा आई हैं। पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह बहुत दिनों के रटा-रटाया नाटकीय 'पार्ट' दुहरा गया है, या एक सच्ची और सीधी बात कह गया है। उसकी एक भी बात पर उसे स्वभावतः विश्वास नहीं होता था, पर साथ ही उसके मुख के भाव में वह एक ऐसी सचाई का आभास पा रहा था जिस पर अविश्वास करना कठिन था।

कुछ सोचकर उसने कहा—"मैं किसी के पास नहीं जाऊँगा। मुझे बहुत ज़रूरी काम से अभी एक जगह गाड़ी से जाना है। गाड़ी छूट जायगी, तो मेरा बड़ा नुक़सान होगा।"

चंद्रबहादुर ने दोनों हाथों से उसके पाँव पकड़ लिए, और गिड़-गिड़ाते हुए कहा—"ऐसा नहीं हो सकता, छोटे बाबू! आज आप भाग्य से मिले हैं, अब मैं आपको किसी हालत में नहीं छोड़ सकता। आपको ज़रूरी से ज़रूरी काम छोड़कर बड़े बाबू के पास चलना ही होगा।"

पारसनाथ का मन डगमगाने लगा। उसे चंद्रबहादुर की बातों में एक अज्ञात रहस्य छिपा हुआ मालूम हो रहा था। उसे पूरी तरह जानने की अदम्य इच्छा उसके मन में उत्पन्न हो रही थी। पर साथ ही कोई शक्ति उसके भीतर से बरबस उस इच्छा का प्रतिरोध कर रही थी। अन्त में कौतूहल की ही जीत हुई। वह चंद्रबहादुर के साथ चलने को तैयार हो गया। हर्ष के कारण चंद्रबहादुर की आँखें छल-छला उठीं। उसने हड़बड़ी के साथ अपने साथी के हाथ में कुछ रुपये रखकर उससे क्षमा-याचना करते हुए विदा माँगी, और पारसनाथ को साथ लेकर बाहर चला आया।

बाहर आकर दोनों ने पार्क-सर्कस की ट्राम पकड़ ली। पारसनाथ रास्ते-भर मौन रहा। वह बहुत-से प्रश्न करना चाहता था, पर कुछ भी

पूछने का साहस उसे नहीं होता था। चंद्रबहादुर अपने-आप बड़े बाबू के संबंध में जो-कुछ कहता उसे वह बड़े ग़ौर से सुन रहा था। उसकी बातों से पारसनाथ को मालूम हुआ कि उसकी माँ की मृत्यु के बाद से 'बड़े बाबू' ने कालिपांग के ऊन के व्यवसाय में दिलचस्पी लेना बिलकुल छोड़ दिया है, और कलकत्ते की आबोहवा उन्हें यद्यपि तनिक भी माफ़िक नहीं आती, तथापि वह हठपूर्वक वहीं रहना पसंद करते हैं।

जब ट्राम अंतिम स्टेशन—डिपो—पर जाकर ठहरी, तो दोनों उतर गए। वहाँ से कुछ ही दूर उत्तर की ओर चलने के बाद एक न बहुत बड़ा न बहुत छोटा नया-सा मकान था। उसी में 'तिब्बती दानव' महाशय—बैजनाथ बाबू—रहते थे। भीतर पहुँचकर चंद्रबहादुर ने कहा—"आप एक मिनट ठहरिए, मैं बड़े बाबू को ख़बर दे आता हूँ, क्योंकि अचानक आपको देखकर उनको इतनी बड़ी खुशी होगी कि उसका असर उनके दिल पर हो सकता है। डाक्टरों का कहना है कि उनका दिल बहुत कमज़ोर हो गया है, और अचानक किसी भी बड़ी खुशी या बड़े सदमे से उस पर बुरा असर हो सकता है।"

पारसनाथ नीचे ही खड़ा रहा और चन्द्रबहादुर ऊपर ख़बर देने चला गया। पारसनाथ को मन-ही मन संदेह होने लगा कि वास्तव में 'तिब्बती दानव' के मन का भाव उसके प्रति क़तई नहीं बदला है, और चंद्रबहादुर मनगढ़न्त बातों से उसे फुसलाकर यहाँ इस झूठी आशा से ले आया है कि फिर से उसके और 'तिब्बती दानव' के बीच मेल हो जाय! सोच-सोचकर उसे इस बात के लिये बड़ी ग्लानि होने लगी कि वह चंद्रबहादुर के बहकाने में आ गया। वह फिर से चुपचाप भाग निकलने की बात सोच ही रहा था कि चंद्रबहादुर ने सीढ़ियों के ऊपर से बड़े उल्लास के साथ पुकारा—"छोटे बाबू, चले आइए।"

क्षणिक हिचक के बाद पारसनाथ अंत में ऊपर चढ़ ही गया।

'पाप की गठरी' अभी तक उसके हाथ ही में थी। ऊपर दक्खिन की तरफ़ के एक कमरे से किसी के खाँसने की आवाज़ आ रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि वह व्यक्ति खाँसते-खाँसते दम लेने की फ़ुर्सत तक नहीं पा रहा है। खाँसी कुछ क्षणों के लिये समाप्त होते ही कराहने की आवाज़ आती थी। पारसनाथ का मन एक अप्रिय भावना से जैसे सिकुड़ा जा रहा था।

जब वह ऊपर पहुँचा, तो चंद्रबहादुर ने दक्खिन की तरफ़ के उसी कमरे का पर्दा हटाकर कहा—"चले आइए!"

एक अनोखी ग्लानि और संकोच के साथ पारसनाथ ने भीतर प्रवेश किया। वहाँ उसने देखा कि 'तिब्बती दानव' महाशय पलँग पर लेटे हुए कराह रहे हैं। उनके चेहरे पर एक आश्चर्यजनक परिवर्तन उसने देखा। ऐसा मालूम होता था कि किसी कारण से उसपर थोड़ा-सा सूजन आ गया है। पर उस सूजन से उसकी आकृति विकृत होने के बजाय उसमें एक प्रकार की सौम्यता-सी आ गई थी—हालाँकि वह सौम्य भाव एक मार्मिक पीड़न की करुण छाया से घिरा हुआ था।

पारसनाथ के भीतर प्रवेश करते ही बैजनाथ बाबू पलँग पर उठ बैठे और अत्यंत कोमल और करुण स्वर में, प्रायः कराहते हुए बोले—"आओ बेटा, आओ! भगवान के न्यायालय में देर हो सकती है, पर अन्धेर नहीं। आख़िर मरने के पहले तुमसे भेंट हो ही गई। आओ, आओ, मेरे एकदम नज़दीक आ जाओ बेटा, कतराओ नहीं। ज़रा तुम्हारे गालों पर एक बार हाथ तो फेर लूँ। तुम चाहे कितने ही बड़े हो जाओ, पर मेरे लिये तुम अभी वही बबुआ हो जिसे मैं छः महीने की अवस्था से लेकर तीन वर्ष की अवस्था तक दिन-भर गोद में लेकर खेलाते रहना पसंद करता था। तुम्हारे इन्हीं गालों को बार-बार चूमते

रहने पर भी मुझे तसल्ली नहीं होती थी। जब तुम माँ की गोद में दूध पीते हुए बीच-बीच में मेरी ओर देखकर उल्लास से उछलते और किलकते हुए कहते—'बब्बू !' तो मुझसे रहा न जाता और तुम्हारी माँ की गोद से तुम्हें ज़बर्दस्ती छुड़ाकर तुम्हें रुलाकर भी मैं दोनों हाथों से तुम्हें उठा लेता, और स्नेह के आवेग से दाँत किटकिटाता हुआ तुम्हें ऊपर उछालकर बार-बार तुम्हारा मुँह चूमता रहता। तुम्हें देख-देखकर मैं किस क़दर पुलकित होता था, उसका वर्णन नहीं हो सकता। कहाँ गए बेटा, वे दिन ? कैसे चैन के, कैसे सुख के, कैसे संतोष के उजले सपने थे वे ! हाँ, सपने ही तो थे। उसके बाद अचानक एक भीषण दैत्य ने काले धुँए के रूप में न जाने कहाँ से आकर धीरे-धीरे मेरे भीतर घर करना शुरू—"

यहाँ पर बैजनाथ बाबू को खाँसी का एक ज़बर्दस्त 'फ़िट' आ गया, और खाँसते-खाँसते उनका दम फूलने लगा। अंत में उन्होंने बलग़म थूकने के लिए पीकदान की ओर हाथ बढ़ाया। पारसनाथ के मन में एक बार आया कि वह स्वयं पीकदान उठाकर उनकी ओर बढ़ा दे। पर दूसरे ही क्षण कुछ सोचकर वह रह गया। वह सोच भी नहीं पाया था कि चंद्रबहादुर ने पीकदान उठा लिया और बैजनाथ बाबू के मुँह के पास बढ़ा दिया। उसमें थूककर, कराहकर और कुछ सुस्ताकर बैजनाथ बाबू ने फिर कहना शुरू किया—"मुझे एक अनोखे संदेह का पागलपन अकारण भूत की तरह घर दबाने लगा। मैं भली भाँति जानता था कि तुम्हारी माँ के रक्त की एक-एक बूँद में सतीत्व की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। शायद इसी की प्रतिक्रिया के फल से मेरे विकृत मन को यह विश्वास करने की इच्छा हुई कि वह घोर असती है। पहले इस विकृत इच्छा ने कौतुक के रूप में मेरे ऊपरी मन के छोटे से कोने में अपने लिए स्थान बनाया। उसके बाद कौतुक की आग के उस छोटे-से कण ने मेरे अनजान में

मेरे मन की सारी सतह को छा दिया। फल यह हुआ कि तुम्हारी माँ के भीतरी और बाहरी स्वभाव में केवल सतीत्व, केवल शुद्धाचार पाकर मेरा हृदय जिस एकरसता का अनुभव करने लगा था वह अपने मन को अपने-आप धोखा देने के इस विकृत उपाय से दूर हो गया और मैं ईर्ष्या, घृणा और विद्वेष को जगन की प्रेरणा से एक नारकीय विद्रोह का अनुभव करने लगा। मेरा कालिम्पांग का जीवन मेरी उसी 'विद्रोही' मनोवृत्ति का परिणाम था। अधिकांश मनुष्य ऐसी औंधी खोपड़ीवाले होते हैं, बेटा, कि देखकर और सोचकर दंग रह जाना पड़ता है। विशुद्ध सुख, शांति और परिपूर्ण संतोष से अगर किसी आदमी के जीवन को छा दिया जाय, तो वह उसकी एक-रसता से उकता उठेगा, और स्वयं अपने ही भीतर से विद्रोह की आग के कणों को बटोरकर अपने उस सारे सुख-संतोष और वैभव को जलाकर राख में परिणत करने के लिये उतावला हो उठेगा। किसी एक प्रसिद्ध कवि ने कहा है कि देवताओं ने सुख—केवल सुख—को इतना अधिक बटोर लिया था कि अंत में वे स्वयं अपनी उस सुखराशि के प्रति विद्रोही हो उठे थे, और दुःख-दैन्य, संघर्ष और पीड़न की बहुरसता का अनुभव करने की लालसा उनके भीतर भयंकर-भूत की तरह जग उठी। उसी भावना का यह फल था कि उन्होंने देवत्व की काया बदल कर मानवत्व का रूप धारण किया। मैं भी तुम्हारी परम सती-साध्वी, मंगलमयी माता के साथ देवत्व का जीवन बिता रहा था। उस जीवन से विद्रोह करके मैंने देवता से मनुष्य बनना चाहा, पर राक्षस बनकर रह गया। मैं जानता हूँ, तुम्हें मेरी इन सब लंबी-चौड़ी बातों पर विश्वास नहीं—ीं—ीं—ीं—"

इसके बाद फिर एक बार खाँसी के 'फिट' ने उन्हें धर दबाया। जब वह कुछ स्थिर हुए तो उन्होंने फिर बोलना शुरू किया—"असल बात यह है कि विश्लेषण से प्रकट में सरल और साधारण

लगने वाली बात भी जटिल और असाधारण लगने लगती है, और सहज-संभव बात अस्वाभाविक और असंभव मालूम होने लगती है। जो भी हो, इतना तुम मान लो कि तुम्हारी माँ के प्रति संदेह करके मैंने जो स्वयं अपने-आप को पीड़ित और दंडित करना चाहा उसका कारण हम दोनों के स्वर्गीय सुख और शांतिमय जीवन की एकरसता की प्रतिक्रिया के सिवा और कुछ नहीं था। मेरी अंतरात्मा जानती थी कि तुम्हारी माँ पूर्ण रूप से सती है, पर मेरा ऊपरी मन अपने-आप को धोखा देने के लिये व्याकुल हो उठा। कालिम्पांग जाकर मैंने संदेह की उस दानवी माया को बढ़ाते-बढ़ाते इस हद तक बढ़ा दिया कि घृणा और विद्वेष की ज्वाला से पीड़ित रहने लगा। मैं एक और ऐसी बात तुमसे कहना चाहता हूँ जिस पर तुम निश्चय ही मन-ही-मन अविश्वास की हँसी हँसोगे! पर अगर मुझमें अब भी कुछ मनुष्यत्व शेष है, तो मैं उसकी शपथ खाकर कहता हूँ, बेटा, कि तुम्हारे जन्म के बाद से लेकर आज तक तुम्हारे प्रति मेरे मन में बराबर गाढ़े स्नेह का भाव वर्तमान रहा है। वह बराबर बढ़ता ही गया है, कभी घटा नहीं। विश्वास मानो, जिस दिन कालिम्पांग में मैंने तुम्हारा तिरस्कार करते हुए तुमसे कहा था कि तुम मेरे बेटे नहीं हो, उस दिन तुम्हारे प्रति मेरे मन में सबसे अधिक स्नेह-भावना उमड़ी थी! मैं तुमसे बहुत कम बातें किया करता था और जब बोलता भी तो कभी सीधी तरह से कोई बात नहीं कहता था और सब समय तुम्हें 'छोकरा' कहकर पुकारा करता था। पर यह सब होते हुए भी तुम्हारी शिक्षा और संस्कृति देखकर, तुम्हारे बहुत-से गुणों का परिचय पाकर मैं मन-ही-मन गर्व से फूला नहीं समाता था। मैं मन-ही-मन कहा करता था—'यह मेरे मन की एकदम झूठी कल्पना है कि वह मेरा बेटा नहीं है। निश्चय ही वह मेरा बेटा है, मेरे प्रत्येक रक्तकण से उसकी आत्मा सिंची हुई है। बाहर से मैं अवश्य उसके साथ रूखे ढंग से

पेश आऊँगा और कठोर बर्ताव दिखाऊँगा, पर भीतर-ही-भीतर उसे जी-जान से प्यार किये बिना मैं रह नहीं सकता। मैं—उसका बाप—पतन की चरम सीमा को पहुँच चुका हूँ और अब उससे उबर नहीं सकता, पर वह मेरे कुल का मुख उज्ज्वल करेगा, उसका गौरव बढ़ावेगा—इस आशा से मैं क्यों न अपने घोर नरक-वास के दिन भी सुख में बिता दूँ!' चूँकि मैं भीतर-ही-भीतर तुम्हें इतना अधिक चाहता था, इसलिये तुमसे बेहद डरता......" फिर कुछ समय तक वह खाँसी के झटके से परेशान रहे। इस बार जब वह बलग़म थूकने लगे, तो पारसनाथ ने बरबस आगे बढ़कर पीकदान उठाकर उनके आगे कर दिया। बैजनाथ बाबू की बातों ने उसके भीतर युगों से बंद पड़ी हुई एक निराली ही दुनिया का दरवाज़ा खोल दिया था, जिसे देखकर वह भ्रांत चकित और पुलकित हो रहा था।

झटका समाप्त होने पर बैजनाथ बाबू कहने लगे—"हाँ, तुमसे मैं डरता था। ख़ासकर तुम्हारी सुन्दर आँखों की अंतर्भेदिनी दृष्टि से। तुम्हें याद होगा, जब कालिंपांग में अंतिम बार तुमसे मुलाक़ात हुई थी तो मैंने तुम्हें डाँट बताते हुए कहा था कि मेरी ओर नाक-भौं सिकोड़कर घृणा भरी दृष्टि से न देखा करो। तुम्हारी वह दृष्टि मुझे बहुत भयभीत कर देती थी, और असहनीय मालूम होती थी।"

सहसा पारसनाथ का मौन भंग हुआ। उसने अपने मुख के गंभीर भाव को कुछ हलका करते हुए कहा—"आपने यह भी कहा था कि अगर इस तरह मेरी ओर देखोगे तो सामने टँगी हुई दुनाली बंदूक से तुम्हारा काम तमाम कर दूँगा।" उस विशेष बात की याद दिलाने के लिये, पारसनाथ न जाने क्यों, बरबस उतावला हो उठा था।

बैजनाथ बाबू कुछ देर तक स्तब्ध भाव से पारसनाथ की ओर

देखते रह गए। उसके बाद उनका मुख एक अत्यंत करुण छाया से म्लान हो आया। एक लंबी साँस लेकर कराहने के-से स्वर में वह बोले—"हालाँकि मुझे याद नहीं है, फिर भी मैं जानता हूँ कि मैंने इस तरह की बात कही होगी। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं कितना बड़ा राक्षस हो गया था! आज भी मैं नरक ही का जीव हूँ, फिर भी मेरी भावनाओं में आज बड़ा अंतर आ गया है। तुम्हारी माँ ने अपनी बीमारी की हालत में चार चिट्ठियाँ मुझे लिखी थीं। उनमें कैसी मार्मिक करुणा-भरी हुई थी, मेरे प्रति कैसा प्राणस्पर्शी प्रेम छलक उठा था, कैसी मार्मिक वेदना टीस मारती थी, वह मैं तुम्हें किस प्रकार समझाऊँ बेटा! उन पत्रों को मैं कालिम्पांग में ही भूल आया हूँ, नहीं तो इस समय तुम्हें पढ़ाता, जिससे तुम्हारी माँ की महानता का एक नया रूप तुम्हारे सामने आता। उसमें तुम्हारे बारे में भी बहुत कुछ था—माँ की ममता का अत्यंत विकल तथापि संयत आवेदन। उन चारों पत्रों में यह कातर प्रार्थना की गई थी कि मैं एक बार उसकी मृत्यु के पहले उससे अवश्य मिल लूँ, और पिछली सब ग़लतफ़हमियों को भूलकर उसे आशीर्वाद दे जाऊँ। पहला पत्र जब मैंने पढ़ा, तो मेरे हृदय में भावुकता की एक लहर-सी अवश्य उथल उठी, पर फिर भी मेरे भीतर का राक्षस नहीं डिगा, पर बाद में जब एक-एक करके तीन पत्र मुझे और मिले, जिनमें करुणा का आवेग उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया था, तो मेरी युगों की जड़ता का चट्टान हिल गया, और मैं रह न सका। मैं उसी दिन घर के लिये रवाना हो गया।

"घर पहुँचने के बाद जब मैंने तुम्हारी माँ का रक्तमांस से एकदम रहित, कंकाल का-सा रूप देखा, तो मैं आतंक से सिहर उठा। उस प्रेत-मुख पर आँखों के रूप में प्रकाश के दो बिंदु बड़ी तेज़ी से चमक रहे थे। वे बड़े भयावने लगते—अगर उनमें करुणा सिमिट-सिमिटकर समा न गई होती। क्षयरोग ने उसके शरीर पर पूरी तरह से

कब्ज़ा कर लिया था, पर उसके होश-हवास बिलकुल दुरुस्त थे, और अभी तक उसमें उठने-बैठने की स्फूर्ति शेष थी। मुझे देखते ही उसका म्लान मुख आतिशबाज़ी के महताब की तरह कुछ-कुछ नीले रंग के-से उज्ज्वल प्रकाश से क्षण-भर के लिये जगमगा उठा। वह पलँग पर उठ बैठी, और अपने दोनों हाथों से मेरे पाँवों को जकड़कर उनपर माथा टेककर बूँद-बूँद करके आँसू गिराने लगी। मेरी समझ ही में न आया कि मैं उसे किन शब्दों में सान्त्वना दूँ। एक अनोखी बेचैनी ने आधी रात के स्वप्न में छाती पर चढ़ बैठनेवाले भूत की तरह मुझे धर दबाया। बहुत चेष्टा करने पर भी मैं केवल इतना ही कह पाया—'हो गया! हो गया! उठो, उठो!' उसने उसी तरह आँसू गिराते हुए रुँधे हुए गले से कहा—'मुझसे इस जन्म में अगर सचमुच कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा कर दीजिए! और यह आशीर्वाद दीजिए कि अगले जन्म में मैं आप ही को पति-रूप में पाऊँ; पर जो वियोग बिना किसी अपराध के इस जन्म में मुझे भोगना पड़ा है, वह फिर कभी न भोगना पड़े!' उसके ये शब्द मेरी बेचैनी को बहुत बढ़ाने लगे। वह बेचैनी एक वायुगोले की तरह मेरी छाती के भीतर उठकर मुझे मानसिक शूल की-सी पीड़ा पहुँचाने लगी। पर मुँह से मैंने केवल यही कहा—'अब बस करो! बस करो!'। यह कहकर मैंने उसके दोनों हाथ पकड़े और उसे धीरे से उठाकर पलँग पर लिटा दिया। मेरे भीतर विचारों का एक अनोखा तूफ़ान उठने लगा। मैं सोचने लगा—'इतनी अधिक पति-परायणता की क्या आवश्यकता थी! उसे चाहिये था कि जिस व्यक्ति ने अपने मन की कुछ विकृत, जघन्य और भयंकर पागलपन की नारकीय प्रवृत्तियों के लिये उसे त्याग दिया और उसे इतने वर्षों तक नारीत्व के सहज अधिकार से वंचित रखा, उसे वह घोर घृणा की दृष्टि से देखती और उसका तिरस्कार करती। पर उसकी दास-मनोवृत्ति ने उसकी आत्मा को इस क़दर क्षीण बना दिया है कि

उसमें विद्रोह की शक्ति ही नहीं रह गई है, और वह अगले जन्म में मुझ राक्षस को ही पति-रूप में पाने की एकांत इच्छा रखती है !'

"कुछ भी हो, तब से मैंने उसकी सेवा-टहल में कोई बात उठा नहीं रखी। ख़र्चे की तनिक भी परवा न कर शहर से प्रतिदिन दो डाक्टरों को बुलाने का क्रम जारी रखा। वह पहले से काफ़ी प्रसन्न और कुछ स्वस्थ भी दिखाई देने लगी। पर मेरे घर पहुँचने के दसवें दिन प्रायः आधी रात के समय अचानक उसका फेफड़ा जैसे फट गया—ऐसा मालूम हुआ, और उसके मुँह से खून के फौवारे छूटने लगे। इस घटना के चौथे रोज़ उसकी मृत्यु हो गई। मरने के प्रायः आधा घंटा पहले उसने कहा—'मैं आपकी स्त्री नहीं, घोर शत्रु निकली—मरते दम तक मुझसे आपको केवल कष्ट ही मिला। और मैं खुद कितनी बड़ी अभागिनी रही, इस बात का जिक्र ही करना बेकार है। आपको तो मैंने नाराज़ किया ही, बबुआ को भी......मेरे मरने के बाद बबुआ की खोज अवश्य कीजिएगा—यही मेरी आखिरी प्रार्थना है !' उसकी मृत्यु से जो गहरा धक्का मुझे पहुँचा उसकी कल्पना भी मैंने पहले नहीं की थी। मैं दिन-रात एक ऐसी तीखी पीड़ा से छटपटाने लगा जिसका ठीक-ठीक स्वरूप ही मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मुझे पूरा विश्वास है कि अगर तुम्हारी माँ की मृत्यु मेरे सामने न हुई होती तो उसके मरने की घटना मेरे जीवन पर तनिक भी प्रभाव न छोड़ पाती। मुझे तो ऐसा लगता है जैसे अपने प्रति किये गये अन्याय का भरपूर बदला लेने के लिये ही उसने अत्यन्त करुण पत्रों से मुझे डिगा कर मरने के पहले अपने पास बुला लिया......"

तैंतालीसवाँ परिच्छेद

इस बीच पारसनाथ अपने 'बैग' को एक कोने पर रखकर चुपके से एक कुर्सी पर बैठ गया था। जब बैजनाथ बाबू को फिर एक बार खाँसी का 'फिट' आया तो वह उठ खड़ा हुआ, और पीकदान उनके मुँह के पास बढ़ाकर धीरे से उनकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

'फिट' से सँभलते ही उन्होंने फिर बोलना शुरू किया। पारसनाथ देख रहा था कि बोलने से उनके हृदय पर काफी दबाव पड़ रहा है, और एक बार उसके मन में यह इच्छा हुई कि उनसे कुछ समय तक चुप रहकर विश्राम करने के लिये अनुरोध करे। पर फिर वह कुछ सोचकर रह गया। उसके आगे जिस नयी दुनिया का—नये भावना-लोक का—रहस्य पर्दा-दर-पर्दा उघड़ता चला जा रहा था, उसके भीतर का पूरा रूप देखने का कौतूहल वह दमन नहीं कर पाता था।

बैजनाथ बाबू कहने लगे—"इस मार्मिक घटना ने मेरे जीवन को चाहे कैसा ही अस्त-व्यस्त क्यों न किया हो, एक ज़बर्दस्त अनुभव इससे मुझे प्राप्त हुआ है, और भारतीय नारी-जाति के संबंध में एक निश्चित विश्वास इसने मेरे मन में जमा दिया है। मेरी इस अनुभव-सिद्ध बात को गाँठ बाँध लो, बेटा, कि भारतीय नारी चाहे समाज के किसी भी स्तर में, किसी भी स्थिति में जीवन क्यों न बिताती हो उसकी आत्मा अपनी मूलगत महानता का त्याग कभी नहीं करती। हाँ, हमारे देश की नारी बहुत महान्—महानतम—है! उसने सदियों से बहुत पीड़न सहे हैं; पुरुष-परिचालित सभ्यता के कठोर लौह-शासन से कुचले जाने पर भी उसने अपनी चरम परतंत्रता को स्वर्गीय आदर्श की महिमा प्रदान की है; पति के साथ सती बनकर वह जीवित अवस्था में चिता में हँस-हँस कर जल मरी है; विधवा का कठोर त्यागमय जीवन बिताकर जल

जलकर और घुल-घुलकर अपने कंकाल को उसने गृहस्थ-जीवन के बीच में मंगलमयी मूर्ति का रूप दिया है; जब कभी उसे वेश्या का जीवन बिताने को बाध्य होना पड़ा है, तो घोर-नरक के बीच में रहकर अपने शरीर की बलि देने पर भी उसने उस नरक के बीच में स्वर्ग का स्निग्ध आभास झलकाने के लिये प्राणपण से प्रयत्न किया है—स्वयं अपने व्यभिचारमय यथार्थ जीवन के दिल दहलानेवाले अनुभवों से यह घोर सत्य मेरे सिर पर चढ़कर बोला है। इन सब हीनताओं के कीचड़ में लोटने को विवश होने पर भी उसने अपनी मूल प्रकृति की महत्ता नहीं खोई है—न जाने उसके भीतर किस प्रचंड आत्म-शक्ति का बीज निहित रहा है! युग-युगांत की वह तापसी ऊपर से आज भी पिसी हुई, निःशक्त और पराजित मालूम होती है। पर उसके भीतरी बल का यथार्थ प्रदर्शन अभी संसार ने देखा कहाँ! पर वह दिन दूर नहीं है जब उसके भीतर इतने दिनों से बड़े यत्न के साथ संचित अंगार-कण दहक कर विश्वव्यापी ज्योतिर्मय ज्वाला में परिणत हो उठेंगे। मैं आज आत्मविश्वास के साथ तुम्हारे आगे यह भविष्यवाणी करता हूँ, बबुआ, कि असंख्य हीनताओं के भार से दबी हुई आज की भारतीय नारी जल्दी ही एक दिन सारे विश्व पर अपने महान् गौरव की प्रभुता स्थापित करेगी, और क्या पूर्व और क्या पश्चिम—संसार के समस्त देशों की नारियाँ उसी की विजय-पताका के पीछे-पीछे चलकर अपने को महिमान्वित समझेंगी। याद रखो, मैं भावुकता के आवेश में आकर अपने छोटे मुँह से यह बड़ी बात कहने का दुस्साहस नहीं कर रहा हूँ, बल्कि अपने नारकीय जीवन के दीर्घ अनुभव से इस परिणाम पर पहुँचा हूँ। तुम्हें अपने जीवन-काल में ही मेरे इस कथन की सचाई का पता लग जायगा। कुछ भी हो, आज अप्रत्याशित रूप से खोई निधि की तरह तुम्हें अचानक पाकर मेरी प्रसन्नता का ओर-छोर नहीं, ''आ! तुम्हारी माँ की मृत्यु का दुःख भी मैं आज बहुत-कुछ भूल

गया हूँ। आओ बेटा, मेरे एकदम पास आकर बैठ जाओ। एक बार तुम्हारे सिर पर हाथ फेरकर कुछ समय के लिये आज एक बार फिर से उसी स्वर्गीय सुख का अनुभव करूँ जिसका स्वाद मैं तुम्हारे छुटपन से तुम्हें गोद में खेलाकर ले चुका हूँ। आओ, आओ!"

पारसनाथ प्रतिरोध के रूप में एक शब्द भी न कहकर तत्काल कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ, और धीरे से बैजनाथ बाबू के पलँग पर उनकी बग़ल में जाकर बैठ गया। बैजनाथ बाबू एक हाथ उसकी पीठ पर फेरने लगे और दूसरे हाथ से उसके सिर के बाल सहलाने लगे। वह मन-ही-मन सोच रहे थे कि यदि पारसनाथ की माँ इस समय जीवित होती, तो वह इतने वर्षों बाद उसे पाकर इसी तरह उसके प्रति अपना दुलार जताती। उनके मन में जैसे पारसनाथ की स्वर्गीया माँ की तरफ़ से भी स्नेहाकुलता उमड़ उठी थी।

उस समय पारसनाथ के मन की दशा क्या हो रही थी, इसका ठीक-ठीक अंदाज़ लगाना कठिन है। उसने एक बार किसी एक पुस्तक में एक व्यक्ति के दुःस्वप्न के बारे में पढ़ा था, जो इस प्रकार था—वह व्यक्ति रेल के एक डिब्बे में बैठा हुआ अकस्मात् अपने किसी अपराध से आशंकित होकर डिब्बे से भाग निकलने के लिये व्याकुल हो उठता है। वह उठकर भागता है और डिब्बे में जितने भी आदमी उसे रास्ता रोके हुए दिखाई देते हैं उन सब को घबराहट के कारण एक तेज़ हथियार से क़त्ल करके वह आगे की ओर दौड़ा चला जाता है। उस ट्रेन से कूदकर वह तेज़ी से भागता हुआ एक दूसरी ट्रेन पकड़ता है, और वहाँ भी अपने डिब्बे के आदमियों से आशंकित होकर, जो कोई भी उसके रास्ते में आता है उसकी हत्या करके बाहर कूद पड़ता है, और फिर दौड़कर एक तीसरी ट्रेन पकड़ता है। इस प्रकार वह एक के बाद दूसरी ट्रेन में सवार होकर भागा चला जा

है। भागने के सिवा और किसी भी दूसरी बात की चिंता उसके मस्तिष्क में नहीं आती। पारसनाथ सोच रहा था कि उसके इतने वर्षों तक का जीवन ठीक इसी प्रकार के भौतिक दुःस्वप्न के सिवा और कुछ नहीं था। जब से उसने सुना कि वह जारज संतान है तब से उसकी आत्मा पाप और अमिट कलंक की अनुभूति से इस क़दर त्रस्त रहने लगी कि प्रतिपल वह उस भावना से भगने के लिये बेचैन रहने लगा, और भागने की उस हड़बड़ी में जो कोई भी व्यक्ति उसके रास्ते में आया नैतिक दृष्टि से उसकी हत्या करता हुआ वह जीवन-यात्रा की एक ट्रेन के बाद दूसरी ट्रेन पकड़ता चला आया है। और आज जब नींद खुलने के बाद उसका वह लोमहर्षक और दुःस्वप्न टूटा है, तो उसकी आँखों के आगे सारी दुनिया का रंग ही बदल गया है! आज ही वह भागने की हड़बड़ी में कैसा भयंकर अनर्थ करने जा रहा था! हीरा ने अत्यंत सरल हृदय से उस पर पूर्ण विश्वास करके जब उसे अपना सर्वस्व सौंप दिया था, उस समय उसकी आँखों में जो एक अत्यंत करुण-कोमल और मार्मिक स्निग्धता से भरा भाव छलक उठा था उसकी स्मृति रह-रहकर पारसनाथ के हृदय को तीखे शूलों से बेधने लगी। "पर अब भय की कोई बात नहीं है! मैं अभी आता हूँ, हीरा!"—उसने मन-ही-मन कहा।

एक बात रह-रहकर उसके मन से बाहर निकलने के लिये छटपटा रही थी। अभी उस बात की चर्चा चलाना उचित होगा या नहीं, कुछ देर तक वह इस असमंजस में मौन बैठा रहा। पर कुछ ही समय पहले वह हीरा के प्रति कैसा भयंकर अनर्थ करने जा रहा था और कर ही चुका था यदि अचानक चंद्रबहादुर न मिल गया होता! उसकी प्रतिक्रिया उसके मन में उसी तेज़ी से होने लगी थी। इसलिये उसे अधिक धैर्य नहीं रहा, और उसने साहस बटोर कर कहा—"आपकी बातों से मुझे विश्वास हो गया है कि वास्तव में नारी-जाति

के प्रति आपके विचारों में बड़ा भारी परिवर्तन आ गया है। इसलिये मैं आपके आगे एक प्रस्ताव रखने की धृष्टता करता हूँ। मैं एक लड़की को चाहता हूँ। वह लड़की पहले वेश्या का जीवन बिताया करती थी, पर कुछ वर्षों से उस जीवन से वह एकदम नाता तोड़ चुकी है, और उसके प्रति तनिक भी मोह उसके मन में शेष नहीं रहा है। वह मेरे साथ विवाह करके गृहस्थ-जीवन बिताने के लिये हृदय से उत्सुक है, और अपने भोलेपन के कारण मेरी ईमानदारी पर पूर्ण विश्वास किये बैठी है। पर मैं उससे कतराकर भाग निकलने की फ़िक्र में था। मैं उसे होटल में असहाय अवस्था में अकेली छोड़कर उसके पास की सब नक़दी और गहने खसोटकर चंपत हो गया होता, अगर आज स्टेशन पर चंद्रबहादुर से भेंट न हुई होती तो। पर आज आपकी बातों ने मेरी दृष्टि का स्वरूप ही बिलकुल बदल दिया है। इतने दिनों तक अपने को जारज समझकर जिन काल्पनिक शंकाओं से मेरा मन ग्रस्त रहा है और उन शंकाओं के पीड़न को भुलाने के लिये जिन अमानुषिक पाप-प्रवृत्तियों में मग्न रहा है उनका अनुमान आप नहीं लगा पावेंगे। पर अब आपने उन शंकाओं को जड़ से उखाड़ डाला है। अब मैं उस लड़की को किसी भी हालत में नहीं छोड़ सकता—सारा संसार अगर विरोधी हो उठे तो भी नहीं। इसीलिये आपके आगे मैं यह प्रस्ताव रखने का दुस्साहस करता हूँ कि मुझे उस वेश्या लड़की के साथ विवाह करने की अनुमति दे दें।" यह कहकर वह उत्सुक दृष्टि से उनकी ओर देखने लगा।

बैजनाथ बाबू काफ़ी देर तक स्तब्ध भाव से पारसनाथ की ओर ताकते रह गए। उसके बाद धीरे-धीरे उनके मुख पर एक अत्यंत शांत और गंभीर भाव प्रस्फुटित हो उठा। शायद उनके जीवन में पहली बार वैसा सहज-सुन्दर सौम्य भाव व्यक्त हुआ होगा। उन्होंने धीर स्वर में कहा—"मेरे भीतर जो संकीर्ण रूढ़िवादी व्यक्तित्व दबा हुआ

है वह तुम्हारे प्रस्ताव का भयंकर विरोध करने पर उतारू हो गया था। और अब भी वह विरोध के लिये छटपटा रहा है। पर उसके ऊपर मेरा जो नया व्यक्तित्व उभर आया है वह तुम्हारे प्रस्ताव को आदर की दृष्टि से देखने लगा है। इसलिये मैं सच्चे मन से तुम्हें उस वेश्या लड़की के साथ विवाह करने की अनुमति देता हूँ, बेटा! केवल अनुमति ही नहीं देता हूँ, बल्कि उसमें मेरा पूर्ण सहयोग भी रहेगा। तुम्हारी माँ के साथ मैंने जो नृशंस व्यवहार किया है उसकी अनुभूति मेरे मन के गहरे से गहरे स्तरों को स्पर्श करती हुई अभी तक भीतर की ओर धँसती चली जाती है। मेरे उस घोर पाप का बहुत कुछ प्रायश्चित हो जायगा, अगर तुम उस वेश्या लड़की से विवाह कर लो जिसे तुम असहाय अवस्था में छोड़ आए हो, और जो तुम पर पूर्ण विश्वास करके निश्चिन्त बैठी होगी। जाओ बबुआ, अभी चंद्रबहादुर के साथ जाओ और मेरी भावी बहू को यहीं ले आओ!"

पारसनाथ का मुख एक ऐसी परिपूर्ण प्रसन्नता की दीप्ति में विभासित हो उठा जिसका अनुभव उसने जीवन में इसके पहले कभी एक बार के लिये भी नहीं किया था। वह तत्काल उठ खड़ा हुआ और भाव के आवेश में उसने बैजनाथ बाबू के दोनों पाँव छूकर आंतरिक श्रद्धा से उन्हें प्रणाम किया। बैजनाथ बाबू मन-ही-मन हार्दिक आशीर्वाद देते हुए केवल उसके सिर पर हाथ रखकर रह गए। उनके गद्‌गद प्राणों की वाणी बाहर फूट नहीं पाती थी। बहुत दबाने पर भी आँसू के दो-एक बूँदें उनकी आँखों से निकलकर उनके गालों से होकर बह चलीं। उन्हें ऐसा अनुभव हो रहा था कि अनेक युगों के बाद आज उस तरह के विह्वल और पुलक-विकल सुख का अनुभव उन्हें हुआ है।

चौवालीसवाँ परिच्छेद

पारसनाथ उसी दम 'बैग' को हाथ में लेकर चल पड़ा। बैजनाथ बाबू ने इशारे से चंद्रबहादुर को भी उसके साथ चलने के लिये कह दिया। यद्यपि अब अपने लड़के के प्रति किसी प्रकार का अविश्वास उनके मन में नहीं रह गया था, तथापि पूर्व अनुभवों से बहुत अधिक घबराये हुए उनके ऊपरी मन की बाहरी झिल्ली पर संदेह की एक संस्कारगत छाया अभी तक शेष थी।

होटल की ओर जानेवाली ट्राम में बैठकर पारसनाथ आकाश-पाताल की बातें सोचने लगा। भंग की परिपूर्ण तरंग से माथा चकराने पर जिस तरह नाना प्रकार के रूप-रंग क्षण-क्षण में बदलते हुए आलोकचक्रों की तरह मस्तिष्क के भीतर मँड़राते रहते हैं, उसके मन और मस्तिष्क की वही दशा उस समय हो रही थी। बैजनाथ बाबू ने उसे विवाह की अनुमति देते हुए जो बात कही थी उस पर विचार करता हुआ वह मन-ही-मन कहने लगा—"हीरा से मेरा विवाह हो जाने पर आपके पाप का प्रायश्चित संभवतः हो जाय, पिताजी, पर मैं जो आपसे भी कई गुना अधिक भयंकर और घातक पाप कर चुका हूँ, क्या उनका प्रायश्चित अब किसी भी उपाय से हो सकता है? कभी नहीं! कभी नहीं! इस जन्म में नहीं! पर कुछ भी हो, जो एक और घातक पाप मैं करने जा रहा था उससे तो कम से कम मुक्त हो ही जाऊँगा।"

ट्राम से उतरकर जब वह और चंद्रबहादुर कुछ दूर तक पैदल चलकर होटल के दरवाजे के पास पहुँचे, तो हीरा खिड़की से अत्यंत उत्सुक दृष्टि से उनकी ओर देख रही थी। जब से पारसनाथ गया था तब से अकेले में उसका जी बहुत घबरा रहा था, और वह क्षण-भर

के लिये एक स्थान पर स्थिर नहीं रह पाती थी। कभी इस खिड़की के पास जाकर खड़ी होती, कभी उस खिड़की के पास, और कभी बाहर बरामदे में। अंत में पारसनाथ जब लौटकर आ ही पहुँचा, तो उसकी पुलकित आँखें सजलता से चमक उठीं। जब पारसनाथ ऊपर जाकर कमरे के भीतर गया तो चंद्रबहादुर कमरे के बाहर ही खड़ा रहा। पारसनाथ भीतर प्रवेश करते ही 'बैग' को नीचे रखकर अत्यंत अधीर भाव से हीरा से लिपट पड़ा और उसके दाहिने गाल पर, कान के पास अपने ओठों को रखकर चुमकार-भरे स्वर में फुसफुसाते हुए कहने लगा—"मेरी हीरा! मेरे मोती! मेरे पन्ना!"

हीरा अत्यंत सरस स्नेह की मधुर मुसकान मुख पर झलकाती हुई बोली—"जिस काम से तुम गए थे, वह हुआ या नहीं, पहले यह बताओ!"

"मैं उससे बहुत बड़ा काम करके आया हूँ, हीरा!"

"क्या काम?"

"मैं हम दोनों के विवाह की बात पक्की करके आया हूँ।"

अत्यंत आश्चर्य के साथ हीरा ने कहा—"मैं तुम्हारी बात कुछ समझी नहीं! किससे पक्की करके आए हो?"

"पिताजी से।"

हीरा को और भी अधिक आश्चर्य हुआ।

"पिताजी से! कहाँ हैं तुम्हारे पिताजी? उनके संबंध में कोई बात तुमने मुझसे कभी नहीं कही! वह क्या यहीं—कलकत्ते में—हैं?"

"हाँ हीरा, वह आजकल यहीं हैं। मुझे भी पहले पता नहीं था। आज इत्तफ़ाक से उनसे भेंट हो गई। तुम्हारे संबंध में सब बातें उन्हें बताकर मैंने तुम्हारे साथ अपने विवाह की इच्छा प्रकट की, और इस

विषय में उनकी अनुमति चाही। उन्होंने आज्ञा दे दी, और कहा—'मैं अपनी भावी बहू को देखना चाहता हूँ, उसे यहीं ले आओ।' अब चलो। वहाँ काफी जगह है। आज से हम लोग वहीं रहेंगे। होटल का बिल चुकाकर चले चलें।"

हीरा के लिये यह इतने बड़े सुख की बात थी कि उसे विश्वास ही नहीं होना चाहता था। पर पारसनाथ के मुख के सहज भाव से उसकी बात पर अविश्वास करने का कोई कारण भी उसे नहीं दिखाई देता था। कुछ भी हो, वह चलने की तैयारी करने लगी। पारसनाथ ने चंद्रबहादुर को भीतर बुलाया। उसने सब सामान बाँध डाला। उसके बाद एक गाड़ी और एक टैक्सी ले आया। होटल का बिल चुकाकर पारसनाथ हीरा के साथ टैक्सी पर सवार हो गया, और चंद्रबहादुर सामान के साथ गाड़ी में बैठ गया।

निर्दिष्ट स्थान पर उतरकर पारसनाथ हीरा को मकान के भीतर ले गया। ऊपर चलकर जब दोनों ने बैजनाथ बाबू के कमरे में प्रवेश किया तो हीरा उनका रुग्ण शरीर और रुक्ष आकृति देखकर कुछ सहम सी गई। पारसनाथ ने अत्यंत गंभीर भाव से कहा—"यही मेरे पिताजी हैं, हीरा!"

हीरा के मन में तत्काल जैसे किसी पूर्व जन्म के संस्कार से श्रद्धा की भावना जग उठी, और उसने सच्चे सम्मान के साथ बैजनाज बाबू को प्रणाम किया।

बैजनाथ बाबू ने उसे आंतरिक आशीर्वाद देते हुए धीरे से कहा—"आओ बेटी, आओ। तुम नहीं सोच सकतीं कि आज मेरे जीवन में कितने बड़े आनंद का दिन है! तुम दोनों को एक-साथ देखकर मुझे ऐसा महसूस हो रहा है कि मैं मरता-मरता जी उठा हूँ।

तुम दोनों का प्रेम आजीवन अटल रहे, और तुम्हारा गृहस्थ-जीवन सदा फलता-फूलता रहे, मेरा यह आंतरिक आशीर्वाद है।"

* * * *

तब से हीरा और पारसनाथ वहीं रहने लगे। बेटे के मिलने की प्रसन्नता के कारण हो, या डाक्टरों की कुछ विशेष दवाओं के प्रभाव से हो, तब से बैजनाथ बाबू का स्वास्थ्य दिन पर दिन सुधरता हुआ मालूम होने लगा। हीरा अपनी सभी सेवाओं से उनकी प्रसन्नता को और अधिक बढ़ाती चली गई। भावी ससुर की सेवा में जो एक विशेष प्रकार का स्निग्ध सुख हीरा को मिल रहा था, उसका अनुभव तो दर-किनार, उसकी कल्पना भी उसने इसके पहले कभी नहीं की थी। उसके हृदय के अतल में युगों से दबे हुए भारतीय कुलवधू के संस्कार जैसे किसी माया-मंत्र से जग पड़े थे।

प्रायः एक महीने बाद बैजनाथ बाबू ने बड़ी धूमधाम से दोनों का विवाह कर दिया। कालिम्पांग से उन्होंने अपने बहुत-से आदमियों को बुलाया और कलकत्ते के बहुत-से परिचित सज्जनों को निमंत्रित किया। वर और बधू को बहुत से सुन्दर और मूल्यवान उपहार दिए।

विवाह के बाद प्रायः पाँच महीने तक सब लोग कलकत्ते ही में रहे। उसके बाद बैजनाथ बाबू ने कालिम्पांग जाने की इच्छा प्रकट की। पुत्र और पुत्रवधू को भी वह साथ ले जाना चाहते थे। पर पारस-नाथ कुछ काल के लिये हीरा के साथ स्वतंत्र जीवन बिताने की इच्छा रखता था। बैजनाथ बाबू का स्वास्थ्य अब बहुत कुछ सुधर चुका था, इसलिए इस संबंध में कोई विशेष चिंता की बात नहीं रह गई थी। बैजनाथ बाबू ने आज्ञा दे दी कि दोनों जहाँ जी चाहे वहीं सुख से रहें, और कुशल-पत्र देते रहें।

हीरा की इच्छा लखनऊ जाने की थी। वह अपनी बहनों को अपने

जीवन के नये निर्माण की सूचना देना चाहती थी। जिन बहनों के साथ उसके जीवन के इतने वर्ष एक-साथ बीते थे, अपने सौभाग्य के दिनों में उनके संसर्ग से एकदम अलग रहना उसे अच्छा नहीं लगता था। उसने प्रस्ताव किया कि लखनऊ में एक बँगला किराये पर लेकर कुछ महीने वहीं बिताये जायँ—कम-से-कम उसके प्रसव-काल तक। इधर कुछ महीनों से उसके आगे अपने भावी मातृत्व के शुभ-चिह्न प्रकट हो रहे थे। पर पारसनाथ ने उसे मीठी-मीठी बातों से समझा-बुझाकर लखनऊ जाने के प्रस्ताव को रद्द कर दिया। उसके मन में लखनऊ के जीवन की कोई अच्छी स्मृति नहीं थी, इसलिये वह भरसक वहाँ जाना नहीं चाहता था। उसने कहा—"तुम्हारी इच्छा का बड़ा मूल्य मेरे लिये है। इसलिये मैं तुम्हारी बात को एकदम से टालना भी नहीं चाहता। मेरी यह राय है कि हम लोग लखनऊ के पास ही किसी एक शहर में जाकर रहें। अगर तुम्हारी बहनें सचमुच तुमसे मिलने के लिये व्याकुल होंगी तो वे वहाँ आसानी से मिल सकती हैं। या तुम भी चाहो तो बीच-बीच में उनसे मिलने जा सकती हो। पर लखनऊ में डेरा जमाना किसी हालत में भी मैं उचित नहीं समझता।"

हीरा ने उसकी बात मान ली। कानपुर में रहने की बात तय हुई। कानपुर में 'सिविल लाइंस' की तरफ़ एक अच्छा-खासा बँगला किराये पर लेकर दोनों रहने लगे। पारसनाथ अपनी गर्भवती स्त्री के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बहुत सचेष्ट रहने लगा, और हर तरह उसे स्वस्थ और प्रसन्न करने के लिये प्रयत्नशील रहने लगा। इस बार वह बड़ी उत्सुकता से बच्चे के जन्म के शुभ-दिन की प्रतीक्षा करने लगा। हीरा के मुख पर दिन-दिन वह उसी सरस स्निग्धता, उसी मधुर आशा का उज्ज्वल आभास देख रहा था जो कभी उसी दशा में मंजरी के मुख पर उसने देखी थी। उस पुरानी स्मृति के उभड़ने से एक क्षणिक टीस-सी उसके मन में उठी, पर तत्काल वह विलीन भी हो गई। उसके

तब के और आज के मनोभावों में ज़मीन-आसमान का अंतर था। तब यह बात मालूम होने पर कि मंजरी को गर्भ रह गया है, पारसनाथ मन-ही-मन बौखला उठा था और तब से मञ्जरी को त्यागने के समय तक—और उसके बाद भी—जिस असहनीय मानसिक पीड़ा का अनुभव उसे करना पड़ा था, उसकी कल्पना भी आज वह ठीक से नहीं कर पाता था। आज पिता का शुभाशीर्वाद पाने के कारण जिस नारी को उसने द्विविधाहीन भाव से पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया था उसके मातृत्व के मंगलमय रूप का बड़ा मूल्य उसके लिये था, और पिता के सच्चे सुख का पूर्वानुभव उसे हो रहा था।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

जब आठवाँ महीना समाप्त होने को आया तो पारसनाथ के मन में यह चिंता उत्पन्न होने लगी कि एक अनुभवी स्त्री की सहायता के बिना कैसे काम चलेगा। उसने पिछली सब बातों को भूलकर हीरा को सलाह दी कि वह अपनी किसी बहन को प्रसव-काल के लिये अपने पास बुला ले। पर हीरा के लिखने पर भी कोई बहन नहीं आई। अंत में उसने निश्चय किया कि प्रसव-काल के कुछ समय पहले ही हीरा को लेडी डफ़रिन अस्पताल में भरती करा देना चाहिये। पर बाद में उसके एक परिचित सज्जन ने उसे सूचित किया कि प्रायः एक वर्ष से एक बहुत ही योग्य डाक्टरनी के तत्त्वावधान में एक नया मेटर्निटी हास्पिटल खुला है। उन्होंने अपनी श्रीमती को भी वहीं भरती कराया था; वहाँ बड़ी सुविधाएँ हैं, और हर तरह का आराम है; आदि-आदि। पारसनाथ ने उनकी बातों से आश्वासित होकर नवें महीने के प्रारंभ में हीरा को वहाँ भरती करा दिया। वहाँ की प्रबंध-

कर्त्री महाशया एक देशी ईसाई महिला थीं। वह बहुत ही शिष्ट और सहृदय जान पड़ीं। उन्होंने पारसनाथ को सलाह दी कि वह हीरा को प्राइवेट वार्ड में भरती न कराके जनरल वार्ड में ही भरती करावे, क्योंकि वहाँ सब समय दूसरी स्त्रियों का साथ रहने से उसका जी नहीं घबरावेगा, और चौबीसों घंटे बिना बुलाये नर्सों और डाक्टरनियों के 'एटेंडेंस' की सुविधा रहेगी। पारसनाथ ने उसकी बात मान ली। हीरा जनरल वार्ड मे भरती हो गई।

बाहरी आदमियों के मिलने का समय दिन में तीन बजे से लेकर पाँच बजे तक था। पारसनाथ रोज़ उस निश्चित समय में जाकर हीरा से मिल आता। एक नौकरानी से सुबह-शाम हीरा के मन का खाना भिजवा दिया करता, और दिन में स्वयं कुछ फल-फूल उसके लिये ले जाता। जनरल वार्ड में जो दूसरी स्त्रियाँ भरती थीं, उन सब से हीरा ने एक ही दिन में मैत्री स्थापित कर ली थी। उनमें से जो स्त्रियाँ अनुभवी थीं उनसे वह नयी माता के कष्ट तथा नव-जात शिशु के समुचित पालन-पोषण के संबंध में तरह-तरह की बातें जानती रहती थी। वह बहुत प्रसन्न थी और उत्सुकता से अपने मातृत्व के दिन की प्रतीक्षा कर रही थी। पर पारसनाथ बहुत सशंकित था। उसने सुन रखा था कि प्रसव-पीड़ा कभी-कभी असहनीय होने के कारण उससे गर्भिणी की मृत्यु तक हो सकती है। मञ्जरी के संबंध में इस तरह की चिंता कभी उसके मन में उदित ही नहीं हुई थी। तब वह बिलकुल दूसरी ही चिंताओं में मग्न था।

कुछ भी हो, हीरा के भरती होने के प्रायः एक हफ़्ते बाद एक दिन तड़के सवेरे पारसनाथ को यह सूचना मिली कि पिछली रात प्रायः दो बजे के समय हीरा ने एक लड़की को जन्म दिया है, और नवजात लड़की और उसकी माँ दोनों सकुशल हैं। पारसनाथ उसी दम हीरा

से मिलने के लिये अधीर हो उठा, पर अस्पताल के क़ायदे के अनुसार वह उस समय मिल नहीं सकता था। जो नौकरानी खाना पहुँचाने गई उससे पता चला कि 'बहू रानी' बहुत प्रसन्न हैं और 'नन्हीं बिटिया' भी स्वस्थ है।

शाम को जब पारसनाथ नियत समय पर फलफूल लेकर अस्पताल पहुँचा, तो उस समय हीरा बच्ची को दूध पिला रही थी। हीरा वास्तव में बहुत प्रसन्न दिखाई देती थी। उसने बच्ची के मुँह से दूध छुड़ाकर दोनों हाथों से उसे ऊपर उठाया और पारसनाथ को दिखाते हुए कहा—"ज़रा देखो तो सही, कैसी सुन्दर दिखाई देती है।" यह कहते हुए मातृत्व के गौरव से उसका मुख दीप्त हो रहा था, और स्नेह-जनित हर्ष से उसकी सजल आँखें चमक रही थीं।

बच्ची एक बड़े कीड़े की तरह माँ की गोद में कुलबुला रही थी, और अज्ञात अंध संस्कारवश माँ का दूध पीने के लिये छटपटा रही थी, हालाँकि उस समय उसे दूध पिलाने से मना किया गया था, और केवल 'ग्लुकोज़' मिला हुआ पानी पिलाया जा रहा था। उसे देख-देखकर पारसनाथ के शरीर में एक हलकी-सी सुरसुरी दौड़ गई—स्नेह से, हर्ष से या—या घृणा से? वह स्वयं नहीं जान पाया। बच्ची को देखकर पारसनाथ का एक अज्ञात सुप्त संस्कार जैसे जग उठा, और उसने अपने अनजान ही में चुमकारना शुरू कर दिया। चुमकारते-चुमकारते वह कहने जा रहा था—"मुन्नू!" पर किसी पूर्व स्मृति ने उभड़कर सहसा उसका गला पकड़ लिया, और वह केवल "मु—!" कहकर रह गया।

उस दिन एक विचित्र अनुभूति लेकर वह अस्पताल से वापस गया—उस अनुभूति में कितना सुख था और कितनी वेदना, इसकी ठीक माप-तौल वह नहीं कर पाया। उसके बाद वह प्रतिदिन नियत

समय पर अस्पताल जाता था। सातवें दिन जब वह उसी नियत समय पर अस्पताल पहुँचा, तो उसने हीरा को बहुत गंभीर पाया। उसके गोरे मुख पर किसी आशंका-जनित वेदना की हलकी-सी कालिमा पुती हुई थी। मालूम हुआ कि बच्ची को बुखार आया हुआ है। पारसनाथ को देखकर हीरा आँखों में आँसू भर लाई और बोली—"डाक्टरनी को दिखाया था। उसने एक दवा पिलाई थी। पर उससे बुखार घटा नहीं, बल्कि बढ़ गया है।"

पारसनाथ ने देखा कि बच्ची तेजी से साँस ले रही है, और बेहोशी की-सी हालत में माँ का दूध चूसने का क्षीण प्रयास कर रही है। डाक्टरनी मरीजों को देखने के लिये 'वार्ड' में आई हुई थी। पारसनाथ बहुत घबराई हुई हालत में उसके पास गया। डाक्टरनी आई। उसने बच्ची को देखा और उसके बाद जो नर्स पास ही खड़ी थी उसे एक-विशेष दवा बताकर कह दिया कि बच्ची को पिला दिया जाय। यह कहकर वह चली गई। नर्स ने वैसा ही किया। दवा पिलाने के प्रायः आधे घंटे बाद बच्ची की हालत और अधिक खराब हो गई, और उसका साँस और तेजी से चलने लगा। वह बड़े कष्ट से दूध पी रही थी। हीरा रो पड़ी और बच्ची के मुख में जबरदस्ती स्तन का सिरा ठूँसने लगी। बच्ची क्षण-भर के लिये स्तन चूसने की चेष्टा करके छोड़ देती थी। हीरा अत्यंत व्याकुल होकर रोने लगी। पारसनाथ भी बुरी तरह घबरा उठा। जो नर्स वहाँ पर खड़ी थी उससे उसने कहा कि फिर से जल्दी डाक्टरनी को बुला लावे। नर्स जाकर फिर उसी डाक्टरनी को बुला लाई। डाक्टरनी ने बच्ची को देखकर कहा—"'केस' कुछ 'सीरियस' है, बड़ी डाक्टरनी—डाक्टर राय—को बुलाना होगा।"

पारसनाथ ने आश्चर्य से पूछा—"अभी और भी कोई डाक्टरनी

है क्या ? मैंने तो उन्हें कभी नहीं देखा। मैं तो बराबर आप ही को देखता आया हूँ !"

डाक्टरनी साहबा मुस्कराईं। उन्होंने कहा—"डाक्टर राय तभी आती हैं जब कोई 'सीरियस केस' रहता है। उन्हें अस्पताल की कुल बातों का प्रबंध करना पड़ता है, इसलिये उन्हें सब समय आने की फुर्सत नहीं रहती। मैं अभी उन्हें बुलाती हूँ। आप घबराइए नहीं। उनकी दवा से आपकी बच्चों की तबीअत पाँच मिनट के अंदर ठीक हो जावेगी।" यह कहकर वह चली गई।

पारसनाथ मारे घबराहट के कुछ सोच ही नहीं पा रहा था कि क्या किया जाय। वह बार बार हीरा को दिलासा देने की चेष्टा में स्वयं भी रोनी-सी सूरत बना देता था, और एक बार बच्चों की ओर देखकर न जाने किस दुःस्वप्न-लोक में मग्न हो जाता। प्रायः तीन मिनट बाद किसी के पाँवों की आहट सुनकर उसने लौटकर देखा—दो महिलाएँ खड़ी थीं। उनमें से एक वही डाक्टरनी थी जो बच्चों को पहले देख गई थी। पर दूसरी महिला को देखकर पारसनाथ को कुछ क्षणों तक अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। आँखें फाड़-फाड़कर वह भ्रांत और भीत दृष्टि से दूसरी महिला की ओर देखता रह गया। नवागता महिला उससे कम भ्रांत और भीत नहीं दिखाई देती थीं। पारसनाथ ने कहा—"तुम !......." इसके आगे वह और कुछ नहीं कह सका। नवागता महिला भी उत्तर में केवल "तुम !" कहकर रह गई। पारसनाथ को प्रथम क्षण में यह विश्वास नहीं हुआ कि मंजरी कायाकल्प के किसी नियम से डाक्टरनी का वेश बदलकर उसके सामने खड़ी है। पर कुछ ही समय बाद उसका भ्रम जाता रहा और उसे निश्चित विश्वास हो गया कि 'बड़ी डाक्टरनी' के रूप में जो स्त्री उसके सामने उपस्थित है वह मंजरी ही है। जो डाक्टरनी

'डाक्टर राय' को बुला लाई थी और जो नर्सें वहाँ पर खड़ी थीं वे सब बड़े गौर से विस्मित दृष्टि से दोनों की ओर देख रही थीं।

डाक्टर राय विस्मय के प्रथम धक्के से जब सँभलीं, तो उन्होंने एक बार घोर घृणा की दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखकर रूखे—बल्कि कठोर—स्वर में कहा—"क्या यह तुम्हारी बच्ची है ?" काँपती हुई आवाज़ में पारसनाथ बोला—"जी हाँ !"

"जाओ ! जाओ ! इसी क्षण मेरे सामने से हट जाओ ! मैं इस बच्ची को हरगिज़ नहीं देखूँगी !"—उन्होंने झल्लाकर कहा। सारे वार्ड में सन्नाटा छा गया और पारसनाथ सब के कुतूहल का केन्द्र बन गया।

"डाक्टर रमैया, तुम देखना, और जो कुछ पूछना हो मुझसे पूछ लेना। मैं जाती हूं।" यह कहकर डाक्टर राय जाने लगीं। उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं या आँसू, यह ठीक से बताना कठिन है। क्षणिक स्तब्धता के बाद पारसनाथ का होश फिर आया। उसने दौड़कर डाक्टर राय के दोनों पाँवों के जूते पकड़ लिए। अत्यंत गिड़गिड़ाई हुई आवाज़ में बोला—"मेरी बच्ची को एक बार देख दीजिए ! उसे जिला दीजिए ! उसके बाद आप मुझे जो भी सज़ा देना चाहेंगी मैं उसे स्वीकार कर लूंगा।"

"जाओ ! जाओ ! मेरे सामने से हट जाओ ! तुम्हारे समान हत्यारे की कोई बात मैं सुनना नहीं चाहती !"—फिर एक बार झल्लाई हुई आवाज़ में डाक्टर राय ने कहा, और झटके से अपने दोनों पाँवों को छुड़ाकर वह चलने लगीं। सारे वार्ड में तमाशा लग गया। इतने में अकस्मात् हीरा बच्ची को लेकर डाक्टर राय के सामने चली आई, और बच्ची को उनके पाँवों के सामने फ़र्श पर रखकर अत्यंत व्याकुलता से बिलखती हुई बोली—"बहनजी, मेरी बच्ची

को या तो देख दीजिए, या इसे अपने पैरों से कुचल कर मार डालिए! इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कह सकती।"

"यह क्या करती हो! यह क्या करती हो!" कहकर डाक्टर राय ने बच्ची को दोनों हाथों से उठा लिया। उनकी दोनों आँखों में आँसुओं की धारा जैसे रोके नहीं रुकना चाहती थी। उन्होंने पारसनाथ की ओर एक बार अपनी सजल और साथ ही जलती हुई आँखों से देखकर कहा—"अगर तुम चाहते हो कि मैं बच्ची का इलाज करूँ, तो तुम इसी क्षण यहाँ से हटकर बाहर चले जाओ!"

पारसनाथ बिना एक शब्द बोले चुपचाप बाहर निकल गया। डाक्टर राय ने बच्ची को अच्छी तरह देखकर हीरा से स्नेह-कोमल स्वर में कहा—"घबराने की कोई बात नहीं है, बहन! मैं अभी दवा दिये देती हूँ, उससे पाँच मिनट के अंदर तबीअत ठीक हो जायगी।" यह कहकर उन्होंने नर्स को एक विशेष दवा लाने के लिये आदेश दिया। नर्स तत्काल बग़लवाले कमरे से दवा ले आई। डाक्टर राय ने हीरा से कहा कि बच्ची को गोद में लेकर पलंग पर बैठ जावे। हीरा ने वैसा ही किया। डाक्टर राय ने बच्ची को चम्मच से एक घूंट दवा पिला दी। हीरा तद्‌गत भाव से बच्ची की ओर देख रही थी और बरबस आँसू गिराती जाती थी। उसके लिये उस समय बच्ची के सिवा संसार में और किसी का अस्तित्व ही नहीं था—स्वयं अपना भी नहीं। डाक्टर राय भी बड़े ध्यान से हीरा की ओर देख रही थीं,—क्या सोचकर, कौन जाने! बच्ची के लिये डाक्टर राय तनिक भी चिंतित नहीं थीं, क्योंकि उन्होंने पहले ही देख लिया था उसकी जान बिलकुल भी खतरे में नहीं है।

प्रायः दस मिनट बाद बच्ची ने स्वाभाविक ढङ्ग से दूध पीना शुरू कर दिया, और उसकी साँस की क्रिया भी बहुत-कुछ, सहज भाव से

चलने लगी। डाक्टर राय की भीगी पलकें पुलकित हो आईं ! उन्होंने स्नेह-मधुर मुसकान से हीरा की ओर देखकर कहा—"अब कुछ चिंता न करो बहन ! अब तुम्हारी बच्ची बिलकुल अच्छी हो गई है।"

हीरा भी जान गई थी कि अब बच्ची की हालत पहले से काफी अच्छी हो गई है, इसलिये वह चैन की साँस ले रही थी, और कृतज्ञता के आँसू छलकाती हुई डाक्टर राय की ओर देख रही थी। डाक्टर राय उससे बातें करने के लिये विशेष उत्सुक जान पड़ती थी, पर जैसे कुछ संकोच का सा अनुभव कर रही हो, ऐसा मालूम होता था। कुछ देर तक चुप रहने के बाद डाक्टर राय ने धीरे से पूछा—"वह तुम्हारे कौन होते हैं, बहन ?"

"पति",—ससंकोच और सविस्मय हीरा ने कहा।

"ओह ! तुम्हारा विवाह कब हुआ ?" यह प्रश्न पूछते हुए डाक्टर राय का मुख एक अव्यक्त विषाद से म्लान हो आया। हीरा ने इस बात पर गौर किया। पारसनाथ के प्रति डाक्टर राय का व्यवहार वह देख चुकी थी। एक अस्पष्ट संदेह उसके मन में पहले ही से उत्पन्न हो रहा था। उसने उत्तर दिया—"प्रायः साल भर पहले की बात है।"

"ओह !"—एक लम्बी साँस लेते हुए डाक्टर राय ने कहा—"कुछ भी हो, मुझे बहुत अफसोस है, बहन, मैंने अपने कठोर व्यवहार से तुम्हारा जी दुखाया ! पर इस बात का एक कारण था, जिसे आज तो नहीं, पर मौका मिलने पर किसी दिन अवश्य बताऊँगी। इस समय मैं जाती हूँ। अगर बच्ची की तबीयत फिर कुछ भी खराब हो तो मुझे अवश्य बुला लेना।" यह कहकर डाक्टर राय तेज़ क़दम रखती हुई दूसरे कमरे में चली गईं।

पारसनाथ इतनी देर तक बाहर बरामदे पर एक खिड़की के पास

ओट में खड़ा था, और वहाँ से लुक-छिपकर सब-कुछ देख रहा था, और बहुत-कुछ सुन रहा था। जब डाक्टर राय चली गईं, तो वह चुपके से फिर भीतर चला आया। बच्ची की तबीअत का हाल जानकर और हीरा की घबराहट दूर होते देखकर उसे परम प्रसन्नता हुई।

छियालीसवाँ परिच्छेद

तब से हीरा जब तक अस्पताल में रही तब तक कभी एक दिन के लिये भी उसकी तबीअत खराब नहीं हुई। जब उसके अस्पताल से विदा होने का समय आया, तो डाक्टर राय ने (जो हीरा और उसकी बच्ची का हाल डाक्टर रमैया से बराबर मालूम करती रहती थीं) उसे एकांत में अपने पास बुलाया। स्वयं हीरा के पास वह पारसनाथ की उपस्थिति के डर से नहीं गईं। अकेले में वह हीरा से बड़े प्रेम से मिलीं, और बच्ची को गोद में लेकर उन्होंने उसे खूब प्यार किया उसके बाद उन्होंने अपने पिछले जीवन का सारा इतिहास विस्तार के साथ सुनाया। जब वह सुना रही थीं, तो हीरा अत्यंत श्रद्धा और संभ्रम के साथ उनके तेजस्वी मुख की गौरव-श्री पर तद्गत भाव से ध्यान दे रही थी। एक अपूर्व रहस्यमयी महिमा से दिपते हुए उस मुख पर कभी एक मर्मस्पर्शी कोमल करुणा झलक उठती थी, कभी रोषपूर्ण भाव व्यक्त हो उठता, और कभी एक स्निग्ध-शांत, सौम्य ज्योति विभासित हो उठती थी। सारा दास्तान सुनाने के बाद उन्होंने कहा—"तुम्हारे प्रति मेरे मन में लेशमात्र भी ईर्ष्या का भाव नहीं है, बहन, और मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि तुम्हारी बच्ची के प्रति मेरे मन में एक ऐसी ममता जग उठी है, जिसपर विचार करके मुझे स्वयं आश्चर्य होने लगता है। पर क्षमा करना, एक बात मैं स्पष्ट शब्दों में तुम्हें जता देना

चाहती हूँ—वह यह कि जिस व्यक्ति को तुमने अपना पति बनाया है, उसे इस जीवन में मैं कभी क्षमा नहीं कर सकती। उसके समान हीन और घृणित पापात्मा इस जीवन में मैंने दूसरा नहीं देखा। वह हत्यारा है, हाँ हत्यारा! उसने मेरे हँसते खेलते हुए बच्चे को अनाथों का भी अनाथ बनाकर कुत्ते की मौत मरने के लिये छोड़ दिया। और मुझे ऐसी अवस्था में छोड़कर वह भाग निकला कि......पर अब ये सब बातें व्यर्थ की हैं। जो भी हो, तुमसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। तुम बड़ी सरल और सहृदय हो। भगवान् तुम्हें और तुम्हारी बच्ची को स्वस्थ और सुखी रखें। बीच-बीच में मुझसे मिलती रहना। मुझसे फुर्सत से मिलने का सबसे अच्छा समय दिन में ग्यारह बजे से लेकर एक बजे तक है।"

हीरा बच्ची को गोद में लेकर उठ खड़ी हुई, और उसी अवस्था में उसने डाक्टर राय से "नमस्ते" कहा। डाक्टर राय की बातों के उत्तर में वह बहुत-कुछ कहना चाहती थी, पर उनके आगे अपने को इस क़दर निस्तेज पा रही थी कि कुछ बोलने का साहस ही उसे नहीं होता था। फिर भी जाने के पहले वह साहस बटोरकर बोली—"मेरे पति के संबंध में आपने जो बातें कही हैं उनसे मुझे विश्वास हो गया है कि उन्होंने आपके साथ घोर अन्याय किया है। फिर भी आपके मुँह से उनके संबंध में कड़े शब्द मुझे बिलकुल अच्छे नहीं लगे हैं। इसका कारण केवल यह है कि वह मेरे पति हैं। पर इसके लिये मैं आपको बिलकुल भी दोषी नहीं ठहराती, क्योंकि मैं सोच सकती हूँ कि अगर आपके स्थान में मैं होती तो बहुत मुमकिन है मेरे भी मन का भाव ऐसा ही हो उठता। फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करूँगी कि अगर हो सके तो आप अब उन्हें क्षमा कर देने की चेष्टा करें। यह आपके समान महान और उदार नारी के ही योग्य होगा। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कह सकती। अच्छा, नमस्ते। आपने मेरी बच्ची को जिलाकर मेरा

जो उपकार किया है उसके लिये मैं जीवन-भर मन-ही-मन आपको धन्यवाद देती रहूँगी।" यह कहकर हीरा चली गई।

घर पहुँचकर हीरा ने पारसनाथ से सब बातें विस्तार-सहित कह डालीं। दूसरी बातों के साथ उसने यह भी बताया कि किन परिस्थितियों में डाक्टर राय ने कलकत्ते में डाक्टरी पढ़ी, कैसे वहाँ के एक नामी बंगाली डाक्टर से उनका विवाह हुआ, और विवाह के दो वर्ष बाद ही उसकी मृत्यु हो जाने पर उनकी छोड़ी हुई संपत्ति तथा उनके मित्रों के दिये हुए दान की सहायता से कैसे डाक्टर राय ने कानपुर में एक ऐसा मेटर्निटी हास्पिटल खोला जो प्रांत-भर में अपने ढंग का बेजोड़ अस्पताल है—जिन-जिनसे हीरा की बातें हुईं उन सबकी यही राय थी। हीरा ने यह भी बताया कि डाक्टर राय पारसनाथ से कैसे भयंकर रूप से नाराज़ हैं, और किसी भी हालत में उसे क्षमा करने को तैयार नहीं हैं।

पारसनाथ ने अत्यंत गंभीर भाव से डाक्टर राय के संबंध में हीरा की सब बातें सुनीं। अंत में एक लंबी साँस लेकर उसने कहा—"मंजरी बिलकुल सत्य कहती है, हीरा, मैं सचमुच घोर पापात्मा और हत्यारा हूँ। मंजरी बहुत महान है, बहुत महान! जितना तुम समझती हो उससे बहुत अधिक—यह बात मैं सच्चे मन से, आंतरिक विश्वास से कह रहा हूँ! मैं जानता हूँ कि वह अब किसी भी शर्त पर मुझे क्षमा नहीं कर सकती है, पर साथ ही मैं यह भी जानता हूँ (जिसे तुम नहीं जानती हो) कि वह किस हद तक क्षमा कर सकती है और कर चुकी है। फिर भी मैं एक बार उससे मिलूँगा—चाहे परिणाम कुछ भी हो!"

और दूसरे ही दिन मंजरी से मिलने अकेले चला गया। प्रायः बारह बजे के समय वह डाक्टर राय के बंगले के दरवाज़े पर पहुँचा

जो अस्पताल के लगे था। वर्दी पहने हुए चपरासी ने पूछा—"आप किससे मिलना चाहते हैं?"

"डाक्टर राय से।"

"अपना नाम लिखकर दीजिए।"

"नाम लिखने की कोई ज़रूरत नहीं है, तुम उनसे जाकर कह दो कि एक आदमी एक बहुत ही ज़रूरी काम से उनसे दो बातें करने आया है।"

पर चपरासी बिना नाम लिखा हुआ पुर्ज़ा या कार्ड लिए किसी तरह भी भीतर जाने को राज़ी न हुआ। कोई उपाय न देखकर अंत में पारसनाथ ने दो रुपये जेब से निकाल कर चुपचाप उसके हाथ में रख दिये। चपरासी प्रसन्न होकर भीतर गया। पारसनाथ बाहर 'कोरीडोर' में एक बेंच पर बैठ गया। थोड़ी देर बाद भीतर का पर्दा हटा और डाक्टर राय भीतर से झाँकने लगीं। पारसनाथ को देखकर उनके मुख की मुद्रा एकदम कठोर हो उठी। पारसनाथ पलक मारते उठ खड़ा हुआ और आज भी उस दिन की तरह उसने डाक्टर राय के दोनों 'सैंडल' पकड़ लिए। अत्यंत दीन भाव से, व्याकुल कंठ से बोला—"मञ्जरी, मुझे क्षमा कर दो! अगर हमेशा के लिये क्षमा न करना चाहो, तो केवल आज-भर के लिये कर दो। केवल मेरी दो बातें सुन लो!"

क्षण-भर के लिये ऐसा मालूम हुआ जैसे डाक्टर राय कुछ विचलित हो उठीं, पर तत्काल पिघलते-पिघलते रह गईं। पर फिर से उनका रोष उमड़ आया और उन्होंने अपने दोनों पाँवों को झटके से छुड़ाना चाहा। पर पारसनाथ ने ऐसी मज़बूती से उन्हें जकड़ लिया था कि उनके लिये छुड़ाना मुश्किल हो गया। उन्होंने कहा—"छोड़ो, नहीं तो मुझे अभी अपने आदमियों को बुलाना पड़ेगा।" पर पारसनाथ

ने उनकी इस बात पर भी ध्यान न देकर जूता-सहित उनका दाहिना पाँव अपने नंगे सिर पर रख लिया, और बोला—"तुम चाहे अपने आदमियों को बुलाकर मुझे पिटवाओ, मरवा डालो, या और किसी दूसरे तरीके से ज़लील करो, पर जब तक तुम कम-से कम आज के लिये मुझे क्षमा करके मेरी दो बातें सुनने को राज़ी न हो जाओ, तब तक तुम्हारे जूतों को मैं नहीं छोड़ने का। "

डाक्टर राय ने न जाने क्या सोचा। उनका रुख कुछ बदला, ऐसा जान पड़ा। उन्होंने कहा—"अच्छी बात है, तुम क्या कहना चाहते हो कह डालो; उसके बाद तुम्हें फ़ौरन चल देना होगा। मेरे उत्तर की कोई प्रतीक्षा तुम्हें नहीं करनी होगी।" उनके कंठस्वर में अभी तक वही कठोरता वर्तमान थी।

पारसनाथ उठ खड़ा हुआ और बोला—"अच्छी बात है। यही सही, मैं केवल अपने मन की बात कहकर ही संतोष कर लूँगा। तो चंद मिनट इतमीनान से बैठ जाओ।"

मंजरी धम से कुर्सी पर बैठ गई और बोली—"कहो, क्या कहना है ?" अभी तक उसके मुख पर घृणा और क्रोध की छाया वर्तमान थी, यद्यपि उसकी प्रगाढ़ता किसी कारण से पहले की अपेक्षा कुछ कम हो गई थी।

पारसनाथ भी एक कुर्सी पर बैठ गया। उसके मुख पर विषाद की एक गहरी कालिमा घनीभूत हो उठी थी। उसने गला साफ़ करके कहा—"देखो मंजरी, मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जो महान् अपराध मैंने तुम्हारे प्रति किया, उसके लिये क्षमा चाहना उस अपराध पर और अधिक गहरा रंग चढ़ाना है—किसी व्यक्ति को जलाकर उसके जले स्थान पर नमक छिड़कने के बराबर है। और यह जानकर भी मैं तुमसे क्षमा चाह रहा हूँ, इससे तुम निश्चय ही समझ गई होगी कि

मेरे स्वभाव में अभी तक कुटिलता किस हद तक शेष है। फिर भी एक बात से तुम्हें परिचित कराये बिना मेरा मन नहीं मानता। तुम्हें याद होगा, मैंने एक दिन तुमसे कहा था कि मैं अपनी माँ के पति का बेटा नहीं बल्कि उसके प्रेमी का लड़का हूँ। मुझे इस बात का अंदेशा था कि मेरी बात सुनकर तुम उसी वक्त से मुझसे घृणा करने लगोगी। पर तुमने अपने विशाल हृदय की गहरी समवेदना का परिचय देते हुए कहा था—'नहीं, तुम कतई घृणा के योग्य नहीं हो! कोई भी दुःखी आदमी घृणा के योग्य नहीं हो सकता।' तब से मेरे प्रति तुम्हारी स्नेहपूर्ण समवेदना घटने के बजाय और अधिक बढ़ गई। इस बात से तुम्हारी महानता का परिचय अवश्य मिला, पर उससे मेरे समान क्षीण-हृदय किन्तु प्रबल अनुभूतिशील प्राणी की आत्मग्लानि कुछ भी कम नहीं हुई। आत्मग्लानि की वह भावना कैसी सर्वनाशी और आत्मशोषी थी, इसकी कल्पना आज मैं स्वयं नहीं कर सकता, कोई दूसरा क्या कर सकेगा। उस भावना ने सारे संसार को मेरे लिये भयंकर रौरव नरक में परिणत कर दिया था, और उस नरक में निवास करनेवाले प्रेतों और छायाओं के विरुद्ध एक अतलव्यापी विद्वेष की विषैली भावना मेरे भीतर मथित हो उठी थी। मैं जीवित मनुष्यों के संसर्ग में रहने पर भी वास्तव में प्रेतात्माओं और छायाओं के संपर्क में जीवन बिताया करता था, और जाग्रत अवस्था में रहने पर भी सब समय निद्रा-विचरण के रोगी का-सा आचरण किया करता था। मेरा मन सब समय ऐसा उद्भ्रांत और चंचल रहता था कि न मैं स्वयं कभी एक क्षण के लिये भी चैन से रह पाता था, न दूसरों को चैन से रहने देता था। एक ज़रा-सी बात ने मेरे सारे व्यक्तित्व को ऐसे भयंकर रूप से डाँवाडोल कर दिया, इससे स्पष्ट है कि मैं किस क़दर ओछा हूँ और मेरा व्यक्तित्व किस क़दर पोपला और अंतःसारहीन है। अनुभवियों से यह बात छिपी नहीं है कि जो प्राणी जितना क्षीण होगा वह उसी

परिमाण में निष्करुण भी होगा। मेरी हृदयहीनता का यही कारण रहा है। वर्षों बाद जब मुझे इस बात का निश्चित प्रमाण मिल गया कि मैं जारज नहीं बल्कि अपनी माँ के पति का ही पुत्र हूँ, तो मेरी सारी भाव-धारा ही एकदम उलट गई। असल बात यह है कि हम लोग—मैं और मेरे बहुत-से समानुभवी—जो कि नयी पीढ़ी के प्राणी हैं, हम सब आवश्यकता से बहुत अधिक अनुभूतिशील होते हैं, पर चरित्र का ठोसपन और इच्छाशक्ति की दृढ़ता हम लोगों में लेश मात्र भी नहीं रहती। यही कारण है कि ज़रा-सी बात से हम लोग अपने को पाताल में गिरा हुआ पाते हैं, और ज़रा-सी बात में आकाश में चढ़ जाते हैं ......"

डाक्टर राय ने ऊबकर कहा—"बस! कह चुके तुम्हें जो-कुछ कहना था? तो अब जाओ! इस तरह के लेक्चर और आत्म-करुणा या आत्म-निन्दा से भरी बातें मैं तुम्हारे ही मुँह से कई बार पहले भी सुन चुकी थी। इसलिये इन व्यर्थ की बातों को मैं अब अधिक सुनने को तैयार नहीं हूँ! अब तुम जाओ!" यह कहकर वह उठने लगीं। उनका मुँह फिर एक बार क्रोध से तमतमा उठा था।

पारसनाथ ने उनके पाँव पकड़ कर अत्यंत विनयपूर्वक कहा—"ज़रा दो मिनट और सुन लो! उसके बाद मैं फिर कभी तुमसे कुछ नहीं कहूँगा।"

डाक्टर राय किसी अज्ञात कारण से अचानक बुरी तरह तिलमिला उठीं। वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई और झल्लाई हुई आवाज़ में बोलीं—"तुम्हारे समान जघन्य दुष्कर्मी की बातें सुनकर मैं क्या करूँ! तुम्हारे स्वभाव के अणु-परमाणु में बदमाशी कूट-कूटकर भरी हुई है। तुमने जो अपने जारज होने की बात मेरे आगे प्रगट की थी, वह इसलिए नहीं कि तुम सच्चे और ईमानदार हो, बल्कि इसीलिये

कि तुम उस बात से मेरे अंतस्तल की समवेदना, करुणा और प्रेम की प्रवृत्तियों को पूर्ण रूप से उभाड़ना चाहते थे—तुम ऐसी गहराई में पैठने वाले धूर्त हो। तुमने अपनी नारकीयता को, और उस नारकीयता से उत्पन्न आत्मग्लानि की भावना को एक विकृत 'कला' का रूप देना चाहा है। कभी दूसरों के प्रति अपने विद्वेष और घृणा के भावों की तुष्टि से, और कभी अपने प्रति दूसरों की करुणा उभाड़कर तुमने एक विकृत 'कलात्मक' संतोष प्राप्त करना चाहा है—इतने बड़े शैतान हो तुम! तुम पाताल-लोक के यक्ष हो जो जीवित मनुष्यों से तब तक दूर रहता है जब तक वे भी भूत-प्रेत बनकर उसके गहन अंधकारमय पापराज्य में उसका साथ नहीं देते। इसके अलावा तुम उसी सनातन पुरुष-समाज के नवीन प्रतिनिधि हो जिसने युगों से नारी को छल से ठगकर, बल से दबाकर, विनय से बहकाकर और करुणा से गलाकर उसे हाड़मास की बनी निर्जीव पुतली का रूप देने में कोई बात उठा नहीं रखी है। पर याद रखो, विश्वव्यापी क्रांति ने इस युग में आततायी और कामाचारी पुरुष-जाति की सत्ता अब निश्चित रूप से मूलतः ढहने को है, और युगों से दलित नारी-जाति आज तक अपनी छायात्मकता के भीतर भी शक्ति का जो महाबीज सुरक्षित रखे हुए थी उसके विस्फोट को दबाने की समर्थता अब ब्रह्मा में भी नहीं रह गई है!"

डाक्टर राय के कालिका-रूप से निकलनेवाली प्रचंड ज्वालाओं से पारसनाथ जैसे झुलस गया। कुछ देर तक वह आँखें फाड़े और मुँह बाये निपट मूर्खों की तरह उनकी ओर देखता रह गया। डाक्टर राय भी कुछ समय के लिये जैसे अपनी ही बातों की प्रतिध्वनि में पूर्णरूप से निमग्न होकर शून्य दृष्टि से पारसनाथ की ओर देखती रहीं। पारसनाथ शीघ्र ही उस घोर मोहाच्छन्नता की दशा से सँभल गया। उसने झुककर डाक्टर राय को प्रणाम किया। और कहा—